वचनिका

राठौड़ रतनसिंघजी री महेसदासौत री

खिड़िया जगा री कही

रतनसिंह राठौड़

वचनिका

राठौड़ रतनसिंघजी री महेसदासौत री
खिड़िया जगा री कही

सम्पादक

काशीराम शर्मा, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

रघुबीरसिंह, डी० लिट्०

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली - इलाहाबाद - बम्बई - पटना

प्रस्तावना

प्रारम्भ से ही 'वचनिका रतनसिंघजी री महेसदासोत री खिड़िया जगा री कही' बहुत लोकप्रिय रही है। उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ तब ही राजस्थान और मालवा के प्राय: सभी साहित्य-प्रेमी अथवा इतिहास-जिज्ञासु घरानों में पहुँच गई थीं। प्रत्येक पठित तथा प्रतिष्ठित चारण के निजी पुस्तक-संग्रह में इस वचनिका की प्रति अवश्य ही पाई जाती थी। राजस्थानी का अध्ययन करने वाले प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए तो यह वचनिका एक सुलभ उपयोगी पाठ्य-पुस्तक का भी तब काम देती थी। परन्तु ईसा की उन्नीसवीं सदी में चारणों का प्रभाव और राजस्थानी भाषा एवं साहित्य का महत्त्व निरन्तर घटने लगा, जिससे इस सारी लोक-प्रियता के होते हुए भी तब इसे छपवाने की किसी ने भी नहीं सोची।

राजस्थानी भाषा के उद्भट विद्वान् और राजस्थानी साहित्य के अनन्य प्रेमी इटली निवासी डॉक्टर एल० पी० तेस्सितोरी ने अप्रैल, १९१४ ई० में भारत पहुँच कर बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के संरक्षण में राजपूताने के चारणों के तथा अन्य ऐतिहासिक साहित्य की खोज और तत्सम्बन्धी जानकारी एकत्र करने का काम जब प्रारम्भ किया तब उसे वचनिका की अनेकों प्रतियाँ सुलभता के साथ प्राप्त हो गईं। अत: उसने इस चारण-काव्य के सम्पादन का कार्य सबसे पहले हाथ में लिया। राजस्थान और मालवा के विभिन्न स्थानों या संग्रहों से एकत्र की गई वचनिका की अनेकानेक प्रतियों में से तेस्सितोरी ने तेरह प्रतियाँ चुन लीं और उन्हीं के आधार पर उसने वचनिका के मूल-पाठ का सम्पादन किया। तेस्सितोरी द्वारा सम्पादित वचनिका के इस संस्करण का पहला भाग बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने सन् १९१७ ई० में प्रकाशित किया था। संशोधित मूल-पाठ के साथ ही उल्लेखनीय पाठान्तर एवं क्षेपक अंश भी उसमें दिये गए हैं। इस प्रथम भाग में तेस्सितोरी द्वारा अंग्रेजी में लिखित संक्षिप्त टिप्पणियाँ, उसका शब्दार्थ-कोष तथा वचनिका की भाषा विषयक एवं साहित्यिक भूमिका भी प्रकाशित हुई। तेस्सितोरी चाहता था कि वचनिका के दूसरे भाग में इस समूचे काव्य के अंग्रेजी अनुवाद के साथ ही वचनिका के ऐतिहासिक महत्त्व सम्बन्धी विवेचन भी प्रकाशित करे। परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा कुछ कर सकने से पहले ही सन् १९१८ ई० में बीकानेर में उसकी मृत्यु हो गई, जिससे वचनिका के उस संस्करण का यह प्रस्तावित दूसरा भाग बाद में तैयार नहीं हो पाया। अतएव सन् १९१७ ई० में वचनिका के मूल ग्रन्थ के छप कर प्रकाशित हो जाने के बाद भी इसी दूसरे भाग के अभाव में डिंगल भाषा की दुरूहता के कारण ही इतिहास के उत्कट संशोधक विद्वान् अब तक इस महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक आधार-ग्रन्थ का आवश्यक अध्ययन तथा उपयुक्त उपयोग नहीं कर पाये हैं।

वचनिका के साहित्यिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व एवं उसके अध्ययन की आवश्यकता का निर्देशन आगे भूमिका में सविस्तार किया गया है। वचनिका में प्रयुक्त राजस्थानी (डिंगल) भाषा यों ही बहुत दुरूह है और इधर कई युगों से राजस्थानी का अध्ययन एवं विवेचन

इतना अधिक कम हो गया है कि आज वचनिका का ठीक-ठीक अर्थ लगा सकने वाले विद्वानों की संख्या बहुत अधिक नहीं रह गई है एवं वह दिनों-दिन बराबर घटती ही जा रही है। अतः तेस्सितोरी की लिखी हुई टिप्पणियों और उसके तैयार किये हुए शब्दार्थ-कोष से ही काम चल सकना कदापि सम्भव नहीं रह गया है, अतएव वचनिका का एक ऐसा नया संस्करण प्रकाशित करना अत्यावश्यक प्रतीत हुआ जिसमें समूची वचनिका का पूरा भावार्थ भी दे दिया जावे। ऐसे सर्वांगपूर्ण नये संस्करण को तैयार करने के लिए राजस्थानी भाषा और साहित्य के एक उद्भट विद्वान् का पूर्ण सहयोग अत्यावश्यक था, अतः यह कार्य-भार साथी संपादक श्री काशीराम शर्मा को सौंपा गया।

वचनिका के इस संस्करण को तैयार करने में श्री काशीराम शर्मा को अथक परिश्रम करना पड़ा है। तेस्सितोरी द्वारा सम्पादित संस्करण का मूल-पाठ प्रस्तुत था ही, परन्तु इधर बीकानेर के सुविख्यात साहित्य-संशोधक एवं संग्रहकर्ता श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह में तथा श्री मोतीचन्द खजांची के संग्रह में कुछ पुरानी प्रतियाँ प्राप्य थीं और एक पुरानी प्रति बनेड़ा-निवासी श्री रविशंकर देराश्री से भी मिल गई, जिससे इस अवसर पर उनका भी उपयोग कर लेना उचित प्रतीत हुआ। डिंगल काव्य यों भी बहुत दुरूह होता है। और जब उसमें अप्रसिद्ध वंशावलियों तथा दुर्बोध ऐतिहासिक प्रसंगों की भरमार रहती है तब तो उसका ठीक-ठीक अर्थ करना अत्यधिक दुस्साध्य हो जाता है। वचनिका में ऐसे स्थल बहुत अधिक हैं तथापि श्री काशीराम शर्मा उनका बहुत-कुछ सही भावार्थ प्रस्तुत करने में पूर्णतया सफल हुए हैं।

वचनिका में स्थान-स्थान पर आये हुए प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध व्यक्तियों के नामों तथा ऐतिहासिक प्रसंगों और उल्लेखों के बारे में उपयोगी जानकारी से पूर्ण आवश्यक टिप्पणियाँ भी दी जा रही हैं, जिनसे इस काव्य-ग्रन्थ को ठीक तरह से समझने और उसमें वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं की पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करने में उचित सहायता प्राप्त हो सके। अब तक प्राप्त सारे ऐतिहासिक आधार-ग्रन्थों के आधार पर धरमत के युद्ध का एक संक्षिप्त प्रामाणिक विवरण भूमिका में दिया गया है और उक्त युद्ध में रतनसिंह ने जो भाग लिया था उसका भी उसमें यथास्थान उल्लेख किया गया है। वचनिका में वर्णित इस युद्ध विषयक जो भी नई बातें अब तक इतिहासकारों द्वारा मान्य हो चुकी हैं उन सबको उक्त विवरण में यथास्थान सम्मिलित कर दिया गया है। पुनः वचनिका का सम्पादन करते समय धरमत के युद्ध के ठीक दिन और तारीख को प्रामाणिक रूपेण निर्धारित करना अत्यावश्यक था। यह बड़े संतोष की बात है कि तदर्थ की गई इस सारी गहरी जाँच-पड़ताल के बाद भी वचनिका में दिया गया दिन और तिथि ही सही प्रमाणित हुए तथा इसी खोज के फलस्वरूप ईसवी सन् के अनुसार युद्ध के ठीक दिन और तारीख में अब तक एक दिन की जो भूल चली आ रही थी उसे सुधारा जा सका है। खड़िया जगा कृत इस वचनिका के ठीक-ठीक ऐतिहासिक महत्त्व की विवेचना भूमिका में दी जानी सर्वथा अनिवार्य ही थी। अधिक गहराई के साथ वचनिका का अध्ययन करने पर किन-किन और विषयों सम्बन्धी उपयोगी सामग्री इस काव्य-ग्रन्थ से प्राप्त हो सकती है इसका भी यत्किंचित् निर्देशन उक्त विवेचना के अन्त में कर दिया गया है।

रतनसिंह राठोड़ विषयक कुछ स्फुट गीत भी यत्र-तत्र राजस्थानी संग्रह-ग्रन्थों में मिलते हैं। बीकानेर की सुसमृद्ध अनूप संस्कृत लायब्रेरी में प्राप्य "फुटकर गीत" नामक दो हस्तलिखित राजस्थानी काव्य-संग्रहों में वचनिका के रचयिता खड़िया जगा एवं कविया श्याम कृत रतनसिंह राठोड़ विषयक कुछ गीत संगृहीत हैं। इसी प्रकार सैनाली (बीकानेर) के श्री मुकुन्दसिंह के हस्तलिखित गीत-संग्रह में लखमीदास गाडण कृत एक गीत मिला है। पाठकों के मनोरंजनार्थ उन्हें क्रमशः परिशिष्ट (१), (२) एवं (३) में दिया जा रहा है।

वचनिका के इस नये संस्करण को तैयार करने में श्री अगरचन्द नाहटा, श्री रविशंकर देराश्री, बीकानेर के महाराजा करणीसिंह, खजांची-संग्रह के स्वामी श्री मोतीचन्द खजांची एवं श्री मुकुन्दसिंह की स्वीकृति तथा सहयोग से नई सामग्री का उपयोग किया जा सका है, अतएव उन सबके प्रति समुचित कृतज्ञता-ज्ञापन अत्यावश्यक हो जाता है। इस संस्करण को इतना सर्वांगपूर्ण बनाने का पूरा-पूरा श्रेय मेरे साथी सम्पादक श्री काशीराम शर्मा को ही है। उनके विषय में यहाँ कुछ अधिक लिखना समीचीन प्रतीत नहीं होता है तथापि तदर्थ उनका हार्दिक अभिनन्दन करना सर्वथा अनिवार्य ही है। अन्त में प्रकाशक भी धन्यवाद के पात्र हैं कि वे इस ग्रन्थ को इस सुन्दर रंग-रूप में प्रकाशित कर रहे हैं। राजस्थानी भाषा की विशेष ध्वनियों का स्पष्ट निर्देशन करने के लिए अत्यावश्यक नई मात्राओं और चिह्नों को बनवा कर वचनिका के इस संस्करण को प्रकाशकों ने वस्तुतः सर्वांगपूर्ण बना दिया है।

जीवन के अन्तिम युद्ध में पूर्णतया पराजित तथा तीर और तलवार से बुरी तरह आहत रतनसिंह के सौभाग्य ने तब भी उसका साथ नहीं छोड़ा। उसको यों सहज-प्राप्त युद्ध में गौरवपूर्ण मृत्यु और वीरोचित चिता पर किस साहसी वीर को तब ईर्ष्या नहीं हुई होगी? अपनी नश्वर भौतिक देह को दाँव में हार कर भी रतनसिंह ने बदले में पाई अजर-अमर शाश्वत यशःकाय, जिसे सजाने-सँवारने एवं शाश्वत बनाने के लिए खड़िया जगा ने तब अपनी सारी प्रतिभा लगा दी थी। धरमत के उस भीषण युद्ध को हुए आज पूरे तीन सौ दो वर्ष बीत गये हैं। परन्तु वीर-गाथा एवं सत्साहित्य कभी पुरातन या असुन्दर नहीं होते। अतः आज खड़िया जगा कृत वचनिका के इस नये संस्करण को काव्य-प्रेमियों और इतिहास-जिज्ञासुओं के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए विशेष हर्ष एवं पूर्ण संतोष होता है। अपने इस नये रंग-रूप में यदि वचनिका पुनः पहले के ही समान लोकप्रिय हो जावेगी तो उसके सम्पादकों का यह सारा यत्न सर्वथा सफल हो जावेगा।

"रघुबीर निवास"
सीतामऊ, (मालवा)
वैशाख शु० ९, सं० २०१७ वि०

रघुबीरसिंह

विषय सूची

चित्र-सूची

भूमिका

(१) डिंगल साहित्य और भाषा

राजस्थान की साहित्यिक भाषाएँ

आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का उद्गम आज से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व हुआ होगा यह प्रायः सर्व-मान्य सिद्धान्त है। जिस भू-खण्ड में आज व्रज आदि पश्चिमी हिन्दी की बोलियाँ, मारवाड़ी, मेवाड़ी आदि राजस्थानी बोलियाँ और गुजराती की अनेक बोलियाँ बोली जाती हैं वह किसी समय शौरसैनी प्राकृत का क्षेत्र था। सांस्कृतिक और राजनीतिक सम्पर्क के ह्रास और स्थान-गत दूरी के कारण इस भू-खण्ड की भाषा-गत विशेषताओं में समय पा कर कुछ परिवर्तन और अन्तर हुए। प्राकृतों से अपभ्रंश बनते-बनते शौरसैनी प्राकृत के भू-खण्ड में स्पष्टतः दो अपभ्रंशें दृष्टिगोचर हुई जिन को सुविधा के लिए शौरसैनी अपभ्रंश और गौर्जर अपभ्रंश कहा जा सकता है। राजस्थान दोनों ही प्रकार की अपभ्रंशों का क्षेत्र रहा। पश्चिमी राजस्थान में गौर्जर अपभ्रंश का प्रयोग था तो पूर्वी राजस्थान में शौरसैनी अपभ्रंश का। सोलहवीं शताब्दी तक आते-आते गौर्जर अपभ्रंश की भी दो शाखाएँ हो चली थीं। एक से वर्तमान गुजराती स्पष्ट रूप में उदित हो चुकी थी और दूसरी से पश्चिमी राजस्थानी। इसी प्रकार व्रज आदि पश्चिमी हिन्दी की बोलियों तथा पूर्वी राजस्थानी की बोलियों में भी पर्याप्त भेद दृष्टि-गोचर होने लगे थे।

इसी प्रकार राजस्थान की साहित्यिक परम्परा में भी भाषा के दो स्पष्ट रूप देखने को मिल सकते हैं—एक पश्चिमी राजस्थानी का जिसे तेस्सितोरी आदि ने डिंगल कहना उचित समझा था और दूसरा पूर्वी राजस्थानी का जिसे पिंगल कहा जाता है। अब तक विद्वानों की मान्यता यह रही है कि पिंगल का साहित्य वस्तुतः व्रज-भाषा का साहित्य है और उस में डिंगल के भी अनेक शब्दों का सम्मिश्रण है। परन्तु वस्तु-स्थिति यह प्रतीत होती है कि जिस को पिंगल कहा जाता है वह पूर्वी राजस्थान की साहित्यिक भाषा थी और जिस को डिंगल कहा जाता है वह पश्चिमी राजस्थान की। दोनों प्रकार के साहित्य के निर्माता प्रधानतः चारण, भाट इत्यादि राज-कवि हुआ करते थे और उन के पठन-पाठन की एक निश्चित शैली हुआ करती थी। अतएव शब्दावली का समान होना स्वाभाविक है। दूसरी ओर पूर्वी राजस्थान की बोलियों का व्रजभाषा से सामीप्य होने के कारण उस से भी साम्य नैसर्गिक है। इसी लिए प्रायः भ्रम-वश पिंगल को व्रजभाषा मान लिया जाता है। वैसे व्रजभाषा अपने शुद्ध साहित्यिक रूप में भी राजस्थान में उतना ही सम्मान्य स्थान प्राप्त करती रही है जितना डिंगल और पिंगल। राजस्थान का संस्कृतेतर साहित्य इस प्रकार तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—डिंगल साहित्य, पिंगल साहित्य और व्रजभाषा साहित्य।

डिंगल और पिंगल वस्तुतः बहुत पुराने शब्द नहीं हैं। इन का प्रयोग सर्व-प्रथम

बाँकीदास ने 'कुकवि-बत्तीसी' नामक ग्रन्थ में किया था। इस का रचना-काल संवत् १८७१ वि० है। वह प्रयोग इस प्रकार है—

डींगळिया मिळियाँ करै, पींगळ तणो प्रकास।
संसक्रुती ह्वै कपट सज, पींगळ पढियाँ पास॥

बाँकीदास के बाद बुधाजी ने डिंगल और पिंगल शब्दों का प्रयोग किया—

सब ग्रंथूं समेत गीता कूं पिछाणै।
डींगळ का तो क्या संस्कृत भी जांणै॥
और भी सांदुओं मैं चैन अरु पीथ।
डींगळ में खूब गजब जस का गीत॥
और भी आसियूं मैं कवि बंक।
डींगळ पींगळ संस्कृत फारसी मैं निसंक॥

डिंगल शब्द का बाँकीदास से पूर्व कोई प्रयोग देखने को नहीं मिला। इस लिए उस के अर्थो के विषय में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करने की आवश्यकता नहीं है। डिंगल और पिंगल का अभिधान भाषा की दृष्टि से कोई प्राचीन नहीं है। वस्तुतः मरु भाषा, मारू भाषा इत्यादिक नाम डिंगल के लिए प्रयुक्त होते रहते थे। परन्तु अब डिंगल और पिंगल नाम इतने प्रचलित हो गये हैं कि अब उन का ही प्रयोग सार्थक होगा। अतएव सुविधा के लिए पश्चिमी राजस्थानी अर्थात् मारवाड़ी के साहित्यिक रूप के लिए 'डिंगल' का और राजस्थान के पूर्वी भाग की भाषा के व्रजभाषा से मिलते-जुलते साहित्यिक रूपके लिए 'पिंगल' शब्द का प्रयोग उचित है। शुद्ध व्रज साहित्य के लिए तो 'व्रज' का प्रयोग सर्व-विदित है ही।

इस प्रकार राजस्थान के साहित्य में हम तीन प्रकार की भाषाओं का प्रयोग देखते हैं। सौभाग्य-वश तीनों ही प्रकार के साहित्य को समान रूप से आदर भी प्राप्त होता रहा है। राज-सभाओं में और सामान्य जन-समुदाय में तीनों ही प्रकार के साहित्य को समान रूप से मान्यता प्राप्त थी और किसी एक वर्ग को दूसरे से हेय न समझा जाता था। यही नहीं तुलसी आदि के अवधी साहित्य को भी उन के ही समान भाषा-साहित्य के अन्तर्गत माना जाता था और व्रज, डिंगल तथा पिंगल की कोटि में रखा जाता था। प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थों की अनेकानेक प्रतियाँ देखने से यह स्पष्ट विदित होता है कि राजस्थान के साहित्य-प्रेमियों की दृष्टि में साहित्य के केवल दो प्रकार थे—एक संस्कृत का साहित्य और दूसरा 'भाषा' का साहित्य। 'भाषा-साहित्य' के संकलन-ग्रन्थों में डिंगल, पिंगल, व्रज और अवधी, सभी के साहित्य का एकत्र समावेश होता था और उन्हें केवल 'भाषा-साहित्य' संज्ञा ही दी जाती थी। आज के कुछ उत्साही साहित्य-कार और लेखक अनावश्यक आवेश में आ कर हिन्दी से पृथक् राजस्थानी का महत्त्व-पूर्ण स्थान घोषित करने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं। गत पाँच-छह शताब्दियों में राजस्थानी और व्रज आदि की बोलियों के साहित्य के भिन्न होने की कल्पना किसी ने न की थी। अपेक्षित यह है कि आज भी उस प्रकार की अनावश्यक कल्पना न की जाये और जिस प्रकार डिंगल, पिंगल, व्रज और अवधी आदि के साहित्य को एक ही वर्ग—'भाषा-साहित्य'—में रखा जाता था उसी प्रकार आज भी उस को हिन्दी-साहित्य के वर्ग के अन्तर्गत ही रखा जाये।

डिंगल का साहित्य

डिंगल पश्चिमी राजस्थानी अथवा मारवाड़ी का साहित्यिक रूप है। उस में और बोलचाल की मारवाड़ी में उतना ही अन्तर है जितना किसी भाषा की बोली और उस के साहित्यिक रूप में हुआ करता है। राजस्थान का साहित्य-कार वर्ग प्रायः चारण, भाट इत्यादि कुछ जातियों का हुआ करता था जिन का व्यवसाय ही कविता-निर्माण करना था। ये कवि वंश-परम्परागत व्यवसाय के रूप में कवित्व की शिक्षा प्राप्त करते थे। इस लिए शताब्दियों से चली आती हुई कविता की शब्दावलि और शैली का यथावत् प्रयोग करना उन के लिए स्वाभाविक था। फलतः समान्य व्यवहार से लुप्त हो चुके सहस्त्रों शब्द उन की कविता में व्यवहृत होते रहे और उन की भाषा बोल-चाल की मारवाड़ी से भिन्न प्रतीत होती रही। वंश-परम्परागत सम्पत्ति के रूप में कवित्व को पाने वाले कवियों में प्राचीन शब्दावलि के प्रति इस प्रकार का मोह होना स्वाभाविक ही है। इसी लिए सामान्यतः मारवाड़ी और साहित्यिक डिंगल में बहुत बड़ा अन्तर प्रतीत होता है। परन्तु वस्तुतः डिंगल मारवाड़ी की साहित्यिक शैली मात्र है।

डिंगल का साहित्य बहुत समृद्ध है। उस में गद्य और पद्य दोनों ही प्रकार के साहित्य का अनन्त भंडार है। पद्य में दूहा, झूलना, रूपक, रासो, विलास आदि रूपों में पर्याप्त साहित्य विद्यमान है तो गद्य में भी ख्यात, बात, विगत, हकीकत, वचनिका, वार्ता आदि अनेक रूपों में अक्षय निधि भरी पड़ी है। अब तक इस गुप्त भंडार का बहुत ही कम अंश साहित्य के प्रेमियों के सम्मुख आ पाया है। उस को प्रकाश में लाने की परमावश्यकता है, परन्तु खेद है कि उस ओर बहुत कम प्रयत्न किया जा रहा है।

डिंगल साहित्य में कुछ अपनी परम्पराएँ ऐसी भी हैं जो शेष हिन्दी के साहित्य से कुछ अंश में भिन्न मानी जा सकती हैं। राजस्थान का कवि-समुदाय एक ओर संस्कृत के काव्य-शास्त्र और छन्द-शास्त्र की अनुपम रत्न-राशि का प्रयोग करता है तो दूसरी ओर उस ने अपने निजी छन्द-शास्त्र और रीति-शास्त्र का भी निर्माण किया है। संस्कृत-साहित्य के अलंकारों को मानने के साथ-साथ पिंगल के कवि-वर्ग ने 'वयण-सगाई' नामक नवीन अलंकार का भी आविष्कार किया और उस के प्रयोग को सत्काव्य की एक बहुत बड़ी कसौटी माना है। इसी प्रकार संस्कृत के काव्य-दोषों को मानते हुए कुछ नवीन दोषों का भी ध्यान रखा है। जैसे—अन्ध, छबकाल, हीण, निनंग, पाँगलो, जातिविरोध, अपस, नालच्छेद, पखतूट, बहरो और अमंगल आदि। छन्द-शास्त्र के क्षेत्र में जहाँ उन ने संस्कृत के पिंगल-ग्रन्थों के सभी छन्दों को अपनाया वहाँ गीत नाम से अपना पृथक् छन्द-शास्त्र भी निर्मित किया है। काव्य-उक्ति के भी स्वमुख, परामुख इत्यादि भेद डिंगल के कवियों ने किये हैं। इस प्रकार डिंगल के साहित्य में जहाँ संस्कृत साहित्य की काव्य-परम्परा का पूर्ण उपयोग है वहाँ अपनी नवीन उद्भावनाओं का भी अभाव नहीं है।

डिंगल के साहित्य में पद्य के साथ-साथ गद्य के भी अनेक रूप मिलते हैं। रघुनाथ-रूपक इत्यादि छन्द-शास्त्रीय ग्रंथों में गीतों आदि का विवेचन करने के साथ वार्ता, वचनिका, दवावैत आदि गद्य रूपों का भी लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन किया गया है जिस का उल्लेख यथास्थान किया जायेगा।

राजस्थान का साहित्य सभी रसों और विषयों में प्राप्य है। उस में 'बेली कृष्ण-रुक्मिणी री' जैसे शृंगार-रसाप्लावित ग्रन्थ भी विद्यमान हैं तो 'हरि-रस' जैसे भक्ति-रस के ग्रन्थ भी। परन्तु प्रधान रस वीर ही माना जा सकता है, और उस का कारण है साहित्य-रचना के समय का राजनीतिक जीवन और कवियों के आश्रय-दाताओं की रुचि। राजस्थानी में जैन-साहित्य की रचना करने वाले अनेक जैन-लेखक भी हुए हैं क्योंकि उन की धार्मिक भावना प्रारम्भ से ही संस्कृतेतर—प्राकृत, अपभ्रंश इत्यादि—जन-साधारण में प्रचलित भाषाओं के प्रयोग की ओर रही। अतः स्वभावतः ही उन ने अपने प्रान्त की सामयिक भाषा का भी साहित्य में सहर्ष प्रयोग किया। प्रयोग करने के साथ-साथ साहित्यकारों के निर्मित साहित्य का संरक्षण भी जैनाचार्यों और श्रावकों द्वारा हुआ। जैन लेखकों द्वारा निर्मित पर्याप्त साहित्य विद्यमान है। परन्तु उस से भी अधिक साहित्य ऐसा है जिस का संरक्षण जैनाचार्यों के हाथों से हुआ। जैनियों के उपाश्रय और भंडार हमारे देश की अपूर्व निधि हैं। कितने ही अज्ञात लेखकों की कला-कृतियाँ उन ज्ञान के आगारों में प्रचुर मात्रा में भरी पड़ी हैं। जैनियों की मथेन नामक एक जाति सुन्दर अक्षरों में प्रतिलिपि करने के लिए प्रसिद्ध रही है। उन के हाथों से सहस्रों ग्रंथों का लिपिकरण हुआ है। जैन-साहित्य में प्रबन्ध-काव्य, कथाएँ, रास, फाग और सझाय आदि प्रमुख विषय हैं। धार्मिक साहित्य और उस की टीका-टिप्पणी प्रचुर परिमाण में विद्यमान है। जैनों के इस साहित्य में प्राप्त होने वाली भक्ति, संयोग और वियोग की कल्पनाएँ भारतीय साहित्य की चिर-कल्पित निधियाँ हो कर भी मौलिकता से ओत-प्रोत है।

ब्राह्मण-साहित्य

ब्राह्मणों ने भी मारवाड़ी साहित्य की रचना में थोड़ा-बहुत सहयोग दिया यद्यपि प्रधान रूप से उन का ध्यान केवल संस्कृत की ही ओर रहा। वे सामान्य व्यवहार की भाषा को अपने साहित्य में प्रयुक्त करना कुछ हेय समझते थे। इसी लिए उन ने देशीय-साहित्य के निर्माण को उतना सहयोग नहीं दिया जितना अन्य शिक्षित वर्ग ने। फिर भी 'वेताल-पच्चीसी', 'सिंहासन-बत्तीसी', 'सुआ-बहोतरी', 'हितोपदेश', 'पंचाख्यान' आदि कथाओं; 'नासिकेत', 'मारकण्डेय', 'सूरज' तथा 'पद्म' आदि पुराणों एवं 'भगवद् गीता', 'रस-तरंगिणी', 'रस-रत्नाकर', 'रामायण', 'महाभारत' आदि ग्रंथों के अनुवाद कर के ब्राह्मण वर्ग ने भी अपनी दैनिक व्यवहार की भाषा के साहित्य में सहयोग दिया।

सन्त-साहित्य

जिस प्रकार कबीर, सूरदास आदि सन्तों का अक्षय साहित्य हिन्दी की निधि है उसी प्रकार राजस्थान में भी अनेक सन्तों का साहित्य विद्यमान है, जिन ने राजस्थान की तीनों ही साहित्य-श्रेणियों—अर्थात् डिंगल, पिंगल और ब्रज—में रचना कर के साहित्य के भंडार की श्री-वृद्धि की है। दादू, गोरख, मीरा, रैदास, जसनाथ, सुन्दरदास, वाजींद, नरसिंह, महाराजा प्रतापसिंह, प्रताप कुँवरि, जनगोपाल आदि का साहित्य इस सन्त-साहित्य का ही अंग है।

सौती साहित्य

परन्तु डिंगल का साहित्य प्रधानतः चारण, भाट, ढोली, ढाडी, राव, मोतीसर आदि जातियों के लोगों का साहित्य है। उन जातियों का व्यवसाय ही कविता करना है। हमारे देश में आदि काल से ही कविता द्वारा जीविकोपार्जन करने की एक परम्परा रही है। धर्म-शास्त्र में विविध जातियों के व्यवसाय का वर्णन करते हुए सूत, मागध, बन्दीजन आदि का उल्लेख है जिन का कर्त्तव्य होता था राजाओं के शौर्य-वीर्य की प्रशंसा करना; युद्ध के समय उन के साथ रहते हुए प्रायः उन के रथों का संचालन करना; उन को युद्ध के लिए प्रोत्साहित करते रहना और उन में क्लैव्य भाव जाग्रत होने पर पुनः वीरत्व का संचार करना; शान्ति के समय उन के सम्मुख उन के पूर्वजों की वीर-गाथाओं तथा उन के स्वयं के प्रशस्त वीर-कर्मों का आख्यान कहना तथा स्तुति-गायन करना। महाभारत के वर्तमान रूप सौती-संस्करण का निर्माण स्पष्टतः सूत जाति के किसी महाकवि की लेखनी से हुआ। पुराणों की सहस्रों कथाएँ इन सूतों द्वारा ही गायी जाती रहीं और राज-परिवारों में इन कवि-गायकों का सदा सम्मान होता रहा। मध्य काल में भी यह परम्परा यथावत् बनी रही और चारण-भाट वर्ग के कवि उसी सूत-परम्परा का निर्वाह करते रहे। ये कवि युद्ध के समय स्वयं राजाओं के साथ खड़े हो कर उन को प्रोत्साहित करते थे और शान्ति के समय उन के वीर-कृत्यों का गायन कर उन से पुरस्कार प्राप्त करते थे। राजस्थान-जैसे सामन्ती परम्परा के क्षेत्र में इन चारणों और भाटों को प्रोत्साहन और संरक्षण मिलना सर्वथा स्वाभाविक था। फलतः चारण आदि ने पुष्कल साहित्य की रचना कर डिंगल की साहित्य निधि को अनेकानेक रत्नों से भरपूर किया।

डिंगल का साहित्य-शास्त्र

डिंगल-साहित्य की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन ऊपर संक्षेप में हो चुका है परन्तु उस साहित्य की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो हिन्दी के शेष साहित्य में नहीं हैं। अतएव उन का कुछ विस्तार से वर्णन अपेक्षित है। उस के बिना डिंगल-कवि की कर्म-भूमि, कठिनाइयों तथा समस्याओं पर विचार कर सकना संभव नहीं। संस्कृत और हिन्दी का साहित्य-शास्त्र तथा छन्द-शास्त्र जानना तो डिंगल कवि के लिए अपेक्षित था ही, उस के अतिरिक्त जिन अन्य विषयों का ज्ञान आवश्यक था वे आगे संक्षेप में बताये जा रहे हैं।

काव्योक्तियाँ (उक्त)

डिंगल के रीति-ग्रन्थकारों ने काव्य की उक्ति के चार प्रकार माने हैं। वे हैं:—परमुख उक्ति, सन्मुख उक्ति, परामुख उक्ति और श्रीमुख उक्ति।

परमुख उक्ति (उक्त)—जहाँ कवि वर्णनीय का वर्णन अन्य पुरुष को संबोधन कर के करता है वहाँ परमुख उक्ति होती है। इस उक्ति के दो भेद भी हैं—शुद्ध और गर्भित (गरबत)। जहाँ सामान्य शब्दों में उक्ति हो वहाँ शुद्ध-परमुख-उक्ति (उक्त) होगी और अन्योक्ति द्वारा कथन होने पर गर्भित परमुख उक्ति (गरबत परमुख उक्त) होगी।

सन्मुख उक्ति (उक्त)—जहाँ वर्णनीय व्यक्ति का वर्णन उसी को सम्बोधन कर के किया गया हो वहाँ सन्मुख उक्ति होती है। इस उक्ति के भी उपर्युक्त रीति से ही शुद्ध और

गर्भित—दो भेद होते हैं।

परामुख उक्ति (उक्त)—जहाँ कवि अपने वचनों में वर्णनीय विषय का वर्णन न कर किसी अन्य के मुख से वर्णन कराये वहाँ परामुख उक्ति होती है। इस परामुख उक्ति के भी परमुख-परामुख-उक्ति तथा सन्मुख-परामुख-उक्ति नामक दो भेद हैं।

श्रीमुख उक्ति (उक्त)—जहाँ वर्णनीय व्यक्ति अपने ही मुख से अपनी अवस्था का वर्णन करता है वहाँ श्रीमुख उक्ति होती है। उस के भी कल्पित-श्रीमुख-उक्ति और साक्षात्-श्रीमुख-उक्ति (साख्यात श्रीमुख उक्त) नामक उपभेद हैं। कल्पित-श्रीमुख-उक्ति में नायक अपने विषय में कुछ कल्पनाएँ करता है और साक्षात्-श्रीमुख-उक्ति में वह वस्तुतः अपना वर्णन करता है।

मिश्र उक्ति—उपर्युक्त चारों उक्तियों का किसी काव्य में एकत्र समावेश भी संभव है और उस अवस्था में वह काव्य मिश्र-उक्ति-काव्य कहलायेगा।

जथा

डिंगल साहित्य-शास्त्र का एक विवेचनीय तत्त्व जथा (यथा) है। यह वस्तुतः वाक्यों के विन्यास की एक रीति है। उस की परिभाषा देते हुए 'रघुनाथ-रूपक' में लिखा है—

रूपक माँहे रीत जो वरणन करे विचार।
सो क्रम निबहे सो जथा तवै मंछ विस्तार॥

अर्थात् कविता में वर्णन करने के लिए प्रारम्भ में जिस रीति को ग्रहण किया गया हो उसी का क्रम-पूर्वक निर्वाह करना जथा है। डिंगल-ग्रन्थकारों ने जथा के ग्यारह भेद बताये हैं। वे इस प्रकार हैं :—विधानीक, सर, सिर, वरण, अहिगत, आद, अंत, सुद्ध, इधक, सम, नूंन।

विधानीक जथा—कविता के प्रत्येक पद में क्रम से जिन वस्तुओं का वर्णन किया जाता है उन वस्तुओं की नामावलि चौथे पद में दे दी जाये तो विधानीक जथा होती है।

सर जथा—यथासंख्य अलंकार का प्रयोग कर के जहाँ एक वर्णन शृंखला दी जाती है वहाँ सर जथा होती है। सर जथा के चार उपभेद भी हैं। पहले में केवल यथासंख्य अलंकार के द्वारा वर्णन होता है। दूसरे में यथासंख्य के साथ उल्लेख अलंकार भी होता है। तीसरे में देखने या समझने वाले का नाम अन्त में आता है और अलंकार उल्लेख होता है। और चौथे भेद में वर्णनीय विषय का नाम प्रथम पद में ही आता है।

सिर जथा—गीत के प्रथम दोहले में जो वर्णन किया जाये वही बात अन्त तक शब्दान्तर द्वारा व्यक्त की जाये वहाँ सिर जथा होती है।

वरण जथा—जहाँ कवि प्रत्येक दोहले में नया वर्णन करे वहाँ वरण जथा होती है।

अहिगत जथा—जहाँ काव्य का वर्णन सर्प की गति के समान वर्णनीय विषय की दिशाएँ बदलता जाये वहाँ अहिगत जथा होती है।

आद जथा—वर्णनीय विषय का नाम प्रथम दोहले में हो और आगे के दोहले में उस का वर्णन हो वहाँ आद जथा होती है।

अन्त जथा—प्रारम्भ के दोहलों में जो वर्णन हों उन से अंतिम दोहले में कुछ सार निकाला जाये वहाँ अंत जथा होती है।

सुद्ध (शुद्ध) जथा—प्रथम दोहले में जो वर्णन हो वही वर्णन अंत तक के दोहलों में

निभाया जाये वहाँ शुद्ध जथा होती है।

इधक (अधिक) जथा—वर्णनीय का वर्णन रूपकालंकार द्वारा कर के अंत में व्यतिरेक अलंकार द्वारा उपमेय को उपमान से बढ़ा कर बताया जाये वहाँ इधक जथा होती है।

सम जथा—जहाँ केवल रूपकालंकार द्वारा वर्णनीय का वर्णन हो वहाँ सम जथा होती है।

नूँन (न्यून) जथा—जहाँ उपमेयों और उपमानों को एक-सा बताते हुए अन्त में उपमान को उपमेय के सम्मुख न्यून बताया जाये वहाँ नूँन जथा होती है।

दग्धाक्षर (दघक्षर)

डिंगल के कवियों ने दग्धाक्षरों का भी बहुत अधिक ध्यान रखा है। दग्धाक्षरों का विचार हिन्दी के अन्य पिंगल ग्रन्थों में भी मिलता है। परन्तु उन का उतना ध्यान सम्भवतः वहाँ नहीं रखा जाता जितना डिंगल में रखा जाता है। पर दग्धाक्षरों के विषय में कोई एक मत नहीं है। डिंगल के कुछ ग्रन्थों में ग, ड, ढ, ट, य, ण, द, न, प, म, ह, झ, घ, र, ख, त, ल, भ, को दग्धाक्षर माना है तो कुछ के मत से केवल ह, ज, च, र, ष, न, ल, भ ही दग्धाक्षर हैं। इन के अतिरिक्त म, ढ और प को आदि शब्द के मध्य में और झ, ट और क को आदि शब्द के अन्त में रखना भी निषिद्ध माना गया है।

काव्य-दोष

संस्कृत साहित्य के दोष-विचार के अतिरिक्त कुछ अन्य दोषों का विवेचन भी डिंगल के ग्रन्थों में मिलता है। वे हैं—अन्ध, छबकाल, हीण, निनंग, पाँगलो, जातिविरोध, अपस, नालछेद, पखतूट और बहरो। इन के लक्षण नीचे दिये जाते हैं।

अन्ध—जहाँ एक ही पद्य में अनेक उक्तियों का एक साथ समावेश हो वहाँ अन्ध दोष होता है।

छबकाल—जहाँ डिंगल के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हो वहाँ छबकाल दोष होता है।

हीण—जहाँ वर्णनीय के नाता-रिश्ता, जाति आदि का यथोचित वर्णन न हो वहाँ हीण दोष होता है।

निनंग—जहाँ क्रम-भंग हो वहाँ निनंग दोष होता है।

पाँगलो—जहाँ नियम-विरुद्ध मात्रा और वर्ण हों वहाँ पाँगलो दोष होता है।

जातिविरोध—जहाँ एक साथ विभिन्न प्रकार के गीतों का समावेश हो वहाँ जाति-विरोध दोष होता है।

अपस—जहाँ निरर्थक शब्द-योजना हो और कोई स्पष्ट अर्थ न प्रकट हो वहाँ अपस दोष होता है।

नालछेद—जहाँ जथाओं का यथावत् निर्वाह न हो वहाँ नालछेद दोष होता है।

पखतूट—जहाँ किसी चरण में सानुप्रास शब्दावलि हो और कहीं अनुप्रास-हीन वहाँ पखतूट दोष होता है।

वहरो—जहाँ वाक्य के किसी शब्द को उलटा कर के रखने से अशुभ अर्थ व्यक्त हो वहाँ वहरो दोष होता है।

डिंगल का छन्द-शास्त्र

जैसा कि ऊपर बता चुके हैं डिंगल के कवि संस्कृत और हिन्दी के सभी छन्दों का प्रयोग करते हैं, परन्तु साथ-ही-साथ उन का अपना पृथक् छन्द-शास्त्र भी है जिस का संक्षिप्त परिचय यहाँ आवश्यक है।

हिन्दी के दोहे छन्द के अनेक रूप डिंगल में देखने को मिलते हैं। ये भेद हैं:—शुद्ध दूहो, सोरठियो दूहो, वडो दूहो, तुम्बेरी दूहो और खोड़ो दूहो।

शुद्ध दूहो—यह हिन्दी का दोहा छन्द है।

सोरठियो दूहो—यह हिन्दी का सोरठा है।

वडो दूहो—इस में पहले और चौथे चरण में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती है तथा दूसरे और तीसरे में तेरह-तेरह। इस का दूसरा नाम साँकलियो दूहो भी है।

तुम्बेरी दूहो—यह वडे दूहे का उलटा है, अर्थात् इसके पहले और चौथे चरण में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं और दूसरे तथा तीसरे में ग्यारह-ग्यारह।

खोड़ो दूहो—इस के पहले और तीसरे चरण में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं और दूसरे तथा चौथे में क्रमशः तेरह तथा छह मात्राएँ होती है।

हिन्दी में जिस को छप्पय कहा जाता है उस को डिंगल में कवित्त कहते है। उस के तीन भेद है :—कवित्त, शुद्ध कवित्त और दोढो कवित्त।

कवित्त—इस में छह चरण होते हैं। पहले चार रोला के और शेष दो दोहा के।

शुद्ध कवित्त—यह हिन्दी का छप्पय है। इस में पहले चार चरण रोला के और अन्तिम दो उल्लाला के होते हैं।

दोढो कवित्त—यह आठ चरणों का छन्द है। पहले छह चरण रोला के और बाद के दो उल्लाला के होते है।

संस्कृत के मुक्तादाम (मोतीदाम), भुजंग-प्रयात, तोमर, त्रोटक आदि वर्णिक छन्दों का भी डिंगल में प्रयोग होता है। परन्तु कभी-कभी उन को वर्णिक के स्थान पर मात्रिक छन्दों के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है।

इन के अतिरिक्त डिंगल का विशेष छन्द निसाणी है जिस के ग्यारह भेद हैः—शुद्ध, गर्वत, गध्धर, पैड़ी, सिरखुली, सोहणी, रूपमाला, मारू, सिंहचली, झींगर, दुमिला और वार।

कुण्डलिया छन्द के डिंगल में पाँच भेद हैं; यथा—झड़-उलट, राजवट, शुद्ध, दोहाल और कुण्डलनी। इन के लक्षण क्रमशः इस प्रकार हैं :—

झड़-उलट—इस में पहले एक दोहा और फिर बीस-बीस मात्राओं के चार पद होते हैं।

राजवट—यह आठ चरणों का छन्द है। पहले दोहा होता है और फिर चौबीस-चौबीस मात्राओं के छह पद होते हैं।

शुद्ध—यह छह चरणों का छन्द है। उस में पहले दोहा और फिर चौवीस-चौवीस मात्राओं के चार पद होते हैं।

दोहाल्—इस में पहले दोहा और फिर चौवीस-चौवीस मात्राओं के छह पद होते है। अन्तिम पद में प्रथम पद की ही आवृत्ति होती है।

कुण्डलनी—इस में प्रथम आर्या छन्द होता है और बाद में चार पद काव्य छन्द के होते हैं।

इन छन्दों के अतिरिक्त डिंगल की एक विशेषता है उस के गीत। गीत नाम से प्रायः लोगों को यह भ्रम हो जाता है कि ये कोई गाने की वस्तु होंगी और उन को गाने वाला कोई साधारण गायक होता होगा। परन्तु वस्तुतः ये गीत गाये नहीं जाते थे, एक विशेष लय से पढ़े (रिसाइट किये) जाते थे। पढ़ने की शैली अति भव्य और प्रभावशाली होती थी जिस को सुन कर वीर लोग हँसते-हँसते प्राणोत्सर्ग के लिए प्रस्तुत होते थे। आज भी उस भव्य शैली में गीत पढ़ने वाले चारण कवि यत्र-तत्र मिल जाते हैं परन्तु वे विरले ही हैं। इन गीतों की एक विशेषता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह यह कि एक गीत में अनेक दोहले होते हैं और प्रथम दोहले में जिस भाव का वर्णन होता है उसी भाव का वर्णन शेष दोहलों में भी भंग्यन्तर से किया जाता है। कवि साधारण हो तो पुनरावृत्ति प्रतीत होती है परन्तु प्रभावशाली कवि ऐसे अनोखे ढंग से वक्रता के साथ रचना करते हैं कि पुनरावृत्ति प्रतीत ही नहीं होती। दोहले में प्रायः चार चरण होते हैं। एक गीत के सब दोहले समान होते हैं। कुछ गीतों में प्रथम दोहले के प्रथम चरण में दो या तीन मात्राएँ या वर्ण अधिक होते हैं जो संभवतः गीत का आरम्भ सूचित करते है। छन्दों की भाँति दोहले मात्रिक भी होते हैं और वर्णिक भी। उन में भी संस्कृत छन्दों के समान सम, अर्द्धसम और विषम आदि भेद होते हैं। प्रायः यह दोहले सतुकान्त होते हैं परन्तु ऐसे गीत भी उपलब्ध है जिन मे अतुकान्त दोहलों का प्रयोग है। हिन्दी के लिए मात्रिक छन्दों में अतुकान्त कविता नयी वस्तु है परन्तु डिंगल में वह प्राचीन काल से चली आयी है। डिंगल के गीतों की संख्या पचहत्तर के लगभग है जिन का 'रघुनाथ-रूपक' आदि अनेक लक्षण-ग्रन्थों में विवेचन मिलता है। परन्तु उन का वैज्ञानिक क्रम से भेदोपभेद-पूर्वक विवेचन 'राजस्थान भारती' के भाग दो, अंक एक, में प्रोफ़ेसर नरोत्तमदास स्वामी ने 'डिंगल गीतों की सारणी' नामक निबन्ध में बहुत ही सुन्दर रीति से किया है।

गीतों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है—मात्रिक और वर्णिक। मात्रिक गीतों के पुनः तीन भेद हो सकते है—सम, अर्द्धसम और विषम। उन के नाम इस प्रकार हैं:—

मात्रिक सम—इकखरो, भाख, अरध भाख, सुवग, सावक अडल के दो भेद, उमंग, कविइलोल् या घड़उथल्, सावझड़ो छोटो या पालवणी द्वितीय भेद, अरध-सावझड़ो छोटो या अरध पालवणी या दुमेल् पालवणी या दुमेल्, पालवणी त्रमेल् या झड़लुपत, सेलार, त्रबंकड़ो या घोड़ादमो, पालवणी प्रथम भेद, गोख या जंघखोड़ो, सावझड़ो (वडो), अरध सावझड़ो (वडो), धमाल्।

मात्रिक अर्धसम—प्रोढ द्वितीय भेद कैवार, प्रोढ भेद या सोरठियो, अरट, सालूर, जाँगड़ो साणोर या अरटी (अन्य नाम पुणिसाणोर, कुणियो छोटो), अरटियो, खुड़द

सारगोर, सिंघचलो, झड़मुगट, सोहणो सारणोर, अमेल, वेलियो, अमेल दूजो, हंसावलो, छोटो सारणोर, पंखाली (इस गीत में केवल तीन ही दोहले होते हैं), ल्हैचाल, पहाड़गत, शुद्ध सारणोर, प्रहास सारणोर या गरबत सारणोर, मुगताग्रह या रिणखरो, वडो सारणोर (सारणोर), अरध भाखड़ी (भाखड़ी का आधा)।

मात्रिक विषम—त्रपंखो, त्रबंको, चितइलोल, चोटियो, अमेल, काछौ, दीपक, लघु चितविलास, चितविलास, हेलो, चोटियाल, झमाल, गजगत, ललतमुगट, मनमोद, सतखणी, अठताली, भँवर गुंजार दो भेद, डोढो, त्राटको, मंदार, त्रगवड़ी, त्रकूटबंध—दो भेद।

समवर्णिक—अरध गोखो, गोखो प्रथम भेद।

अर्धसम वर्णिक—अेकल वैणी दो भेद, सपंखरो।

विषम वर्णिक—गोखो-द्वितीय भेद, वीरकंठ, सवइयो।

विस्तार के भय से इन का पूर्ण विवेचन यहाँ नहीं किया जा रहा है। जिज्ञासु पाठक "रघुनाथ-रूपक गीताँ रौ" अथवा राजस्थान-भारती (भाग २, अंक १) में "डिंगल गीतों की सारणी" शीर्षक प्रोफ़ेसर नरोत्तमदास स्वामी का निवन्ध पढ़ें।

डिंगल के छन्द-शास्त्रकारों ने इन पद्य-बन्धों के अतिरिक्त कुछ गद्य-बंधों का भी विवेचन किया है। उन के अनुसार गद्य-बन्ध के भेद हैं—दवाबैत, वचनका (वचनिका) और वार्ता। ये गद्य-खंड प्रायः तुकान्त शब्दों से भरपूर होते हैं। इन के लक्षणों की कोई स्पष्ट व्याख्या प्राप्य नहीं है। लक्षण ग्रन्थों में यह भी स्पष्ट नहीं है कि वचनिका, वार्ता आदि दवाबैत के ही भेद हैं अथवा दवाबैत गद्य-बंध का वैसा ही एक भेद मात्र है जैसे वचनिका आदि। वचनिका के भी दो भेद माने है—पद्य-बन्ध और गद्य-वन्ध। गद्य-बंध वचनिका के दो उपभेद माने हैं—एक में आठ मात्रा के पद युग्म होते हैं तो दूसरी में बीस मात्रा के।

डिंगल के अलंकार

डिंगल के कवियों ने संस्कृत साहित्य-शास्त्र के सभी अलंकारों को अपनाया है पर उन के अतिरिक्त एक विशेष अलंकार का बहुत अधिक ध्यान रखा है। यहाँ तक कि उस के उपस्थित होने पर अनेक दोषों का निराकरण भी सम्भव माना है। यह अलंकार है "वयण सगाई"। वयण सगाई वस्तुतः छन्द के प्रत्येक चरण में ऐसे शब्दों की योजना है कि चरण के प्रथम शब्द का प्रारम्भ जिस अक्षर से हो उसी अक्षर से अन्तिम शब्द का भी हो। यह एक प्रकार का अनुप्रास माना जा सकता है। परन्तु डिंगल के शास्त्रकारों ने आदि अक्षर का ध्यान रखते हुए यह छूट दी है कि उसी अक्षर की आवृत्ति न हो सके तो उस के समकक्ष दूसरे अक्षर की हो और ऐसे समकक्ष अक्षर नियत कर दिये गये है, जो इस प्रकार हैं—

आ, इ, उ, ऐ, य और व—ये छह अक्षर प्रथम वर्ग के हैं। अन्य वर्ग हैं—ज-झ, ब-व, प-फ, म-ण, ग-घ, त-ट, ध-ढ, द-ड और च-छ। जहाँ उसी वर्ण की आवृत्ति सम्भव न हो वहाँ वर्ग के दूसरे वर्ण की आवृत्ति से काम चल जायेगा।

वयण सगाई के मुख्य तीन भेद हैं—अधिक, सम और न्यून।

अधिक वयण सगाई—जो वर्ण आदि में आया है उसी शब्द की आवृत्ति अन्तिम शब्द के आदि में होने पर अधिक वयण सगाई होगी।

सम वयण सगाई—आ, इ, उ, ऐ, य और व सम अक्षर हैं। इन में किसी की आवृत्ति होने से सम वयण सगाई होगी।

न्यून वयण सगाई—प-फ, व-ब आदि वर्गों के अक्षर मित्र अक्षर हैं। मित्राक्षरों की आवृत्ति न्यून वयण सगाई कहलायेगी।

मोहरा

यह तुक का पर्याय है जिसे पिंगल के आचार्य अन्त्यानुप्रास भी कहते हैं। इस के भी डिंगल में तीन भेद माने गये हैं—अधिक, सम और न्यून। जहाँ चार वर्णों की तुक हो वहाँ अधिक मोहरा होगा, तीन वर्णों की तुक होने पर सम मोहरा और केवल दो की तुक होने से न्यून मोहरा कहलायेगा।

इस प्रकार डिंगल के कवि के लिए यह अपेक्षित था कि वह संस्कृत और ब्रज-भाषा आदि के साहित्य-शास्त्र तथा छन्द-शास्त्र से तो परिचित हो ही पर उपर्युक्त विशिष्ट अलंकार, छन्द, दोष इत्यादिक के लक्षणों का भी ज्ञाता हो।

डिंगल भाषा

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है डिंगल का विकास शौरसेनी प्राकृत की गौर्जर अपभ्रंश से हुआ। किस काल में गुजराती और मारवाड़ी (डिंगल) एक-दूसरे से पृथक् हुईं यह स्पष्टतः बता सकना सम्भव प्रतीत नहीं होता। तेस्सितोरी ने तेरहवीं शताब्दी से डिंगल का प्रारम्भ माना है और सोलहवीं शताब्दी तक के काल को प्राचीन-डिंगल-काल और सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से अब तक के काल को उत्तर-डिंगल-काल माना है। इस काल-क्रम का भेद उस ने प्रमुखतः डिंगल ग्रन्थों की प्रतियों में प्राप्य अक्षरी के आधार पर किया है। उस के अनुसार पूर्व-डिंगल-काल में जहाँ अइ, अउ आदि उच्चारण थे वहाँ उत्तर-डिंगल-काल में वे संध्यक्षर हो गये थे और वर्तमान ऐ और औ में परिणत हो चुके थे। काल-विभाजन के इस आधार को बहुत प्रामाणिक तो नहीं माना जा सकता परन्तु डिंगल भाषा के विकास में इस प्रकार का ध्यान रखना भी आवश्यक है। डा० मोतीलाल मेनारिया ने 'डिंगल भाषा और साहित्य' में तेस्सितोरी के मत से असहमति प्रकट की है और राजस्थानी के विकास को इस प्रकार विभक्त किया है :—

प्रारम्भ काल—वि० सं० १०४५ से १४६० तक।
पूर्व-मध्य काल—वि० सं० १४६० से १७०० तक।
उत्तर-मध्य काल—वि० सं० १७०० से १९०० तक।
आधुनिक काल—वि० सं० १९०० से अब तक।

इस काल-विभाजन में किस बात का प्रमुखतः ध्यान रखा गया यह स्पष्ट नहीं है परंतु इतना स्पष्ट है कि मेनारियाजी के अनुसार सम्वत् १४६० तक गुजराती और राजस्थानी का भेद स्पष्ट नहीं हो पाया था। यह वह काल था जिस की भाषा के लिए तेस्सितोरी ने प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी नाम उचित समझा है और गुजराती साहित्यकारों ने जूनी गुजराती। १४६० से १७०० तक के काल में राजस्थानी और गुजराती स्पष्टतः दो भाषाओं के रूप में

बँटवारा कर चुकी थीं पर राजस्थानी अथवा डिंगल में प्राचीन रूप तब भी विद्यमान थे। १७०० से बाद के काल में प्राचीन रूप कुछ कम हो गये परन्तु परम्परागत अपभ्रंश आदि की शब्दावलि का प्रयोग बहुत-कुछ विद्यमान रहा जिस का स्पष्ट कारण कवियों का राजाओं के आश्रित होना है। राज-सभाओं में पुरस्कारों की प्राप्ति के फल-स्वरूप काव्य-रचना प्रतियोगिता का विषय बन गयी थी। फलतः उस का विषय-क्षेत्र भी सीमित हो गया था और शब्दावलि, अलंकार, छन्द आदि सभी दृष्टियों से साहित्य कुछ कठघरों में बन्द हो गया था।

डिंगल भाषा के व्याकरण के विषय में अनेक विद्वान प्रयत्न कर चुके हैं परन्तु कोई बहुत प्रामाणिक व्याकरण अभी तक प्रकाश में नहीं आ पाया है। जो कुछ सामग्री प्राप्त है उस के आधार पर यहाँ डिंगल भाषा का संक्षिप्त परिचय कराया जा रहा है। वैसे थोड़ा विस्तृत विवेचन वचनिका की भाषा के विवेचन के प्रसंग में आगे मिलेगा।

डिंगल भाषा की ध्वनियाँ

स्वर—डिंगल में निम्नलिखित स्वर हैं :

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऍ, ए, ऐ, ऑ, ओ, औ, अं, अः।

इन के अतिरिक्त छन्द की सुविधा के अनुसार आ का अ से भिन्न एक ह्रस्व रूप भी मिलता है और इसी प्रकार औ का भी। संस्कृत का ऋ स्वर रि में परिणत हो जाता है। अइ, अउ के संधिस्वर भी डिंगल में प्राप्य हैं।

व्यंजन—डिंगल के व्यंजन प्रायः हिन्दी से मिलते-जुलते है। पर कुछ भिन्न भी हैं। वे निम्नलिखित हैं :

क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, स, ह, ळ, व़, ड़।

डिंगल में ड और ड़ स्पष्टतः दो भिन्न ध्वनियाँ हैं—हिन्दी के समान एक ही ध्वनिग्राम के सदस्य नहीं है। इसी लिए प्राचीन प्रतिलिपिकार दोनों के लिए दो सर्वथा भिन्न रूपों का प्रयोग करते थे।

स्वरों में स्वरित रूप भी होना डिंगल की विशेषता है। यह वस्तुतः स्वर के पश्चात् हकार के लुप्त होने के कारण उत्पन्न होने वाली ध्वनि है। परन्तु इस ध्वनि के फलस्वरूप अर्थ में पर्याप्त अन्तर हो जाता है। यथा—

नार (नारी), ना'र (सिंह); पीर (पीड़ा), पी'र (पीहर)।

वकार के डिंगल में दो भेद हैं—एक दन्तोष्ठ्य और दूसरा द्वयोष्ठ्य।

मूर्धन्य ष डिंगल में नहीं होता। उस का उच्चारण ख होता है। इसी लिए पुराने हस्त-लिखित ग्रन्थों में ख के स्थान पर सर्वत्र ष के ही चिह्न का प्रयोग हुआ है।

संज्ञाएँ—डिंगल के संज्ञा शब्दों में केवल एकवचन और बहुवचन अर्थात् दो ही वचन होते हैं। इसी प्रकार लिंग भी दो ही हैं—पुंलिंग और स्त्रीलिंग। डिंगल के कुछ प्राचीन ग्रन्थों में नपुंसकलिंग के भी पृथक् दर्शन होते है परन्तु परवर्ती काल में उसका स्थान सर्वत्र पुंलिंग ने ले लिया है। विभक्तियों में कहीं विभक्ति-चिह्न मात्र हैं तो कहीं पूरे शब्द विभक्ति

के भाव को व्यक्त करते हैं।

सर्वनाम—सर्वनामों में एक ही अर्थ के लिए अनेक शब्दों के प्रयोग हुए हैं। इस लिए किसी एक ही शब्द का निर्देश सम्भव नहीं है। यथा—'कौन' के लिए कुण, कूण, कवण, को, का, किण आदि अनेक रूप मिलते हैं। यह और वह के अर्थ को सूचित करने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग होता है उन में स्त्रीलिंग और पुंलिग का भेद रखा जाता है।

क्रियाएँ—क्रियाएँ प्रायः पृथक् रूप में भी मिलती हैं और संयुक्त रूप में भी अर्थात् अनेक क्रियाएँ मिल कर भी एक क्रिया का अर्थ व्यक्त करती हैं।

अव्यय—काल, स्थान आदि के सूचक एक-एक भाव के लिए भी डिंगल में अनेक शब्द मिलते है। ठीक वैसे ही जैसे सर्वनामों में। यथा—

'जैसे' के अर्थ में—जिम, जेम, ज्यूँ, जूँ आदि।

'वहाँ' के अर्थ में—तिहाँ, तठै, वठै, तेथे आदि।

इसी प्रकार कृदन्तों और तद्धितों के भी अनेक रूप डिंगल में मिलते हैं। इन शब्दों का कुछ परिचय वचनिका के भाषा-विषयक विवेचन में आगे मिल सकेगा।

'डिंगल' शब्द की व्युत्पत्ति

डिंगल नाम की व्युत्पत्ति के विषय में अनेक मत-मतान्तर रहे हैं और विद्वानों ने अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की हैं। उन का भी संक्षिप्त परिचय यहाँ आवश्यक है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है डिंगल शब्द का सर्व-प्रथम प्रयोग बाँकीदास की ग्रन्थावलि में देखने को मिलता है और इस प्रकार यह प्रयोग बहुत पुराना नहीं है। न डिंगल और पिंगल का वर्तमान भेद ही इतना पुराना है। यह बात 'रघुनाथ-रूपक गीताँ री' नामक ग्रन्थ को देखने से स्पष्ट हो जाती है। उन्नीसवीं शताब्दी के कवि मंछ ने 'रघुनाथ-रूपक' की रचना की। उस ने अपने ग्रन्थ को मारू भाषा का ग्रन्थ माना है, डिंगल का नहीं। और छन्द-शास्त्र का विवेचन होने के कारण उस ने अपने ग्रन्थ को पिंगल ग्रन्थ की संज्ञा दी है। इस से यह स्पष्ट है कि उस के समय में न तो पिंगल शब्द का भाषा के अर्थ में प्रयोग था और न मारू भाषा के लिए डिंगल शब्द का। डिंगल और पिंगल नाम का प्रचार प्रायः एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, के कार्य-कर्त्ताओं की कलम से ही अधिक हुआ। इन शब्दों का राजस्थानी उच्चारण डींगल् और पींगल् था परन्तु अंग्रेजी की अक्षरी की कृपा से डिंगल और पिंगल नाम ही अधिक प्रचलित हुए।

डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में जो विभिन्न मत हैं उन का समीक्षा सहित संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(१) तेस्सितोरी का मत—डिंगल का अर्थ अनियमित अथवा गँवारू था। व्रजभाषा परिमार्जित थी और साहित्य-शास्त्र के नियमों का अनुसरण करती थी उन के अभाव के कारण इस का नाम डिंगल पड़ा।

समीक्षा—तेस्सितोरी ने डिंगल का अर्थ गँवारू किस प्रकार किया यह समझ में नहीं आता। डिंगल वस्तुतः गँवारों की नहीं विद्वान् चारण-कवियों की भाषा थी। वह अपरिमार्जित भी नहीं थी। साहित्य-शास्त्र के नियम व्रजभाषा से कहीं अधिक कठोर थे क्योंकि

डिंगल के कवियों के लिए व्रजभाषा के साहित्य-शास्त्र के अतिरिक्त डिंगल के साहित्य-शास्त्र का भी ज्ञान अपेक्षित था। अत: तेस्सितोरी का मत युक्ति-संगत नहीं।

(२) **हरप्रसाद शास्त्री का मत**—डिंगल का मूल नाम डग्गल था। पिंगल की तुक पर डिंगल रख दिया गया। डिंगल किसी भाषा का नहीं कवित्व-शैली का नाम है।

समीक्षा—शास्त्रीजी का सारा भवन निम्नलिखित पद्यांश के आधार पर खड़ा हुआ है—

'दीसे जंगल् डगल् जेथ जल् वगल् चाटे।
अनहुता गल् दिये गला हूँता गल् काटे॥'

सम्भवत: शास्त्रीजी इस का अर्थ नहीं समझे और इस में डगल् शब्द का प्रयोग देखकर वे इसे ही डिंगल का पूर्व रूप मान बैठे। वस्तुत: यहाँ डगल् का अर्थ मिट्टी का ढेला है; भाषा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। अत: शास्त्रीजी की कल्पना मिथ्या है।

(३) **गजराज ओझा का मत**—डिंगल में ड वर्ण बहुत प्रयुक्त होता है, यहाँ तक कि यह डिंगल की एक विशेषता हो गया है। ड वर्ण की प्रधानता के कारण पिंगल के साम्य पर इस भाषा का नाम डिंगल रखा गया।

समीक्षा—यह भी विचित्र कल्पना है। किसी वर्ण-विशेष की अधिकता के कारण किसी भाषा का नाम उस के आधार पर रखे जाने का और कोई उदाहरण संसार में नहीं मिलता। अतएव ओझाजी के मत को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

(४) **पुरुषोत्तमदास स्वामी का मत**—डिंगल शब्द डिम+गल से बना है। डिम का अर्थ है डमरू की ध्वनि और गल का गला। डमरू की ध्वनि रण-चण्डी का आह्वान करती है। डमरू वीर रस के देवता महादेव का बाजा है। गले से जो कविता निकल कर डिम की तरह वीरों के हृदय को उत्साह से भरे उसी को डिंगल कहते हैं।

समीक्षा—न तो महादेव वीर रस के देवता हैं और न कहीं डमरू की ध्वनि उत्साह-वर्धक मानी गयी है। अतएव इस कल्पना का आधार ही अशुद्ध है।

(५) **उदयराज उज्ज्वल का मत**—चारणों ने पिंगल का परिहास करने के लिए पिंगल का अर्थ पाँगळी (पंगु) किया और अपनी भाषा को उस के प्रतिवाद-स्वरूप डिंगल (उडिंगल) अर्थात् उड़ने वाली भाषा बताया। पिंगल अनेक नियमों से जकड़ी होने के कारण पंगु है और डिंगल स्वच्छन्द होने के कारण उड़ने वाली अर्थात् स्वच्छन्द गति से मुक्त-विहार करने वाली।

समीक्षा—डिंगल के नियमों से मुक्त होने का विवेचन ऊपर हो चुका है और यह बताया जा चुका है कि डिंगल में पिंगल की अपेक्षा कहीं अधिक नियम-बद्धता है।

(६) **मोतीलाल मेनारिया का मत**—यथार्थत: डिंगल का शुद्ध रूप डींगल् है। डींग का अर्थ बढ़ा-चढ़ा कर बोलना है और डिंगल का अर्थ डींग वाली। जिस भाषा में बहुत अत्युक्ति-पूर्ण वर्णन था वह थी डींगल्।

समीक्षा—डिंगल के साहित्य को अत्युक्ति-पूर्ण होते हुए भी डींग-मात्र मानना युक्ति-संगत नहीं है। 'डींग' शब्द का कुछ बुरा भाव है और चारण कवि अपने काव्य की भाषा को डींगल् बता कर अपने साहित्य की निन्दा नहीं करेंगे। अतएव मेनारियाजी की व्युत्पत्ति भी

ठीक प्रतीत नहीं होती ।

इस प्रकार डिंगल की उत्पत्ति के विषय में कुछ भी निर्णय अभी नहीं हो पाया है । परन्तु फिर भी उस का अर्थ निश्चित हो चुका है और वह है पश्चिमी राजस्थानी का साहित्यिक रूप । इसी प्रकार पिंगल का भी अर्थ है ब्रजभाषा से मिलती-जुलती पूर्वी राजस्थानी का वह साहित्यिक रूप जिसमें डिंगल की पर्याप्त शब्दावलि होती है ।

(२) राजस्थान का वचनिका-साहित्य

प्रबन्ध काव्य के मध्य पद्य के साथ-साथ गद्य का भी प्रयोग करने की परंपरा राजस्थान के साहित्य में दीर्घ काल से रही है। इस प्रकार के काव्य पिंगल में भी हैं और डिंगल में भी जिन में पद्य के मध्य सुमधुर, सालंकार, तुकांत गद्य की छटा देखने को मिलती है। ये गद्य-खंड कहीं डिंगल अथवा पिंगल में हैं तो कहीं खड़ी बोली में। परवर्त्ती काल में जब सौती-साहित्यकारों में बहुभाषा-ज्ञान-प्रदर्शन की लालसा बढ़ी तो फारसी शब्दों से परिपूर्ण गद्य के भी दर्शन हुए। ये गद्य-खंड कहीं वचनिका नाम से मिलते हैं तो कहीं वारता (वार्ता) अथवा दवावैत नाम से। कुछ उदाहरणों से उपर्युक्त विशेषताएँ स्पष्ट होंगी :—

वारता—

(क) दूतिका नाम। सांतिका सुमंतिका सहचरिका मनहरिका। पंग रावि परठवासी। किसी परठवासी। (पृथ्वीराज-रासो)

(ख) औरंगसा पातसा आसुर अवतार। तपस्या के तेज-पुञ्ज एक से विसतार।
माप का विहाई सा प्रताप का निदाँन। मारतंड आगे जिसी जोतसी जिहाँन।
(राज-रूपक)

(ग) सब कूँ बुलाय वैण अकबरसाह बोले। मेरी निसाँ खातरी है तुमारे महोले।
तुम पातसाहाँ के संवादी सूर तें सूर। तुमारी सहाय आवै मेरे मुख नूर।
(राज-रूपक)

दवाबैत—

(घ) ऐसा गढ़ जोधाँण और सहर का दरसाव। जिसके चौतरफ बगीचों का डंबर और दरियावों का वणाव। पहिले बगीचों की सोभा कहि के दिखाय। पीछे दरियावों की तारीफ जिस के गुण गाय। सो कैसे कह दिखाये। जल निवाणों का निवास। रति-राज का वास। (सूरज-प्रकाश)

(ङ) जिस वखत में और भी हुँनर बंधू ने सरब हुँनर का तमासा दिखाया सो कहि कैसे दिखाया। जिस बखत कालिहार सूरतपाक हौंसनायकों ने नजर गुजराए। आसमानी सौहरा कियै पल्ले से झिलते आये। छछोहे हौंसनायकों की हमराह से छुट्टे। जगजेठों की तरतीव जोम से जुट्टे। (सूरज-प्रकाश)

वचनिका—

(च) तमाम आलमगीराँ गिरफ्तार। आलम पनाह जिहान। ईरान तूरान स्याँह सख्त जब्द कर्दम [तख्त]। कूवत दस्त। मस्त पहलवान साहजहाँ आलमीगीर। मुलक जारति खुसखवरि। दक्खिन तख्त ममारख वख्त विलंद जाहर पीर। हुँनर हैफ हकीम हिकमति

हनीकति खुदाय हेल बनाये। विलंद कोह पलँ दराज कस्त सिकार मस्त फील सेर नजरूँ दिखाये। स्वार मुलक हलसाल रइयति वेरान नाहूवत। ससफ फील सुत्तर सिपाह आजिज विचारे। स्याह नादान खुरदस्याल दीवान बेसहूर चीज न्यामति सामान किल्लूँ उतारे। रवी खरीफ आमदजरात मुलक मस्ती फिकर फहम मनसूबे करदम। जर विसार आमद गाफिल चिकारे। (रतन-रासो)

वार्त्ता—

(छ) कहिलै जिहानियाँ सैं मीराँ अर्ज गुजरानी। बंदे दरिगाह पवलिये पाले साहिजहाँ किरानसानी। सवाई राव दरजाँग के पोते। जिन की औलादि मे हेमता सूर सामंत पैदासि होते। जिस दरजाँग एक सौ इकहत्तर फौजूँ के फतूह पाये। दूसरा रतन कहाये। (रतन-रासो)

यों पद्य-काव्यों के मध्य गद्य-खंडों के अनेक उदाहरण भाट-चारणों के साहित्य में उपलब्ध होते हैं। पर 'वचनिका' नाम से ऐसे बहुत कम चम्पू-ग्रन्थ मिलते हैं जिन में गद्य भाग मात्रा में आधे के लगभग हो और जिन से यह प्रकट हो कि कवि का मुख्य उद्देश्य गद्य द्वारा वर्णन करने का था तथा पद्य का प्रयोग केवल सरसता की वृद्धि के लिए ही किया गया था। ऐसे प्रमुख तो दो ही काव्य मिलते हैं। प्रथम है 'वचनिका अचलदास खीची री चारण सिवदास री कही' और दूसरी उसी को आदर्श मान कर लिखी हुई 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री महेसदासौत री खिडिया जगा री कही'। इसी कोटि की एक वचनिका वृन्द कवि रचित है जिस का नाम है 'वचनिका-स्यान किशनगढ'। इस में चम्पू रूप में किशनगढ़ राज्य का इतिहास है। इस को वृन्द के पुत्र वल्लभ जी ने अपने महाराजा को सुना कर जागीर प्राप्त की थी।

सिवदास-रचित वचनिका को आदर्श मान कर जगा ने अपनी वचनिका निर्मित की थी अतः उस का कुछ परिचय देना आवश्यक है। मालवा के शासक होशंग गोरी ने जब अचलदास खीची के दुर्ग गागरौण पर चढाई की थी तो अचलदास खीची ने अपने पुत्र पाल्हणसी को वंश जीवित रखने के लिए और कवि सिवदास को काव्य द्वारा यश अमर करने के लिए युद्ध से बच निकलने का आदेश दिया। कवि ने इस आदेश का यथार्थ पालन किया और अचलदास का नाम ध्रुव-स्थायी कर दिया।

'अचलदास खीची री वचनिका' में गद्य के बीच में दूहा, छप्पय, कवित्त, कुण्डलिया आदि छन्द जुड़े हुए हैं पर प्रधानता तुक-पूर्ण गद्य की ही है। गद्य का एक उदाहरण देखिए :—

'इसा एक ते पातसाह रा कटकबंध अचलेसवर ऊपर छूटा। वाटका खडइ धरा खूटा। दह का पाणी दूटा। धनि धनि हो राजा अचलेसवर थारउ जीयो। जिणि पातिसाह सैं उखाड लीयो। परबतां सिरि पंथ लागा। दुघट घट भागा। सूर सूझे नहीं खेह आगा।'

वचनिका की रस-स्निग्धता का परिचय कराने के लिए करुण रस का एक दोहा पर्याप्त होगा—

'पाल्हणसी पुहवी रह्यो अनि समह्या सरग्गि।
तिणि वेला हीया भरी राइ राइ रोवण लग्गि।।'

स्वाधीनता की गरिमा का प्रतिपादन करने वाले दो दोहे देखिए :—

'एकइ वन्नि वसंतड़ा एवड़ अंतर काइ।
सीह कवड्डी ना लहै गैवर लाख विकाइ॥
गैवर गलइ गलत्थियौ जहँ खंचै तहँ जाइ।
सीह गलत्थण जे सहै तउ दह लाखि विकाइ॥'

(एक ही वन में रहने वाले सिंह और हाथी में इतना अन्तर क्यों है कि हाथी एक लाख रुपये में बिकता है जबकि सिंह की कौड़ी भी नहीं मिलती ?

उत्तर—हाथी गले में बन्धन धारण किये हुए जहाँ घसीटा जाता है वहीं जाता है। यदि सिंह बन्धन स्वीकार करे तो दस लाख में बिके।)

क्षत्राणियों में जौहर के लिए उत्सुकता का वर्णन देखिए—

'छूटि न जाई छेह माहे जउहर में छल।
आइ आइ चडै उतावली पटराणी पागेह॥'

वचनिका का अन्तिम पद्य भी द्रष्टव्य है :—

'सातल सोम हमीर कन्ह जिम जौहर जालिय।
चढिय खेति चहवाँण आदि कुलवट्ट उजालिय॥
मुगत चिहुर सिरि मंडि वप्पि कँठि तुलसी वासी।
भोजाउति भुज बलहि करिहि करिमर कइलासी॥
गढि खंडि पडंता गागुरणि दिढ दाखे सुरिताण दल।
संसारि नाँव आतम सरिग अचलि वेधि कीधा अचल॥'

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि सिवदास प्रतिभाशाली कवि था जिस का अनुकरण करने में जगा जैसे मेधावी कवि ने भी गौरव समझा। सिवदास और जगा दोनों की कथाओं की रूप-रेखा में साम्य है। राजपूत वीरों की मंत्रणा, सतियों के जौहर, विष्णु भगवान द्वारा सूर्य-मंडल-भेदी पुरुष-व्याघ्रों के सम्मान आदि के वर्णन दोनों ग्रन्थों में एक-से हैं। जगा की वचनिका का 'आसीस वचनिका' भाग तो सिवदास की 'विरुदावली' का उद्धरण मात्र है। इस से स्पष्ट है कि जगा के हृदय में सिवदास की वचनिका के प्रति क्या भाव रहे होंगे। साहित्यिक प्रतिभा की दृष्टि से जगा चाहे सिवदास से आगे निकला हो पर वह चला सिवदास के प्रस्तुत किये हुए मार्ग ही पर है। इस से सिवदास की गरिमा स्पष्ट है। उस की कीर्ति अमर है।

सिवदास के निर्दिष्ट मार्ग पर चल कर भी जगा साहित्यिक दृष्टि से उस से कम नहीं रहा अपितु वह उस से आगे निकला। उस का काव्य चारण कवियों और पाठकों में सर्व-प्रिय रहा। उस को अनुपम सम्मान मिला।

(३) खिड़िया जगा का जीवन-चरित्र

वचनिका के लेखक खिड़िया जगा के विषय में बहुत कम विदित है। उसके विषय में गवेषणा करने वालों में प्रमुख तेस्सितोरी हैं। वचनिका में जगा के जीवन-चरित्र अथवा वंश-परम्परा आदि के विषय में कोई विवरण नहीं मिलता न अन्यत्र ही कुछ मिलताहै। यहाँ तक कि सेमलखेड़ा (सीतामऊ—मालवा) में रहने वाले उस के वंशज भी उस के पिता के नाम तक को ठीक से नहीं बता पाये। परन्तु काव्य-जिज्ञासु तेस्सितोरी ने जगा का विवरण पाने का विशेष प्रयत्न किया और उस को सफलता भी मिली। चारणों के भाट राव ने वंशावली के प्रसंग में जो सूचना तेस्सितोरी को दी थी उस के अनुसार जगा का वंश-वृक्ष इस प्रकार है—
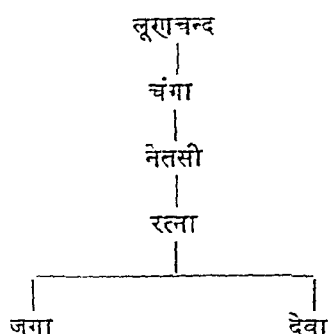
जगा के जीवन-चरित्र आदि के विषय में भी तेस्सितोरी ने खोज करने का प्रयत्न किया परन्तु जगा के वंशजों से कोई उपयुक्त सामग्री न मिल सकी। उन के अनुसार वह महाराज जसवन्तसिंह की सेवा में रहता था। मारवाड़ में उस के पूर्वजों को साँकड़ा नामक ग्राम शासन में मिला था। शाहजहाँ ने जब जसवन्तसिंह को औरंगजेब के विरुद्ध अभियान में नियुक्त किया तो जगा भी उस के साथ युद्ध-भूमि में गया परन्तु उस को योद्धाओं में सम्मिलित नहीं किया गया। रतनसिंह ने अपने पुत्र रामसिंह के संरक्षण में उस को भेज दिया और आज्ञा दी कि वह इस युद्ध की कथा को काव्य-रचना द्वारा अमर कर दे।

जगा के वंशजों द्वारा बतायी हुई यह कथा वस्तुत: कहाँ तक सत्य है यह विचारणीय है। इस कथा का निर्माण 'वचनिका अचलदास खीची री' के रचयिता चारण सिवदास की कथा के अनुकरण पर किया गया प्रतीत होता है। अचलदास खीची ने अपने पुत्र पाल्हणसी के संरक्षण में चारण सिवदास को रखा था और उस को आज्ञा दी थी कि वह अपने काव्य की रचना द्वारा अचलदास के नाम को जगद्विदित कर दे। जगा के जसवंतसिंह का आश्रित

होने के विषय में सन्देह होने के लिए प्रमाण भी उपलब्ध हैं। वस्तुतः जसवन्तसिंह की सेना में एक अन्य जगा भी था जो युद्ध में खेत रहा था। अतः नाम साम्य के कारण ही यह भ्रम उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है। जगा रतलाम के रतनसिंह की सभा का ही कवि रहा होगा। रतनसिंह की प्रशंसा में उस के कुछ अन्य कवित्त भी प्राप्य हैं जिस से स्पष्ट है कि वह रतनसिंह के जीवन-काल में उस का सभा-कवि था। रतनसिंह के पश्चात् वह रतनसिंह के पुत्र रामसिंह का आश्रित रहा और उसी के आश्रय में रह कर उस ने वचनिका की रचना की। रामसिंह कवियों का आश्रय-दाता था। उस के दरवार में अन्य भी अनेक कवि विद्यमान थे। रतनसिंह के जीवन-चरित्र को ले कर 'रतन-रासो' नामक विशालकाय पिंगल काव्य का रचयिता कुम्भ-कर्ण भी रामसिंह के दरबार में एक वर्ष रहा था ऐसा 'रतन-रासो' में लिखा है। 'रामचरित्र' नामक ब्रजभाषा काव्य का रचयिता रघुनाथ 'रसाल' तो रामसिंह का आश्रित था ही और उस ने उसी के आश्रय में रह कर 'रामचरित्र' की रचना की थी। इन सब तथ्यों से यह स्पष्ट है कि खिड़िया जगा रामसिंह तथा उस के पिता रतनसिंह का ही आश्रित था न कि जसवन्त-सिंह का। यदि वह जसवन्तसिंह का आश्रित होता तो जोधपुर के राज-परिवार के विषय में भी कुछ काव्य-रचना करता। परन्तु उस की रचनाएँ केवल रतनसिंह के विषय में प्राप्य हैं। इस लिए यही निष्कर्ष निकालना अधिक उचित प्रतीत होता है कि वह रतनसिंह का ही आश्रित था जसवन्तसिंह का नहीं।

लोक-प्रवाद के अनुसार रामसिंह ने जगा को दो गाँव आलनिया और डेरी पुरस्कार-स्वरूप दिये थे।

जगा के जन्म-समय और मृत्यु-समय के विपय में कोई निश्चित सूचना प्राप्य नहीं है परन्तु संभवतः उस की मृत्यु रतलाम में ही हुई और यह माना जाता है कि रतलाम के राज-परिवार की श्मशान-भूमि शिववाग में उस की भी समाधि है।

(४) 'वचनिका०' की साहित्यिक विवेचना

वचनिका-कार की कर्म-भूमि

'वचनिका' एक ऐतिहासिक काव्य है। भारतीय वाङ्मय में ऐतिहासिक काव्यों की संख्या बहुत अधिक है पर काव्य में कल्पना-चमत्कार का प्राधान्य होने के कारण ऐसा बहुत कम साहित्य उपलब्ध होता है जिस से वास्तविक ऐतिहासिक तथ्यों का यथावत् विवरण प्राप्त हो सके। हिन्दी के प्रमुख ऐतिहासिक काव्य 'पृथ्वीराज-रासो' के अनैतिहासिक तथ्यों से हिन्दी साहित्य का प्रत्येक पाठक परिचित है। रासो के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डालने और उस की अनेक घटनाओं को इतिहास-सम्मत सिद्ध करने का प्रयास अनेक विद्वानों ने समय-समय पर किया है। पर आज तक उस की गुत्थी सुलझ न पायी और उस की ऐतिहासिकता आज भी सर्वथा विवादास्पद है। यही दशा अन्य अनेक काव्य-ग्रंथों की है जो वर्ण्य घटना के सम-सामयिक तथ्यों पर किंचित् प्रकाश तो डालते हैं पर अधिकांशतः कल्पित अत्युक्ति-पूर्ण वर्णनों से ही ओत-प्रोत हैं। सौभाग्य से शाहजहाँ के सेनापति जसवंतसिंह और औरंगजेब तथा मुराद के मध्य धरमत के स्थान पर हुए युद्ध के प्रसंग को ले कर कुछ ऐसे काव्य-ग्रन्थ भी विद्यमान हैं जो काव्य की दृष्टि से जितने प्रशंसा के पात्र हैं उतने ही इतिहास की दृष्टि से भी महत्त्व-पूर्ण हैं। ऐसा ही एक काव्य-ग्रन्थ है वचनिका जो डिंगल के कवि-वर्ग के गले का हार भी रहा है और इतिहास की दृष्टि से भी अनुपम सामग्री से परिपूर्ण है। उस के ऐतिहासिक महत्त्व का प्रतिपादन तो यथास्थान होगा ही पर उस का यथाशक्य साहित्यिक मूल्यांकन भी अपेक्षित है। चारण कवियों और काव्य-रसिकों में वचनिका का अत्यधिक मान और सत्कार रहा है। कदाचित् ही कोई प्रसिद्धि-प्राप्त चारण कवि या काव्य-भावक रहा होगा जिस के पास वचनिका की कोई हस्त-लिखित प्रति न हो। परम्परागत आजीविका के रूप में कविता को प्राप्त करने वाले शास्त्र-कोटि के चारण कवियों के लिए वचनिका एक आदर्श पाठ्य ग्रंथ रहा है। चारणों में इस प्रकार सम्मान-प्राप्त काव्य को आधुनिक समालोचक की दृष्टि से देखने से पूर्व उस परिस्थिति, कर्म-भूमि और आदर्श का थोड़ा-सा परिचय देना आवश्यक है जिस का ध्यान रख कर वचनिका-कार को अपने भावक पाठकों के समक्ष उपस्थित होना था।

जैसा कि पहले बता चुके हैं भारत में सौती-साहित्य की एक दीर्घ-कालीन परम्परा रही है। युद्ध के समय रथ-संचालन और विरुद-गायन करने वाले तथा शान्ति के समय पुराण-वंशावलियों का कीर्तन कर राजन्य-वर्ग का मनोविनोद करने वाले सूतादि का भारतीय वर्ण-व्यवस्था और व्यवसाय-नियोजन में महत्त्व-पूर्ण स्थान रहा है। महाभारत-जैसे विश्व-कोशीय ग्रंथ के निर्माण का श्रेय उसी परम्परा के एक सूत को है जिस ने परीक्षित-पुत्र जनमेजय को उस के पूर्वजों का इतिहास बताते हुए ऐसे अद्भुत महाकाव्य का प्रणयन किया

जिस को उपजीव्य बना कर पता नहीं कितने भारती-पुत्र महाकवि पद के अधिकारी बने। उस अद्‌भुत कवि सूत की वाणी में वह चमत्कार था कि उस के जय-काव्य को केवल अपने पूर्वजों के आख्यानों के जिज्ञासु राजन्य-वर्ग से ही नहीं अपितु नैमिषारण्य-वासी लक्षावधि शौनकादि ऋषि-वृन्द से भी अपूर्व सम्मान प्राप्त हुआ था। निस्संदेह उस सूत की गीर्वाण-भारती से अमृत-रस की वर्षा होती थी।

सूत-मागध-बन्दीजन की यह परम्परा इतिहास के दीर्घ काल में अविच्छिन्न रही। कवियों को आश्रय देना भी भारतीय भूपाल का अवश्यंविधेय कर्तव्य रहा। विक्रम और भोज आदि की राज-सभाओं में सहस्रों स्वर्ण-मुद्राओं का पारितोषिक पाने वाले और अमर काकली का गायन कर अमृत-पुत्र बनने वाले कवि-कुल-चूड़ामणियों की कीर्ति साहित्य-रसज्ञों में सर्व-विदित है। यों विद्योपजीवी ब्राह्मण-वर्ग और विरुदोपजीवी सूत-वर्ग को राज-सभाओं में एक साथ सम्मान प्राप्त होता रहा और स्वर्ण-मुद्राओं के प्रसाद से परितृप्त कवि-वर्ग ने काव्य-भारती के कुबेर-भंडार में अनन्त रत्न-राशि का संचय किया। मुसलमानों के भारत में आने के समय तक कवियों का यह वर्ग वस्तुतः दो भागों में विभक्त हो गया था। एक वर्ग था ब्राह्मण कवियों का जिन की काव्य-भाषा देव-वाणी संस्कृत थी। दूसरा वर्ग था चारण-भाट आदि विरुद-गायक कवियों का जिन की रचनाएँ संस्कृतेतर लोक-भाषाओं में हुईं। राजस्थान सामन्ती परम्परा का दुर्ग था अतः उस प्रदेश के राजन्य-वर्ग से विरुद-गायक कवि-वर्ग को आश्रय और संरक्षण प्राप्त होना सर्वथा स्वाभाविक था।

पर कविता के राज-सभाओं में गेय वस्तु बन जाने और कुछ जातियों का परम्परागत व्यवसाय बन जाने से अवांछनीय परिणाम निकलना भी निसर्ग-सिद्ध था। कविता-रचना के लिए आदर्श शास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन हुआ और उन ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त कर के किसी भी प्रातिभ अथवा अप्रातिभ कवि के लिए कवि बन जाना सहज संभव हो गया। फलतः कविता का विषय-क्षेत्र सीमित हो गया। शास्त्रकार ने उस की भूमि निश्चित कर दी। परम्पराएँ नियत कर दीं। परिधि का अंकन कर दिया। किस प्रसंग में किन-किन वस्तुओं का वर्णन किया जाये; किस रस की निष्पत्ति के लिए किन आलम्बनों का ग्रहण किया जाये; किन अंगों की उपमाओं के लिए किन पशु-पक्षियों को उपमान बनाया जाये—ये सब बातें आचार्यों ने स्थिर कर दीं। और कविता को जीविका का साधन मानने वाला कवि-वर्ग उन के ग्रन्थों का अध्ययन कर सर्वज्ञ बनने का दंभ करने लगा। यद्यपि शास्त्र-कवि, काव्य-कवि और काव्य-शास्त्र-कवि में 'उत्तरोत्तरोगरीयान्' की घोषणा करने वाले आचार्य मार्ग-प्रदर्शन करते रहे पर वस्तुतः शास्त्र-कवियों की संख्या ही अधिक रही। भावुकता से ओत-प्रोत एवं सहृदय-संवेद्य काव्य-धारा को प्रवाहित करने वाले प्रतिभा-सम्पन्न कवि तो शताब्दियों में एक-दो ही उत्पन्न होते हैं। परिणामतः हाथियों, घोड़ों, योद्धाओं, शस्त्रास्त्रों आदि के एक-से ही परम्परागत वर्णन सहस्रों वीर रस के ग्रन्थों में मिलते है। एक-सी ही उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ, एक-से ही नख-शिख वर्णन और एक-से ही ऋतु-वर्णन शृङ्गारी काव्यों में भरे पड़े हैं। उन सब का ही वर्णन कर कवि-कर्म की इति-श्री समझी जाती रही है। एक ही काव्य में सभी रसों और सभी विषयों का एकत्र समावेश कर महाकवि बनने और विदग्ध पांडित्य का प्रदर्शन करने की लालसा सभी कवियों को रही है। अद्‌भुत लय में अपने काव्य का

राज-सभा में पाठ कर सभासदों का साधुवाद तथा पारितोषिक प्राप्त करने की कामना यदि विरुद-गायक कवि में थी तो उस में आश्चर्य की बात न थी। आश्रय-दाता राजा को अपने पांडित्य से अभिभूत कर, अपनी काव्य-मदिरा से उन्मत्त कर पारितोषिक देने के लिए उत्तेजित करने का प्रयत्न कवि-वृन्द में था तो अस्वाभाविक न था। पर फल यह हुआ कि कविता का क्षेत्र सीमित हो गया। वर्णन के विषय नियत हो गये। शैली और शब्दावलि स्थिर हो गयी। नवीन उद्भावनाओं को प्रोत्साहन कम मिला। क्षणे-क्षणे नवता को उपेत होने वाली रमणीयता का ह्रास हो गया। 'यशसे, अर्थकृते, व्यवहारविदे, शिवेतरक्षतये' आदि प्रयोजनों वाली कविता 'अर्थकृते' तक सीमित होने लगी। वक्रोक्ति के स्थान पर सहस्रों कवियों की उच्छिष्ट परम्परागत उक्ति ही काव्य-जीवित बन गयी। 'रमणीयार्थ प्रतिपादक' शब्दावलि के स्थान पर शास्त्राभ्यास-प्रतिपादक रूढिगत शब्दावलि का प्रयोग हुआ। 'इष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावलि' के स्थान पर इष्टार्थ-प्रदा पदावलि काव्य कहलायी। 'रसात्मक काव्य' के स्थान पर शास्त्राभ्यासात्मक काव्य कवि-लेखनी से प्रसूत हुए। शक्ति (प्रतिभा), निपुणता और काव्य-शिक्षा का अभ्यास—तीनों सम्मिलित रूप से काव्य के हेतु न रह कर अकेला काव्य-शास्त्र का अध्ययन ही काव्य-हेतु बन बैठा। काव्य की आत्मा ध्वनि न रह कर परम्परागत, पिष्ट-पेषित, परन्तु चमत्कार-विधायिनी शब्दावलि-मात्र रह गयी। सहस्रों वर्षों के सांस्कृतिक विकास, शताधिक विदेशी जातियों के सम्पर्क और ज्ञान-विज्ञान की अनन्त वृद्धि के फल-स्वरूप वाल्मीकि-कालीन वेश-भूषा प्रयोग से सर्वथा उपेक्षित हो चुकी थी। सौन्दर्य के प्रसाधन, अलंकार और आभूषण परिवर्तित हो चुके थे। नारी की रमणीयता के माप-मान कदाचित् बदल चुके थे। पर भारतीय कवि की दृष्टि में वह तब भी कमल-लोचनी, मृग-नयनी और मीनाक्षी ही थी। पारसी कवि के साथ भारत में बुलबुल का प्रवेश हुआ अवश्य; पर वह भी नायिका के कोकिल-कंठ, खंजन-नेत्र और शुक-नास का अपहरण न कर सकी। भारतीय नायिका कम्बू-ग्रीवा, कदली-जंघा, कलश-पयोधरा, विकट नितम्बिनी, गज-गामिनी, नाग-केशिनी, सिंह-लंकिनी ही यथावत् बनी रही। भारतीय कवि, विशेषकर राजसभाश्रित कवि, के लिए 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वं' के स्थान पर 'वाल्मीकिव्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वं' कहा जाये तो अनुचित न होगा। "नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते" का विरुद धारण करने वाले कवि भी भारत-भूमि में अवतरित हुए पर सौती साहित्य के प्रसंग में इस विरुद में 'नवशब्दो न विद्यते' के स्थान पर 'नवसर्गो न विद्यते' कहा जाये तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। वस्तुतः विशाल सौती-साहित्य में बहुत कम नवीन सर्ग, बहुत कम नूतन कल्पनाएं, बहुत कम अभिनव उद्भावनाएँ दृष्टिगोचर होंगी। सहस्रों कवि प्रसाद मान कर परोच्छिष्ट का भक्षण, चर्वित का चर्वण, पिष्ट का पेषण करते रहे। वाल्मीकि के मुक्त कानन में स्वच्छन्द विहार करने वाली कविता-कामिनी राज-सभा में दासी बनी तो उस को सभोचित आचरण और व्यवहार की शिक्षा लेनी पड़ी। अनुशिष्ट होना पड़ा। आपाद-मस्तक सभ्योचित वेशभूषा और अलंकार धारण करने पड़े। सामन्ती परम्पराओं, नियमों और रूढियों का यथावत् पालन करना पड़ा। निकृष्ट राजान्न पर आश्रिता होने पर उसे उच्छिष्ट-भोजिनी एवं मान-मर्दिता होना पड़ा। वह वस्तुतः कारागार के बन्धनों में आबद्ध थी यद्यपि भ्रम-वश राज-मान्या होने के हर्ष से आप्लावित थी। यह थी कमनीय कविता-कामिनी की

दयनीय दशा। यह थी सांमती परम्परा के कवि-वर्ग की कर्म-भूमि। ये थे उस के आदर्श। ऐसी ही कर्म-भूमि में कविता कर के कवि जगा को कवि-शिरोमणि कहलाना था। आश्रय-दाता राजा रामसिंह को काव्य-मदिरा से मत्त कर हर्षोन्माद में पुरस्कार पाना था। अपने काव्य को चिर काल तक चारण-कवियों के लिए आदर्श ग्रन्थ सिद्ध करना था। इन परि-स्थितियों का ध्यान रख कर वचनिका का विवेचन करेंगे तभी हम जगा की प्रतिभा की सच्ची परीक्षा कर सकेंगे। उस के काव्य के साथ न्याय कर सकेंगे। उस के उत्कर्ष की वास्तविकता समझ सकेंगे।

वचनिका की कथा का सारांश

वचनिका का प्रारम्भ गुणग्राहक, गुणदाता, सिद्धि-रिद्धि-बुद्धि के दाता गणपति (गुणपति) की स्तुति से हुआ है। विष्णु, शिव, शक्ति और सरस्वती का स्मरण भी कवि ने किया है जिन की कृपा से महेशदास, दलपत, उदयसिंह आदि महापुरुषों के वंश में उत्पन्न प्रतापी रतनसिंह का वर्णन करने की क्षमता कवि में उत्पन्न हो सके। रावण और सूर्य के-समान प्रचंड तथा कर्ण और अर्जुन के समान युद्ध-निपुण रतनसिंह के कृत्यों के वर्णन से पूर्व अधिकार-रूप में उस के पिता महेशदास की बलख-विजय, जालौर-प्राप्ति आदि का भी संक्षिप्त वर्णन कवि ने उचित समझा है। इस वंश-परिचयात्मक भूमिका के पश्चात् उस ने वास्तविक कथा प्रारम्भ की है।

दिल्ली का बादशाह शाहजहाँ रुग्ण हो कर मृत-तुल्य हो गया था। वह दिन-रात महलों में ही रहता था। राज-सभा में नहीं आता था। देश में तज्जन्य चिन्ता व्याप्त हो गयी थी। उधर शाहज़ादों ने अपनी-अपनी अधिकार-भूमि में स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी और दिल्ली पर अधिकार करने चल पड़े थे। पूर्व से शाहशुजा ने और दक्षिण तथा गुजरात से औरंगज़ेब तथा मुराद ने प्रस्थान कर दिया था। यह देख शाहजहाँ और दाराशिकोह कुपित हुए। उन ने शुजा के विरुद्ध जयसिंह और सुलेमानशिकोह को भेजा तथा शेष दोनों शाह-ज़ादों के विरुद्ध केवल जसवंतसिंह को। बादशाह से सेनाधिपत्य प्राप्त कर कछवाहों, राठोड़ों, हाड़ों, गौड़ों, यादवों और सीसोदियों की हिन्दू-सेना और अनेक शाही उमरावों की यवन-सेना ले कर जसवंतसिंह आगरा से विदा हुआ। उस के साथ बन्दूकों, तोपों, गोलों, हथगोलों की अनन्त राशि थी। हाथियों, घोड़ों और ऊँटों की विशाल पंक्तियों के अभियान से आकाश फटा जा रहा था। समुद्र विचलित था। पर्वत टूट कर समतल हो रहे थे। व्योम रेणु से आच्छन्न था। यों सुसज्जित जसवंतसिंह दोनों शाहज़ादों से लोहा लेने उज्जैन दुर्ग पहुँचा।

व्यूह-रचना के लिए परामर्श करने को उस ने रतनसिंह को निमन्त्रित किया। शत्रुंजय अजेय रतनसिंह उस से परामर्श करने पहुँचा मानो कर्ण दुर्योधन के पास गया हो अथवा लक्ष्मण राम के पास।

उधर यम-तुल्य दोनों शाहज़ादे भी आ डटे। उन के कटकों ने कूच किया। गड़गड़ाहट कर नगाड़े बजे। पौरुष-मद से मत्त भट हड़बड़ाहट के साथ अश्वारूढ़ हुए। यम की सी दंष्ट्राओं वाले यवन विशाल गजाश्व-वाहिनी सहित उज्जैन की ओर उन्मुख हुए। काहल, नफ़ीरी, तुरही, भेरी, नफेरी आदि के नाद से चतुर्दिक् को व्याप्त करते हुए, रत्न-जटित हेम-

छत्र धारण किये हुए शाहज़ादे मेघोपम गजों पर आरूढ हुए। गजराज गरजने लगे। अम्बाल बजने लगे। सेनाएँ ध्वजाएँ और नेजे फहराने लगीं। पृथ्वी में धाक पड़ गयी। पुर, तरु, पर्वत टूटने लगे। नागेन्द्र काँपने लगा। सातों समुद्र मानो पृथ्वी पर उलट पड़े। शाहज़ादों की सेना भी उज्जैन आ पहुँची। दोनों पक्षों की सेनाएँ निकट दिखाई पड़ीं। नरों-सुरों का मृत्यु-काल भी निकट आ गया।

औरंगज़ेब और मुराद ने मिल कर जसवंतसिंह को एक पत्र लिखा—"राजन् ! मार्ग छोड़ दो। हमें दिल्ली जाने दो। पिता के चरण-स्पर्श करने दो।" जसवंत ने सोचा—"रोकने तो मुझ को भेजा ही है। जाने कैसे दूँ।" उस ने अपने सामन्तों को परामर्श के लिए एकत्र किया। सामंत बोले—"आप जितना बुद्धिमान कौन है? पर फिर भी आप रतनसिंह की सम्मति ले लें। वह व्यूह-युद्ध आदि का विदग्ध पंडित है।"

जसवंतसिंह ने रतन को बुलाया। दोनों ने सोच-समझ कर व्यूह-नियोजन किया। दलावत दल्लू, गिरवर, पीथल, जगा, ऊदा, गोविन्द, वीठल, कर्ण, गिरधारी, माधो, रूपा आदि को यथोचित स्थान पर व्यूह के हरोल-चन्दोल-गोल आदि में रखा गया। अनन्तर रतनसिंह ने जसवंतसिंह से निवेदन किया—"आप मुझ को सेनापतित्व सौंपें और स्वयं जोधपुर जा कर वंश की रक्षा करें। मेरे यहाँ रहने पर हमारी लाज बनी रहेगी। हम निन्दा के पात्र न होंगे। और आप का जाना नीति-संगत भी होगा। मानी दुर्योधन भी युद्ध-भूमि से चला गया था। कृष्ण काल यवन के सामने पलायन कर गये थे। अतः आप का जाना भी कोई निंद्य कार्य न होगा। आप औरंगज़ेब को सूचना दे दें कि रामायण-महाभारत जैसा युद्ध करेंगे और मुझ को सेनापति नियुक्त कर स्वयं मधुकर के साथ चले जायें। मैं शत्रु-सेना का संहार करूँगा।"

जसवंतसिंह ने युद्ध करने का निश्चय दृढ रखा और रतन को मर-मिटने की आज्ञा दे दी। रतन ने खड्ग ले कर सैनिकों को सम्बोधन किया—"जिन को जीवन प्रिय हो वे घर चले जायें। जिन को स्वर्ग चलना हो वे मेरे साथ आयें।" युद्ध की प्रतिज्ञा कर वह डेरे लौटा। उस ने स्नानादि पुण्य-कार्य किये और विप्रों को दान दिया। देव-दर्शन किया। होम किया। भोजन बनवाया। कवियों तथा वीरों को तृप्त किया। युधिष्ठिर के यश के उपमेय उस कृत्य से कवि लोग तुष्ट हो आशीर्वाद तथा जय-जयकार का उच्चारण करने लगे—"रतन चिरंजीवी हो। उसका राज्य इन्द्र और समुद्र के समान स्थायी रहे।"

फौजों का भंजन करने वाले, छह खण्ड खुरासान के यवनों का विध्वंस करने वाले, अनेक वीर-कृत्यों का विरुद धारण करने वाले रतन ने सभा बुलायी। भगवान अमर जैसे वीरों को, बारहठ जसराज-जैसे कवियों को बुलाया। उन के बैठने से राज-सभा देदीप्यमान हुई। गुणियों ने प्रशस्ति-गायन किया। रतन ने मूँछों पर हाथ रख कर कहा—"रामायण-महाभारत की कथा आज तक प्रसिद्ध है। आज उस क्रम में तीसरा महायुद्ध होगा। तोपों की गर्जना होगी। गजराज भिड़ेंगे। हिन्दू-यवन लड़ेंगे। हम उज्जैन के पुण्य क्षेत्र में स्वामि-धर्म का पालन करेंगे। खड्ग-धारा-व्रत का निर्वाह करेंगे। शस्त्रास्त्रों से घोर युद्ध करेंगे।" बारहठ जसराज ने समर्थन किया। इच्छा पूर्ण होने का आशीर्वाद दिया। परम वीर अमर और भगवान भी बोले—"भयंकर युद्ध कर महारुद्र को शीश भेंट करेंगे। अप्सराओं को

वरेंगे।" गिरधर ने कहा—"लड़ कर यावच्चन्द्र यशस्वी होंगे।" साहिबखाँ ने कहा—"कर्तव्य-पालन और वंश का नाम उज्ज्वल करने का उत्तम अवसर आया है। अतः हम आत्म-त्याग करेंगे।" बारहठ ने कहा—"ठीक है। पर पहले वीरों के दोहों का उत्तेजक गायन करवाइये जिस से हमें उत्तेजना मिले। हमारे भी दोहे भावी वीर गायेंगे।" प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। अनेक वीरों के दोहे सुनाये गये। भटों में उत्साह उमड़ा और वे अभियान को प्रस्तुत हुए। जसवन्तसिंह और औरंगजेब ने परस्पर चुनौती भेज दी।

दोनों पक्षों से हाथियों का विशाल समूह युद्ध के लिए छूटा। इन गजों के श्याम वर्ण विशाल शरीर सिंदूर से रंजित होने के कारण स्वर्ण पर्वत के तुल्य लग रहे थे। उन पर उड़ती हुई ध्वजाएँ और ढालें ऐसी फब रही थीं मानो पतंगें उड़ रही हों। उन के कपोल-पटों से मद-धारा अजस्र-वाहिनी हो रही थी। मद-मत्त हुए गजराज वृक्षों को उखाड़ कर, गढ़ों को तोड़ कर भूमिसात् कर रहे थे। गज-वाहिनी मेघ-माला के समान थी। उस में गज-दन्तावलि वक-पंक्ति जैसी शोभायमान थी। गज-मस्तकों पर प्रहार करती हुई खड्गें मानो सौदामिनी की दमक थी। शरीर पर चर्चित सिंदूर मानो इन्द्र-धनुष था। गज-घंटों की ध्वनि को सुनने के लिए तीनों लोक सकौतुक थे। दोनों सेनाओं के अग्र भाग में स्थित गजावलि ऐसी लग रही थी मानो अरावली पर्वत बीच में आ कर डट गया हो।

विशाल वक्ष-स्थल और सुपुष्ट जंघाओं वाले ऐराकी घोड़े भी युद्ध-भूमि में उपस्थित थे। उन की नासाएँ अद्भुत थीं। कान तीखे थे। केशावलि सुन्दर थी। वे घोड़े हाक सुन कर गज-दन्तों, सेलों, खड्गों आदि के समूह में प्रविष्ट हो कर युद्ध-क्रीड़ा कर रहे थे। हाथियों की छाती पर चढ़ कर उसे चीर-फाड़ कर अन्तड़ियाँ निकाल रहे थे।

ऐसे घोड़ों पर जीन कसे हुए कवच-धारी शूर युद्धार्थ प्रस्तुत थे। वे अग्नि में पतंग के समान युद्ध में उमड़े जा रहे थे। प्रचंड आकाश को गिरने से रोके हुए थे। दुष्टों को मार कर खंड-विखंड कर रहे थे। वे वीर, खड्ग-प्रिय, त्यागी, शूरवीर, गो-विप्रों के पालक, आत्म-संयमी, क्षात्र-धर्म का पालन करने वाले और वेद-मार्गी थे। ऐसे वीर गज-दन्तों को तोड़ रहे थे। शत्रु-समूह का मर्दन कर रहे थे। घोड़ों की वाग पकड़ कर चला रहे थे। राजाओं को पछाड़ रहे थे। और हाथियों को भीम के समान घुमा कर फेंक रहे थे।

दूसरी ओर बलिष्ठ चग़त्ता-वंशी यवन थे। उन के बाल भूरे थे। मुख लम्बे थे। भुजाएँ यम की सी थीं। आँखें भयानक थीं। वे गजों को मरोड़ देते थे। उन के कन्धे तोड़ देते थे। सिंहों को मुक्कों से मार डालते थे। वे वीर हाक कर रहे थे। पृथ्वी भर के भोग उन के पास थे। जरी, बाफ, नीलंक आदि के वस्त्र पहने थे। उन में जोश का उफान था। स्वामी के लिए शरीर होम देने की अनुपम निष्ठा थी। उन के परिधान दस्ताने, टोप, मोजे, अस्थि-कवच आदि थे। उन के हाथों में गुप्ती, कर्तरी, साँग, गुरज, गदा आदि शस्त्रास्त्र थे।

दोनों ओर के वीर भिड़ गये। अल्लाह-अल्लाह पुकारने लगे। कमधज कौरवों के समान थे तो शाहज़ादे पांडवों के समान। इधर 'हरिनाम' का उच्चारण हो रहा था तो उधर ठीक उस के विपरीत 'रहिमान' का।

हिन्दू तथा तुर्क युद्धार्थ दाँत पीसने लगे। भटों, घोड़ों, हाथियों और रथों वाली चतुरंगिणियाँ ध्वजाएँ कसमसाने लगीं। नगाड़ों से सैंधव राग वजा। धरा कम्पित हुई। कूर्म

व्याकुल हुए। नागराज थर्राए। समुद्रों ने मर्यादाएँ छोड़ दीं। पर्वत टूटने लगे।

युद्ध भूमि के इस वर्णन के प्रसंग में कवि ने एकत्र षट् ऋतु और नव रस का समावेश कर महाकवि कहलाने का प्रयास किया है। इस प्रकार नव रस, छह ऋतु समेत युद्ध-भूमि में दर्शक के रूप में विष्णु, इन्द्र, शिव, नाथ, सिंह, गण, गन्धर्व, योगिनी, यक्ष, किंनर, डाकिनी, शाकिनी, पशु, पक्षी आदि उपस्थित हुए। नौबत, निशान, रणतूर बजे। देवासुर देखने लगे।

गोले, शर और बाण चलने लगे। नर, सुर, दानव और नाग भयाक्रान्त हुए। प्रलयाग्नि जल उठी। अग्नि-बाण चले। नक्षत्र-माला से भी बड़े गोले उछले। वेगवान चमराले यवन चूर-चूर हो कर, क्षत-विक्षत हो कर धरा शायी हो गये। उधर राठोड़ भी कबूतर की तरह लेटने लगे। अरघट्ट घटी के समान रीती अप्सराएँ युद्ध-भूमि में उतरीं और वीरों का वरण कर वापस चली गयीं। व्योम अन्धकार से आच्छन्न हो गया।

इस प्रकार तीन प्रहर तक युद्ध हुआ। दैव के अवतार औरंगजेब की विजय निश्चित प्रतीत हुई। चौथा प्रहर प्रारम्भ हुआ। राठोड़ सेनापतियों ने मन्त्रणा की "युद्ध शतरंज का खेल है। राजा की रक्षा करो। नहीं तो बाजी हारेंगे। जसवन्तसिंह को यहाँ से भेज दो।" जसवन्तसिंह चले गये। रतनसिंह ने सेनापतित्व सँभाला। भारत की लज्जा उस के भुजदण्डों पर अवलम्बित हुई। उस ने सूर्य को प्रणाम कर वैकुण्ठ की जिगमिषा सहित रण-भूमि में प्रवेश किया। मस्तक पर मुकुट बाँध कर, भुजाओं पर हिन्दू धर्म को धारण कर वह दूल्हा म्लेच्छ सेना पर झपटा। रणमाल, जोधा, सीसोदिया, हाडा, चौहान और झाला वीर उस के बराती बने। उस का पुत्र रायसिंह भी सिंह-गर्जना करने लगा। मारवाड़ के वीर ऐसे भिड़ पड़े मानो सिंह भिड़ पड़े हों। योगिनियाँ मंगल-गीतों का गायन करने लगीं। शीश-रूपी अक्षत ख-मण्डल में उड़े। नारद और ब्रह्मा ने वेद-पाठ किया। अप्सराओं ने वीरों का वरण किया। वे घुँघरू बजा कर नाचने लगीं। युद्ध के वाद्यों में ताल मिलाने लगीं। तलवारें ऐसे बजीं, मानो नर्तक डंडारास खेल रहे हों। भयंकर युद्ध करते हुए, शत्रुओं का विनाश करते हुए, गज-घटा को विदीर्ण करते हुए, मुग़लों को खण्ड-विखण्ड करते हुए, अप्सराओं का वरण करते हुए सूजावत मधुकर, गोवर्धन, वल्लू और उसके दो पुत्र, बीठल, वामन, गोपाल-पुत्र भीम, केशावत गोपाल, जगा हदमालोत, सोनगिरा माधोदास, जैतावत पीथल, जगराज, द्वारकानाथ, किशन केलपुरा, भाटी कुम्भकरण, साँवल रूपावत, पंचायण भाऊ, रामा, सुन्दर, अज्जा, दलपति, खान, दूदावत रतना, धर्मा, मथुरा कावा, जीवा तँवर, जीवा नाई, भगवाना थोरी, भूरिया थोरी आदि के खेत रहने पर भी अकेला रतनसिंह वृक्ष-विहीन पर्वत के तुल्य खड़ा रहा। दोनों शाहज़ादे सेना एकत्र कर उस पर टूट पड़े। रतन भी रण-वाद्यों की ध्वनि सुन हर्षोन्मत्त हो रहा था। वह हाक मार कर रण-स्थल में अवतरित हुआ। वह औरंगजेब से जा भिड़ा। वीरों के कलेजे और कन्धे खण्ड-विखण्ड हुए। धड़ कट कर छिन्न-भिन्न हुए। ढालों की खड़ाखड़ ध्वनि हुई। तलवारें झड़ाझड़ बजीं। यवन तावड़तोड़ भागे। उछलते हुए मुंड दशों दिशाओं में बिखरे। रुद्र ने दौड़-दौड़ कर उनको चुना। खान लोग रण-क्षेत्र में ऐसे गिरे मानो नट गिरह खा रहे हों। भूखे मांस-भक्षी जीव, शकिनी, डाकिनी, प्रेत, पिशाच आदि अपने भक्ष्य ढूंढने लगे। ऐसी परिस्थिति में रतन युद्ध-भूमि में धराशायी हुआ। उस के शरीर पर खड्ग के अस्सी घाव थे। तीन सौ बाण और छब्बीस सेल उस के

शरीर में विद्ध हुए थे। रतन के गिरते ही युद्ध समाप्त हुआ। विजय-दुन्दुभी बजी। सूर्य का रथ यह दृश्य देखने को रुक गया।

रतन के साथियों ने उस के छिन्न अंगों को एकत्र चुना। बाणों और भालों के खण्डों से चिता बनायी और रतन के नर देह को जलाया। उस को अमर देह प्राप्त हुआ। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र और देवों के समूह उस के सम्मुख उपस्थित हुए। इन्द्राणी ने मंगल-गायन किया। देवों ने रतनसिंह से निवेदन किया—"विमान पर पैर रखिए। वैकुण्ठ चलिए।" रतन ने उत्तर में प्रार्थना की—"मैं इस युद्ध का प्रमुख सेनापति होने के नाते कहना चाहता हूँ कि इस युद्ध में जितने वीर काम आये हैं उन को पुनर्जीवित कीजिए। फिर बारह दिन यहाँ पड़ाव कीजिए जितने में सतियाँ भी अग्नि-स्नान कर आ जायें।" विष्णु भगवान् ने स्वीकार किया। बोले—"ठीक है। बरातियों के बिना दूल्हा कैसे चले।" फिर विश्वकर्मा को आज्ञा दी कि वैकुण्ठ जैसा ही एक नगर पृथ्वी पर बसाओ और उस का नाम रतनपुर रखो। आज्ञा का पालन हुआ। सर्वगुणोपेत, साधन-सम्पन्न, कला-मंडित नगर बसा। विष्णु भगवान् ने सभा की। रतन को अपने पास बैठाया। स्वयं मोर-मुकुट, विशाल कुण्डल, कमल-लोचन, मदन-मोहन रूप धारण कर विराजमान हुए। शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन प्रसरित हुआ। रम्भादि अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। छह रागों, छत्तीस रागिनियों, सप्त स्वरों में संगीत-ध्वनि उत्पन्न हुई।

उधर रतन की मृत्यु का दुःखद समाचार उस की रानियों के पास पहुँचा। उस की चार रानियाँ—अतिरूपदे, रयनसुखदे, गुणरूपदे और सुखरूपदे सती होने को प्रस्तुत हुईं। उन ने गंगाजल से स्नान किया। सुगंधित हीर-चीर-चामीर पहन कर, पान-कपूर खा कर, शृङ्गार-सज्जित हो कर दान-पुण्य किया। फिर सरोवर-तट पर चिता बना कर जलने को चलीं। वे षोडश शृङ्गार से सज्जित हो कर जा रही थीं। उन के चरण और कर कमल-तुल्य थे। कटि सिंह की सी। जंघाएँ कदली-स्तम्भ जैसी। कण्ठ कोकिल के से। दाँत अनारकुली जैसे। ऐसी नख-शिख-शोभिता सुन्दरियाँ अपने चारों कुलों का उद्धार करती हुई शरीर त्यागने चलीं। जनता टकटकी लगा कर देखने लगी। वे घोड़ों पर सवार हो कर सरोवर पर पहुँचीं। पवित्र स्थान पर उतर कर उन ने पार्वती का पूजन किया। वर माँगा—"जन्म-जन्मांतर में यही पति दीजिए और कुछ नहीं चाहतीं।" फिर चन्द्र-सूर्य को नमस्कार कर अपने वंशजों को अन्तिम शिक्षा दे अग्नि में प्रविष्ट हुईं। हाहाकार पुकार हुई। दर्शकों ने 'राम-राम' कहा। घड़ी-भर में सर्वत्र शांति छा गयी। सतियों के लिए विमान पहुँचे। सुरांगनाओं ने उन का स्वागत किया। आकाश-वाणी ने रतन को बधाई दी। उमा, सावित्री और श्री ने भी सुन्दरियों का स्वागत किया। हर्ष-ध्वनि हुई। नया स्नेह बढ़ा। रतनसिंह सतियों से उन के प्रासादों में जा मिला। उस का यश ध्रुव-स्थायी हो गया।

वस्तु-विवेचन

इस कथा-सार से स्पष्ट है कि कवि के सम्मुख एक इतिहास-सम्मत घटना थी जिस का उस को वर्णन करना था और अपने आश्रय-दाता रामसिंह के पिता रतनसिंह की कीर्ति को अमर करना था। पर कवि का कर्तव्य साधारण जय-काव्य के लेखक कवि से भिन्न था। 'जय-

रतनसिंह की छत्री – धरमत के युद्ध-क्षेत्र में
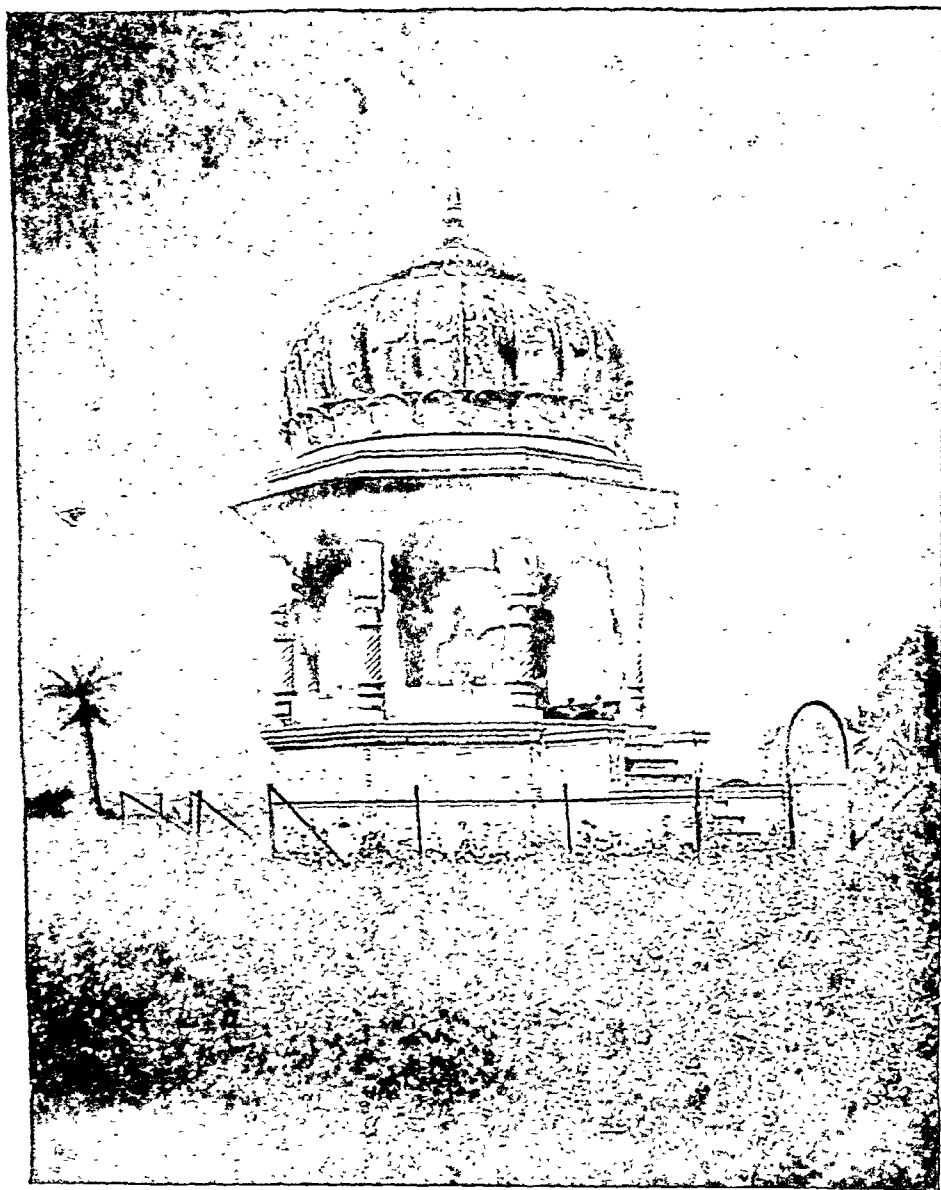
के विरुद्ध अकेला जसवंतसिंह। जसवंतसिंह के कार्य-क्षेत्र की दुर्गमता का यह निर्देश कवि की वर्णन-कुशलता का परिचायक है। पलायन कर जाने वाले जसवंतसिंह के चरित्र को कलंकित होने से बचाने के लिए कवि ने यहीं से प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया है।

जसवंतसिंह अनेक शाखाओं के क्षत्रिय वीरों की तथा यवन उमरावों की सेना ले कर चला। उस सेना के चलने पर चतुर्दिक् जिस वातावरण की सृष्टि हुई उस के वर्णन में उपयुक्त अलंकारों, समुचित शब्दों और यथेष्ट कल्पनाओं का प्रयोग कर वीर रस की भावी निष्पत्ति के लिए अच्छी भूमिका प्रस्तुत की गयी है :

वहन्ती इसी पंथि ओप्पं वहीरं। नदी हेम थी ले चली जाँणि नीरं।
कतारां कठट्ठे चले जुंग काळा। वहै वादला जाणि भाद्रव्व वाळा।
फटौ आभ कै जाणि सामंद्र फट्टं। प्रिथम्मी गिरं थुंब किज्जै पहट्टं।
वहै उप्पटं थट्ट राठौड़ वाळा। नदी सोखिजै नीर निव्वाण नाळा।
वहंतां तुरां पाय पायाळ वाया। छिलै रज्ज रैणां उडै व्योम छाया।
धरा सेस धूजै डिगै धू धड़क्कं। चढै लंक चक्कं डरै च्यार चक्कं।

ऐसे वातावरण को उत्पन्न करता हुआ जसवंतसिंह दोनों शाहज़ादों का सामना करने उज्जैन पहुँचा।

कथा-सूत्र में अब तक रतनसिंह का प्रवेश नहीं था। पर कवि का प्रयोजन तो वस्तुतः उसी के चित्रण का है। काव्य का नायक तो वही है जिस की कीर्त्ति को अमर करना है। अतः रतन को रंग-भूमि में लाने के लिए कवि ने उपयुक्त अवसर की अवतारणा की है :

बंधव रतन बुलावियौ जसै रचण रिण जंग।

और जसवंतसिंह-रतन ऐसे मिले मानो—राम लखंमण राठवड़ किर दुज्जोंण करंन।

रतन के रूप और कृत्यों का वर्णन कर कवि ने उसका परिचय कराया :

काळै अजुवाळौ कियौ आवि दळां अवियट्ट।

'काळै' और 'अजुवाळौ' शब्दों का प्रयोग कर कवि ने विषम अलंकार का प्रयोग किया है। विपरीत कारण से कार्य की उत्पत्ति करवायी है।

उधर शाहज़ादे भी ससैन्य आ ही गये। उन की सेना की विकटता और दुर्धर्षता का वर्णन भी कवि नहीं भूला है। उसे काव्यादर्श का यह सूत्र विदित है :

वंशवीर्यश्रुतादीनि वर्णयित्वा रिपोरपि।
तज्जयान्नायकोत्कर्षवर्णनं च धिनोति नः।

प्रतिनायक के बल-बीर्य का समुचित वर्णन कर उस पर विजय प्रदर्शित कराने पर ही नायक का उत्कर्ष सिद्ध होता है। इस प्रसंग में तो प्रतिनायक के अजेय बल का वर्णन करने की ओर भी आवश्यकता थी क्योंकि नायक की विजय भी नहीं हुई। उस की पराजय को निष्कलंक रखने के लिए प्रतिनायक की अद्वितीय अपराजेय शक्ति का वर्णन परम अनिवार्य था। कवि ने इस दायित्व का ठीक पालन किया। यहाँ भी और आगे भी। वातावरण का चित्रण भी कवि नहीं भूला :

कटकां विहुं हुइ कूच गड़गड़ त्रंबागळ गुड़ै।
हडबड़ भड़ हुइ हैंवरां चढिया पौरस चूंच।

वहरहि हिळै वहीर पायक ओठक पड़तळाँ।
मिळिवा किर चाली महण नवसै नदि ले नीर ॥

....

रचि फौजाँ रौद्राळ हैंवर नर वहता हसति।
माँडण इन्द्र झड़ माँडियौ बादळ किर वरसाल।

....

रुलि काहुळि त्रंबाळ तूरहि भेरि नफेरि त्रहि।

....

धूवाँ रव दव धोम खेहा रव डंबर खरा।
क्रमतै रौद्रायण कियौ व्योम विचाळै व्योम।

एक से बढ़ कर एक कल्पना करते हुए कवि शाहज़ादों की सेना की विकटता का वर्णन करता जाता है और दोनों सेनाओं को आमने-सामने खड़ी करवा देता है। सेनाओं के ये वर्णन न तो इतने लम्बे हैं कि पाठक ऊब जायें और कथा-सूत्र को भूल जायें, न इतने साधारण कि वल की विकटता का आभास न हो।

वीर रस के वातावरण का यह चित्रण कर कवि अपनी राजनीति-पटुता का परिचय देता है। औरंगज़ेब और मुराद बहुत चातुर्य भरा पत्र लिखते हैं। पत्र में सम्पूर्ण भाव को बहुत ही संक्षेप में परन्तु कुशलता से कवि ने व्यक्त किया है :

"राजा राह म रोकि तूँ साहि लगैं दे जाण ॥
राड़ि म करि इक तरफ रहि आगे पीछै आव।
जोइ दिली फिरि जाइस्याँ परसि असप्पति पाव ॥"

यही भाव 'रतन-रासो' कार ने विशाल पत्र के रूप में चित्रित किया है और अपने पत्रकला-कौशल का परिचय दिया है पर वहाँ पाठक पत्र पढ़ते-पढ़ते कथा-सूत्र को भूल जाता है और अर्थ-सम्बन्ध उज्झित हो जाता है। पत्र पा कर जसवंतसिंह नीतिज्ञता का परिचय देता है। वह सामंतों को मन्त्रणार्थ बुलाता है। सामंत 'राज जितरौ कुण जाणै' कह कर भी रतन से परामर्श करने का मत प्रकट करते हैं। यों कवि जसवंत की नीतिज्ञता का परिचय देने के साथ-ही-साथ रतन के नायकत्व का एक बार पुनः प्रतिपादन करता है। जसवंतसिंह के सेनापति होने के ऐतिहासिक तथ्य और रतन के नायक होने की कवि की कामना—इन दो तत्वों का यह सुन्दर सामंजस्य है।

जसवंत और रतन मन्त्रणा करते हैं और व्यूह-योजना बनाते हैं। विविध वीरों की यथेष्ट स्थान पर स्थापना करते हैं। यहाँ तक कथा-सूत्र में जसवंतसिंह की प्रमुखता रहना एक तथ्यात्मक आवश्यकता थी। पर शनैः शनैः रतनसिंह नायकत्व का ग्रहण कर रहा था। उस ने जसवंतसिंह से निवेदन कर दिया—'आप मुझ पर युद्ध का भार छोड़ कर स्वदेश लौट जायें और कुल की रक्षा करें। मैं आप के और अपने कुल के यश की रक्षा करूँगा। आप का जाना कोई कलंक की बात नहीं, नीतिज्ञता है। कर्ण के मरते ही दुर्योधन भाग गया था। कृष्ण काल यवन के आगे पलायन कर गये थे। इस कथन में नीतिज्ञता ही का परिचय नहीं जसवंतसिंह के भावी पलायन के कलंक को छिपाने का यत्न भी है।

युद्ध के लिए कृत-निश्चय रतन ने अपने साथियों का आह्वान किया—

"जीवै तिके भलाँ घरि जावौ। आवै लगि मो साथे आवौ।"

फिर वह अपने डेरे गया और वहाँ स्नान, दान आदि पुण्य कृत्य किये। विप्रों को भोजन कराया। कवियों और वीरों को तुष्ट किया। तुष्ट कवियों ने जयजयकार किया। आशीर्वाद दिया। यह आशीर्वाद वचनिका-बद्ध है, तुकात्मक गद्य है। इस में कवि की अपनी कल्पना नहीं। अचलदास खीची की वचनिका के 'विरुदावली' अंश का उद्धरण मात्र है। पैतृक-सम्पत्ति के रूप में कविता को पूर्वजों, पूर्व-गुरुओं और पूर्व-सूरियों से प्राप्त करने वाले चारण-भाटों में इस प्रकार का वर्ण-विलोडन साहित्य-चौर्य नहीं माना जाता था। वह रूढि-सम्मत था।

आशीश-वचनिका के पश्चात् रतन की राज-सभा का गद्य-बद्ध वर्णन है। अर्थ-गर्भित और अनुप्रास-मंडित शब्दावलि की सुन्दर योजना है। अनेक विरुद-राजित रतनसिंह सामन्तों को पान का बीड़ा देता है, युद्ध के लिए प्रस्तुत होने का प्रतीक समर्पित करता है। रामायण-महाभारत के युद्धों का उल्लेख कर भावी तृतीय महायुद्ध के लिए कटि-बद्ध होने के लिए उत्तेजनापूर्ण शब्दों में आह्वान करता है—"उज्जेणि खेत धारा तीरथ धणी री काम खित्री री धरम साचवीजै। लोहाँ रा बोह सेलाँ रा धमंका लीजै। खाँडाँ री खड़ाखड़ि झड़ाझड़ि डंडाहड़ि खेली जै।"……पुरजा पुजा हुई पड़ी जे। तौ वैकुंठ चढीजै।" बारहट जसराज समर्थन करता है। भगवान तथा अमर और भी अधिक उत्तेजक शब्दावली में अनुमोदन करते हैं……"महारुद्र नै सिर पेस कराँ। अपछरा वराँ। देवता स्याबास कहिसी। वात रहिसी।" गिरधर गांगावत ने भगवानदास बाघौत का कथन उद्धृत करते हुए और भी अधिक उत्तेजनापूर्ण भाषा का प्रयोग किया। कुमार रायसिंह ने भी समर्थन किया। बारहठ ने सम्मति दी कि वीरों की विरुदावलि से पूर्ण दूहे सुने जायें जिस से 'पोरिस चढै। सींग ब्रहमंड अड़ै।' दूहे सुने गये। और

'मारू भड़ चढिया मछरि करिवा भारथ कत्थ।
राग वडाला वज्जियाँ सको सचाला सत्थ।'

सिलहखाने खोले गये। वीरों की सेनाएँ दोनों ओर से सन्नद्ध होकर चल पड़ीं। पर अग्र भाग में दोनों सेनाओं ने गज-वाहिनी को रखा। यहीं परम्परागत रीति का अनुसरण कर कवि ने हाथियों, घोड़ों और वीरों का अलंकारपूर्ण भाषा में वर्णन प्रारम्भ किया। सिन्दूर-चर्चित श्याम वर्ण वाले गजराज सन्नद्ध होकर चले। वे सुमेरु पर्वत के तुल्य शोभित हुए। उन की मद-धारा मेरु से प्रवाहित नदी के समान बह चली। इस वर्णन की भाषा और शब्दावलि अभीष्ट वातावरण की सृष्टि में सफल है। विषय के अनुकूल है। रसोत्कर्ष विधायिनी है—

कुलं भद्द चल्लै गिरं गज्ज काला। मँडै इन्द्र जाणै घटा मेघमाला।
………………………………………………

इसा गज्ज घंटाल घंटा अपारं। त्रिण्हे लोक कौतिक्क देखंत त्यारं।

शब्द-चयन और वातावरण—दोनों ही दृष्टियों से यह वर्णन हृदय-ग्राही है। यही स्थिति घोड़ों के वर्णन की भी है। यथा :

जल अंजल मुक्ख पीयन्त जव्वं। उभै जोड़ि राजीव नाला उअव्वं।
………………………………………………

विराण रेह तेजाल दंका विडंगं। कवाणं गुणं डारि झल्लै कुरंगं।

शूरों के वर्णन में भी वही सफलता देखिए :

पड़ंता दियै अब्भ थंभा प्रचंडं। खलां मारि खगे करै खंड खंडं।

मरंता न धारै महाजुद्ध माया। करै काच सीसी जिसी टूक काया।

प्रतिपक्षी के पराक्रम का वर्णन और भी अधिक विस्तार से कर के कवि ने काव्य-कला-चातुर्य का प्रदर्शन किया है :

भयाणंक चीवा जिकै रोम भूरा। पलै पार वीवा हिलै थट्ट पूरा।

प्रलंबा मुखी लक्ख चक्खी परक्खी। भुजां जम्म जेहा बली लच्छ भक्खी।

मरोड़ै गजां कंध तोड़ै मरद्दं। रहच्चै जिसा सिंघ मुक्की रवद्दं।

कसीसै गुणं ग्रीस टंकी कवाणं। बली भीम वत्थं कली पत्थ वाणं।

....

भुवाणं जुवाणं कवाणं सभल्लं। मिलै मीर जादा इसा जुज्झ मल्लं।

इन वर्णनों में अर्थ-गौरव भी है, पद-लालित्य भी। उत्साह-वर्धन की क्षमता भी है, अनुज्झित अर्थ-सम्बन्ध भी। ये वर्णन कथा-सूत्र में बाधक नहीं, साधक हैं। रस-भंग के कारण नहीं, रसोत्कर्ष के विधायक हैं।

वीरों के इस वर्णन के अनन्तर कवि ने अपनी निष्पक्षता की सूचक उपमा का प्रयोग किया है :

कैरव जिम आया कमँध पांडव जिम पतिसाह।

यों हरि नाम उचारियो वां रहिमान अलाह।

यहां कमधजों को कौरवों की उपमा और शाहजादों को पांडवों की उपमा केवल अनुप्रास की दृष्टि से नहीं जेता और जित के सम्बन्ध की दृष्टि से भी है जिस की पुष्टि अगले दोहे में हुई है। 'हरिनाम' और 'रहिमान' शब्दों की परस्पर विपरीत ध्वनियां दो विरोधी दलों के धर्म की उत्तम व्यंजना करती हैं। सेनाओं के युद्धार्थ प्रस्तुत होने पर ब्रह्मांड की क्या अवस्था हुई उसका वर्णन देखिए—

च्यारि चक्क नव खंड हिलै फौजां गज डंबर।

कसमस्सै कौरंभ सेस नागेन्द्र सलस्सलि।

सात समँद गिरि आठ ताम धर मेर टलट्टलि।

उस विकट वाहिनी का वर्णन करते-करते ही कवि ने अवसर निकाल कर षट्-ऋतु-वर्णन और नव-रस-वर्णन की परम्परा का भी पालन किया है। वस्तुतः न तो इस प्रकार ऋतुओं का वर्णन संभव है न रसों की निष्पत्ति। केवल उपमाओं के आधार पर इन सभी का एकत्र समावेश कोई संभव वस्तु थोड़े ही थी। पर कवि ने सोचा क्यों न शास्त्रीय विधान का परिपालन करूँ। क्यों एतद्विषयक असमर्थता प्रकट करूँ। इसी आग्रह के फल-स्वरूप गद्य-मयी भाषा में कवि ने उस सत्र की उत्पत्ति करना चाहा जो असंभव संभावना थी। वैसे यह गद्य-खंड शब्दावलि, अलंकार-योजना और विषय-विस्तार की दृष्टि से किसी प्रकार हीन नहीं पर जिन वर्णनीयों का वर्णन अपेक्षित था उन के साथ इस प्रकार न्याय नहीं किया जा सकता। वैसे कवि धन्यवाद का पात्र है कि उस ने कथा का सूत्र नहीं तोड़ा। साधारण कवि

होता तो अपने काव्य को सर्वांगपूर्ण बनाने के लिए सभी तरह के वर्णन करता। कथा-सूत्र के साथ सम्बन्धासम्बन्ध का ध्यान भी न रखता। जगा को विदित था कि उस की कथा-वस्तु में इन सब का समावेश कथा का प्रवाह भंग करेगा तथा अनावश्यक भार सिद्ध होगा। उस ने बड़ी चतुराई से उस अवांछनीय क्षति का परिहार किया और शास्त्रकार निर्दिष्ट परम्परा को भी नहीं टूटने दिया। अतः यह प्रसंग कवि की अकुशलता का परिचायक नहीं, प्रवीणता का द्योतक है।

इस के बाद के दोहे में शब्दावलि का अद्भुत चमत्कार है :

सझि आराबाँ समसमा समासमा सझि सूर।
समा समा दल़ सालुल़ै ग्रहै ग्रँबाल़ा तूर॥

तदनन्तर "**वह गोल़ा सर बाण**", "**लागौ बरसबा गोल़ा सर गैणाग**", "**गड़ा सवाया गण-णिया नाखत जाणि निहंग**" आदि उक्तियों द्वारा बरसती हुई गोलियों का वर्णन है; "**चमराळा हुय चूर वेगाल़ा तेजी बडा**", "**खुंदालिम करि खोध वसुधा उप्परि वाजिया**" आदि द्वारा युद्ध-रत योद्धाओं का वर्णन है और "**नर सुर दानव नाग थर हर सुर भुवण थया**", "**आहिव घोर अंधार**" आदि द्वारा वातावरण का चित्रण है। उत्प्रेक्षाएँ भी द्रष्टव्य हैं— "**ऊडन्ते ऊडाड़ियो आराबे असमाण**", '**लागि गड़ा सिर लोटिया जाणि कबूतर जोध**' "**वहती की दल़ वाहताँ वैकुंठ वाल़ी वाट**" आदि। पर इन से भी उत्तम कल्पना है :

नरवर सूर निगेम भारथ मधि रीती भरी।
आवै जावै अपछरा जगि अरहट घड़ि जेम॥

परन्तु इस भयंकर युद्ध का परिणाम जो कुछ हुआ वह पाठकों को विदित है। विजय की आशा-लता म्लान होने पर जसवंतसिंह को पलायन करना पड़ा था। यह किसी भी रूढ-वंशी क्षत्रिय के लिए कलंकमयी घटना थी। कवि के सम्मुख धर्म-संकट का प्रसंग था। इस घटना पर आवरण कैसे डाला जाये। पर इस कठिन कर्म में भी कवि सफल रहा है। उस ने गद्य-बद्ध वचनिका में पहले औरंज़ेब की अजेयता का वर्णन किया "......**जिण आगै जम-राणौ विमुहा खड़ै।**" फिर जसवंतसिंह की प्रशंसा की "**तिण सूँ तीन पौहर हाथू के महा-राजा जसराज ही लड़ै।**" यों जसवंतसिंह को अद्वितीय वीर बताया है। उस के अनन्तर राजनीतिज्ञता का उल्लेख किया है "**सतरंज रौ ख्याल मंडियौ। राजा राखौ। राजा रखियै बाजी रहै।**"......"**ओछौ वाढौ। जसराज काढौ।**" यों इस घटना को नीतिज्ञता आदि के आवरण से आच्छन्न कर बहुत संक्षेप में '**वागाँ झालि जसराज वलि़या**' कह कर ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना को समाप्त कर दिया और '**भारथ रा भरभार रतनागिर झलि़या**' कह कर पाठकों का ध्यान जसवंतसिंह की ओर से हटा कर रतनसिंह की ओर आकृष्ट कर दिया। एक दोहे में फिर इस घटना का संक्षिप्त उल्लेख कर रतनसिंह के सेनापति पद सँभालने और भावी कर्म-क्षेत्र का विचार करने आदि का वर्णन कर के कवि ने जसवंतसिंह की घटना को उपेक्षित विस्मरणीय घटना बना दिया। काव्य में मर्म स्थलों की पहचान का यह अच्छा उदाहरण है।

आगे रतनसिंह निर्द्वन्द्व नायक बन जाता है। पलायित जसवंत की अवशिष्ट सेना का स्वामित्व धारण कर हिन्दू वीरों की लज्जा का रक्षक बनता है। पौरुष से आप्लावित,

उल्लास से आविष्ट और युयुत्सा से प्रेरित हो कर वह रण-स्थल में उतरता है और कवि "रूठो सरीर उप्परि रतन तूठो सीस पलच्चरां" कहकर उस के संकल्प का संकेत देता है। मस्तक पर मुकुट बांध कर, हिन्दू धर्म को भुजा पर धारण कर वह म्लेच्छ-वाहिनी में कूद पड़ता है। अनेक विरुद-मंडित उस के साथी-सहयोगी भी बराती बन कर उस दूल्हे के साथ स्वर्ग-यात्री—वर-यात्री—बनते हैं।

इन अनेक वर-यात्री वीरों के वीर कृत्यों का अनेक दोहों में वर्णन किया गया है। उस वर्णन में उक्ति-वैचित्र्य है। वक्र अभिव्यक्तियाँ हैं। शब्दालंकारों की छटा है। अर्थालंकारों की सज्जा है। युद्धोचित ध्वनि की गुञ्जार है। पर फिर भी सर्वत्र रस की अविच्छिन्न धारा प्रवहमान है। कोई वर्णन अनावश्यक लंबा नहीं। कोई उक्ति अस्पष्ट नहीं। कोई अलंकार भार नहीं। अर्थ-गौरव और पदलालित्य का एकत्र समावेश है। रस और अलंकार एक-दूसरे के पूरक हैं। वाणी और अर्थ सम्यक् संपृक्त हैं। दोनों की समुचित प्रतिपत्ति है। रस की यथोपयुक्त निष्पत्ति है।

ये पचहत्तर के लगभग दोहे काव्य की दृष्टि से एक-से-एक बढ़ कर हैं तो ऐतिहासिक सामग्री से भी उतने ही भरपूर हैं। इस युद्ध-रूपी महायज्ञ में कितनी आहुतियाँ लगीं उस का विवरण सरस भाषा में है। रतन के साथी वीर एक-एक कर रण-भूमि में चिर प्रगाढ निद्रा में सोते चले गये और पर्वतोपम रतनसिंह अकेला अवशिष्ट रह गया :—

इतरा भड़ ओनाड़ पड़िया राजा पाखती।
राजा ऊभौ रतनसी पाखै तरां पहाड़ ॥

कवि एक-एक वीर के अनुपम कृत्य का संक्षिप्त वर्णन कर चुका पर उस को इतने से सन्तोष नहीं हुआ। उस ने नायक रतन सिंह के विकट संग्राम का और युद्ध भूमि के वातावरण का चित्रण भी आवश्यक समझा। वह भी परुपा वृत्ति में, वीर रसोपयुक्त पदावलि में, चारण-भाट कवि-वर्ग के अति प्रिय छंद मोतीदाम में। यह वर्णन वस्तुतः मौक्तिक दाम है। एक-एक छन्द नहीं, एक-एक चरण नहीं, एक-एक शब्द मोती है।

रलत्तलि नीर जिहीं रुहिराल। खलाहलि जाणिकि भाद्रव खाल।
उजेणि अकाल झड़ाल अछेह। मंडे घण जाणि कि बारह मेह।
....

घुवै दल राजेन्द वाजेंद घोम। गजै गुण वाण अनै रिण गोम।
उड़ै घण वाण खतंग अंगार। पड़ै झड़ि नाखित जांणि अपार।
....

धमद्धम सेल वहै खग धार। पड़ै झसड़क्क पटाँ असपार।
....

भड़ाँ घड़ भंजि हुवै वि वि भग्ग। खड़क्खड़ ढल्ल झड़ज्झड़ खग्ग।
कड़क्कड़ वाजि धड़ाँ किरमाल। वड़व्वड़ भाजि पडंत बँगाल।
दड़व्वड़ मुंड रड़व्वड़ दीस। अड़व्वड़ लेत चड़च्चड़ ईस।
अँआँ खग झाट निराट अलग्ग। पडे वि वि भग्ग पड़ै झड़ि पग्ग।
....

वड़प्फर टूक हुवै गज वाज । तड़प्फड़ मच्छ जिहाँ सिरताज ।
भरह्‌ जरह्‌ पड़ै अनमंध । कहक्कह्‌ वीरह्‌ नाचि कमंध ॥

ऐसी विकट रण-भूमि में विकराल युद्ध करता हुआ रतनसिंह भी भूमि-लुण्ठित हुआ । उस के शरीर पर अस्सी घाव लगे ।

वर्णं त्रिण सै सर सेलह्‌ छबीस । सोहै फिर वंस गिरव्वर सीस ।
असी खग घाव लगा जब अङ्ग । जोधा हर ताम पडै रिण जंग ।

रतनसिंह के मरने पर औरंगजेब की सेना में विजय दुन्दुभी-बजी । युद्ध समाप्त हुआ । अनेक वीरों, गजों और अश्वों के धड़ों से भूमि आच्छन्न हो गयी ।

यहीं कवि ने अपनी कथा को एक नया मोड़ दे दिया । रतन की पराजय को महान् विजय में परिणत कर दिया, मृत्यु को अमरत्व में । विजयी शाहज़ादे तो केवल दिल्ली का—मर्त्यलोक का—शासन प्राप्त करते हैं पर महाविजयी रतन वैकुण्ठ का । रण में अभिमुख हत होने वाला वह पुरुष-व्याघ्र सूर्य-मंडल का भेदन करता है । यह गद्य-बद्ध वर्णन अत्यंत मनोहारी है । कथा-प्रवाह की दृष्टि से भी, शब्द-चयन की दृष्टि से भी और रस की दृष्टि से भी ।

रतन का स्वागत करने देव-समूह सहित विष्णु आते हैं । रतन उन से प्रार्थना करता है कि बारह दिन तक वहीं विश्राम किया जाये जब तक उस के अन्य साथी तथा सती होने वाली उस की रानियाँ भी साथ हो सकें । विष्णु इस प्रार्थना को स्वीकार करते हैं । विश्वकर्मा उन की आज्ञा से वैकुण्ठ के ही सदृश नगर रतनपुर का निर्माण करता है । वहाँ स्वयं विष्णु भगवान् सभापति पद पर आसीन होते हैं और रतन उन के पार्श्व भाग में अवस्थित होते हैं ।

इस गद्य-वर्णन की ललित पदावलि द्रष्टव्य है :—

वैजयन्ती माल । मोर मुकुट कुण्डल विसाल । मदन मोहन-कमल लोचन । स्याम-सुन्दर ठाकुर विराजमान हुवा छै । मणि माणिक जड़ित छत्रपाट सिंघासण विराजमान दीसै छै । भलाट करि जगाजोति जागै छै ।..... तेज पुन्ज । रूपक की गंज । काम की कली । चख नख चीज । सुख की सिलाव बिरह की बीज ।

इस प्रकार युद्ध-काव्य में अद्भुत रस की सामग्री का समावेश कर कवि ने रस-भंग नहीं किया अपितु पराजित नायक की पराजय को महान् विजय सिद्ध किया है ।

रतनसिंह की मृत्यु का समाचार जब उस की रानियों के पास पहुँचता है तो वे सती-धर्म के लिए प्रस्तुत हो जाती हैं । इस प्रसंग में कवि नख-शिख वर्णन करता है और रीति-काल के इस सर्व-प्रिय विषय को अपनी वीर-कथा में समाविष्ट कर देता है । पाठक सोचेंगे कि इस करुण प्रसंग में यह शृङ्गार की अवतारणा कैसी । पर जो सती-धर्म की इस परंपरा से परिचित हैं उन को विदित है कि राजस्थान की ये सतियाँ पति की युद्ध-भूमि में मृत्यु को सब से बड़ा उत्सव मानती थीं और युद्ध-भूमि से पति के लौट आने को अपने जीवन का सब से बड़ा कलंक । समस्त अलंकारों-आभूषणों से सज्जित हो कर मृत पति के साथ स्वर्ग लोक में जा मिलने की उन की परम कामना रहती थी । अतः नख-शिख वर्णन का यह प्रयोग कवि की मार्मिक स्थलों की पहचान की शक्ति में किसी अभाव का सूचक नहीं कहा जा सकता ।

चार रानियाँ और तीन खवासिनें सती होने चलीं । पर मरने से पूर्व देव पूजन कर उन ने अपनी इच्छा व्यक्त की "जुगजुग औ ही ज धणी देज्यो । न माँगां वात दूजी ।" अपने

सतीत्व का यह परिचय दे वे भस्मसात् हुई पर वस्तुतः उन ने वह पद प्राप्त किया जिस के लिए बड़े-बड़े मुनि तरसे। सावित्री, उमा और श्री उन का स्वागत करने वैकुण्ठ के द्वार पर आयीं और वे अपने पति रतन के महल में उस से जा मिलीं। कथा-वस्तु का यह विवेचन कवि की प्रबन्ध-पटुता का परिचायक है। उस में अर्थ-सम्बन्ध के निर्वाह की क्षमता है, कथा के मार्मिक स्थलों की पहचान है, वर्णन-शैली को प्रसंगोचित बनाने की सामर्थ्य है और भाषा तथा शब्दावलि पर पूर्ण अधिकार है।

नायक-निर्णय तथा चरित्र-चित्रण

'वचनिका' के नायक के विषय में कुछ चर्चा 'वस्तु-विवेचन' के अंतर्गत की जा चुकी है। पर भारतीय साहित्य-शास्त्र की दृष्टि से काव्य में नायक एक प्रमुख तत्व है अतः उस का कुछ विस्तृत विवेचन भी यहाँ अपेक्षित है। वैसे वचनिका का नायक स्पष्टतः रतनसिंह हैं। कवि ने मंगलाचरण के साथ ही उस के पूर्व-पुरुषों का वर्णन कर उस का परिचय पाठक को करा दिया है और यह भी व्यक्त कर दिया है कि उसी के चरित्र-गायन के निमित्त उस ने काव्य-रचना की है। अन्त में फल का भोक्ता भी वही है। उस को वैकुण्ठ का वास प्राप्त होता और अविचल यश भी। उस की प्रिय पत्नियाँ भी उस को देवांगना-रूप में प्राप्त होती हैं और इसी वैकुण्ठ-वास-रूपी फलागम के साथ वचनिका की समाप्ति होती है। अतः रतन के नायकत्व में सन्देह की कोई सम्भावना नहीं है। पर 'वचनिका' के कवि के सम्मुख इस प्रतिपादन में कुछ कठिनाइयाँ अवश्य थीं। रतनसिंह जसवन्तसिंह की अधीनता में नियुक्त था। शाहजहाँ ने सेनापति पद पर जसवन्तसिंह की ही नियुक्ति की थी। कथा-सूत्र के सम्यक् निर्वाह के लिए जसवन्तसिंह के नेतृत्व को स्थापित रखना आवश्यक था। कथा का वास्तविक नेतृत्व रतन के हाथ तभी आया जब जसवन्तसिंह रण-स्थल से पलायन कर गया। जिस प्रकार लक्ष्मण को नायक मान कर काव्य लिखने पर हठात् राम का चित्रण आवश्यक हो जाता है उसी प्रकार जसवन्तसिंह का चित्रण भी कवि के लिए अनिवार्य आवश्यकता थी। इन परिस्थितियों में कवि ने अपने कर्त्तव्य का सम्यक् निर्वाह किया है और सफलता प्राप्त की है।

रतनसिंह रूढ-वंशी क्षत्रिय है। उस के पिता ने देवगिरि और बलख पर विजय प्राप्त की थी और जालौर को पुरस्कार में प्राप्त किया था। उस के वंश में अभूतपूर्व वीर, दानी, विरुद-धारी चक्रवर्ती पूर्व-पुरुष हुए थे। उन के वंश में उत्पन्न हो कर रतन ने भी अपने वंश के अनुरूप विरुदों को धारण किया। वह कर्त्तव्य में कर्ण और अर्जुन के तुल्य था। महाज्ञानी, समर्थ, शूर, गज-राजों का दानी और गज-भंजक था। अपने वंश का उद्धारक और तेरह शाखाओं का शृङ्गार था। उस का सम्मान स्वयं बादशाह शाहजहाँ ने किया था। नायक के वंश और गुण-वर्णन के इस प्रसंग के अनन्तर वास्तविक कथा-सूत्र का उदय होता है। इतिहास की दृष्टि से जसवन्तसिंह की नियुक्ति से ले कर पलायन तक रतनसिंह का कोई महत्व पूर्ण स्थान नहीं हो सकता पर कवि ने रतन का महत्व प्रतिपादन करने के लिए अनेक अवसर उत्पन्न किये हैं। जसवन्तसिंह विशाल वाहिनी को ले कर उज्जैन पहुँचता है तो उस को अपना भावी कर्त्तव्य स्थिर करने की चिन्ता होती है और वह मंत्रणा के लिए रतन ही को बुलाता है :

"बन्धव रतन बुलावियौ जसै रचण रिण जंग।"

और दोनों मन्त्रणा करने के लिए ऐसे मिलते हैं मानो राम-लक्ष्मण अथवा कर्ण-दुर्योधन मिले हों:

"राम लखम्मण राठवड़ किर दुज्जोण करन्न।"

इसी प्रसंग में रतन के रूप-शौर्य का और कवि-चारण-वेष्टित होने का भी वर्णन है। औरंगज़ेब और मुराद का पत्र पा कर जसवंतसिंह पुनः मन्त्रणा करता है और अनेक सामन्तों की सभा बुलाता है। वे सामन्त जसवंतसिंह को सर्वज्ञ बताते हुए भी रतनसिंह के महत्व का प्रतिपादन करते हैं:

"कमधजाँ आज माहेस कौ कहियौ याँ दुज्जो करन।
जुधबंध खत्री ध्रम जाणगर राजा वळि बुज्झौ रतन॥"

उस के पश्चात् जसवंतसिंह और रतनसिंह दोनों साथ बैठ कर व्यूह-रचना तथा किंकर्तव्यता पर विचार करते हैं। रतनसिंह व्यूह-व्यवस्था के बाद जसवंतसिंह से निवेदन करता है—'आप कुल की रक्षा के लिए चले जायें और मुझ को सेनापतित्व सौंप दें।' दुर्योधन और कृष्ण आदि के पलायन के उदाहरण दे कर जसवंतसिंह के पलायन को नीति-संगत भी बताता है। साथ ही यह सम्मति देता है कि औरंगज़ेब के पास युद्ध के निर्णय का सन्देश भेज दिया जाये। इस के बाद रतन के अपने साथियों का आह्वान करने, युद्ध के लिए पूर्ण तैयारी करने तथा दान-पुण्य आदि करने का वर्णन है। तृप्त हुए कवि-चारण रतन का विरुद-गायन कर आशीर्वाद देते है। रतनसिंह भी अपने साथियों को बुला कर सभा करता है और मन्त्रणा करता है जिस में रतन तथा उस के सभी सामन्त उत्साह, वीरता, त्याग, स्वामि-भक्ति आदि गुणों का परिचय देते हैं। इस प्रकार कथा-सूत्र में एक बार जसवंतसिंह पृष्ठ-भूमि में पड़ जाता है और रतनसिंह ही प्रमुख हो जाता है। हाथियों, घोड़ों, वीरों आदि के वर्णन में किसी के नायकत्व का कोई विशेष प्रसंग नहीं आता पर फिर भी जसवंतसिंह और रतनसिंह दोनों का नेतृत्व बना रहता है—'बिन्हे साह राजा बिन्हे नेल वांधै' तथा 'औरँग साह मुराद वे राजा जसौ रतन्न।'

इसके पश्चात् विकट युद्ध होता है। जसवंतसिंह की पराजय स्पष्ट हो जाती है और राठौड़ यही नीति-संगत समझते हैं कि जसवंतसिंह पलायन कर जाये। जसवंतसिंह बाध्य होकर चला जाता है और रतनसिंह नेतृत्व ग्रहण करता है—"वागाँ झालि जसराज वलिया। भारथ रा भर भार रतनागिर भलिया।" इस प्रकार रतनसिंह के निर्द्वन्द्व नेतृत्व की स्थापना हो जाती है और आगे उस के साहस, वीरता आदि के वर्णन हैं। "करि प्रणाम रवि ताम........"आदि से प्रारम्भ कवित्त और उस से अगला दोहा द्रष्टव्य है। रतन सेना-रूपी बरात का दूल्हा बन कर युद्ध-भूमि में अवतरित होता है। उस के साथी एक-एक कर खेत रहते हैं और वह अकेला रह जाता है—"राजा ऊभौ रतनसी पाखे तराँ पहाड़।" अकेला रतन भयंकर संग्राम करता है और रक्त की धारा प्रवाहित करता हुआ; शाही सैन्य को खण्ड-विखण्ड करता हुआ; गजराजों-वाजिराजों का भंजन करता हुआ; डाकिनी, शाकिनी, प्रेत, पिशाच, गिद्ध, यक्ष, किन्नर आदि को तृप्त करता हुआ; तीन-सौ बाणों, एक-सौ-बीस सेलों और अस्सी खड्गों से छिन्नांग हो कर धरा-शायी होता है। इस समग्र वर्णन में वह

साक्षात् वीरता की प्रतिमूर्ति चित्रित हुआ है। पर उस के बाद उस के सेवक-वात्सल्य, पत्नी-प्रेम आदि का भी वास्तविक रूप ज्ञात होता है। अमर-देह-प्राप्त रतनसिंह को वैकुण्ठ ले चलने के लिए समस्त देव-मण्डल आता है। रतन विष्णु भगवान् से प्रार्थना करता है, "मुझ को अकेले को न ले जाइए, मेरे सह-योद्धाओं को भी साथ लीजिए, सतियों को भी आ जाने दीजिए। यह है वीर-मूर्ति का सेवक-वात्सल्य और सतीत्व-सम्मान। इसी लिए उस की सम्पूर्ण कामना तृप्त होती है। उस को सपरिवार वैकुण्ठ-वास प्राप्त होता है और देव-गण बधाई देता है।

जसवंतसिंह के चरित्र का चित्रण भी कवि ने उतने ही आदर और सहानुभव के साथ किया है। उस के जीवन के अनुज्ज्वल पक्षों को भी यथाशक्य गोपित करने का उस ने प्रयत्न किया है। जसवंतसिंह युद्ध में केवल पराजित ही नहीं हुआ पलायन-शील भी हुआ। 'न दैन्यं न पलायनं' का आदर्श मानने वाले 'जय-काव्य' की परंपरा के कवि के हृदय में ऐसे व्यक्ति के प्रति सहानुभूति होना कम संभव था पर जगा ने जसवंतसिंह की लज्जा भी रखने का प्रयत्न किया है। उस का पक्ष निम्नोक्त बातों पर स्थापित है।

(अ) जसवंतसिंह का कर्त्तव्य जयसिंह की अपेक्षा अत्यधिक कठिन था।

(आ) औरंगजेब-जैसे अजेय शत्रु पर विजय प्राप्त करना असंभव था।

(इ) युद्ध से पलायन करना नीति-संगत और वंश के हित में था।

(ई) जसवंतसिंह ने पलायन स्वेच्छा से नहीं किया; अपने सामंतों के अत्यंत प्रार्थना करने पर बाध्य हो कर किया।

इन पक्षों का थोड़ा स्पष्टीकरण आवश्यक है :

(अ) जसवंतसिंह की कर्म-भूमि कठिन थी। बादशाह ने अकेले शुजा के विरुद्ध जयसिंह और सुलेमान शिकोह को भेजा था जब कि दो शाहजादों के विरुद्ध अकेले जसवंतसिंह को :

"सुज्जा दिसि जैसिंघ सझि दुज्जौ मौन दुबाह।
पोतो सायै परठियौ पूरब घर पतिसाह॥
साहिजादाँ विहुँ सामुहौ अेक जसो अणभंग।
माँडण असपति माँडियौ जोघ कळोधर जंग॥"

दो विकट शत्रुओं से युद्ध करना वस्तुतः कठिन कार्य था अतः यदि जसवंतसिंह को सफलता न मिली तो आश्चर्य नहीं।

(आ) औरंगजेब और मुराद की विकट सेनाओं और अपार शक्ति का भी वर्णन कवि ने किया है :

"धर सारी पड़ि धाक पुर तर गिर कीजै पहट।
हैकँप वर नागेन्द्र हुव चक च्यारूँ चढि चाक॥"

ऐसी विकट वाहिनी के वीर मुगलों का वर्णन भी द्रष्टव्य है। पर औरंगजेब से तीन पहर तक लड़ सकना भी केवल जसवंतसिंह के वश की बात बता कर कवि ने जसवंतसिंह के गौरव की रक्षा का सर्वाधिक प्रयत्न किया है :

"औरंगसाह पातिसाह रा तप तेज अपर बळ। दइव रा अवतार। जिण आगै जमराणो विमुहा खड़ै। तिण सूँ तीन पौहर हाथू के जसराज ही लड़ै॥"

(इ-ई) जसवंतसिंह के पलायन की नीति-संगतता का प्रतिपादन सर्व-प्रथम रतन के मुख से करवाया गया है :

"जोधाँ धणी घणा दिन जीवौ। दळ सिणगार वंस घर दीवौ ॥
....
कन मरतै दुज्जोन गयौ कमि। श्रीकम काळ जवन आगै तिमि ॥
राजा किसन दाव करि रहियौ। दाणव तिकौ पछे फिरि दहियौ ॥
हार जीप वातां हरि हाथे।.............................."

इस सम्मति को सुन कर भी जसवंतसिंह पलायन नहीं करता। क्षत्रियोचित उत्साह उस में तब भी विद्यमान रहता है और वह तीन पहर तक लड़ता है। अन्त में उस के सामंत शतरंज के खेल की उपमा देते हैं और उस को जाने को बाध्य करते हैं। "राजा राखौ। राजा राखियैं बाजी रहै।......ओछौ वाढौ। जसराज काढौ। वागाँ झालि जसराज वळिया।" इस प्रकार सामंतों की सम्मति पर जसवंतसिंह को जाना पड़ा।

जसवंतसिंह को कायर न चित्रित करना ही संभवतः कवि को रतनसिंह के उत्कर्ष की दृष्टि से अभीष्ट था। जसवंतसिंह-जैसे वीर को भी जिस संग्राम में पलायन करना पड़ा उस में भी असीम साहस के साथ अन्त समय तक लड़ते रहने की क्षमता जिस रतनसिंह में थी वह वस्तुतः मर कर अमर बना। पराजित हो कर भी विजयी हुआ। यही संभवतः कवि का प्रतिपाद्य था।

प्रतिनायक—रतन के प्रतिद्वन्द्वी दो शाहज़ादे—औरंगज़ेब और मुराद बक्स—थे और उन के साथ था उन का प्रवल सैन्य-समूह। उन का वर्णन करने में कवि ने पूर्ण सहृदयता का परिचय दिया है। पहले उल्लेख किया जा चुका है कि रसोत्कर्ष के लिए प्रतिनायक के वल-गौरव का वर्णन भी उतना ही आवश्यक है जितना नायक के इन गुणों का। कवि ने औरंगज़ेब और मुराद के अपार सैन्य-वल और रण-चातुर्य का समुचित उल्लेख किया। यही नहीं उन की नीतिज्ञता का भी परिचय कराया है। जसवंतसिंह को लिखे गये पत्र को देखिए :

"राजा राह म रोकि तूं साहि लगै दे जाण ॥
राडि म करि इक तरफ रहि आगै पीछै आव।
जोइ दिली फिर जाइस्याँ परसि असप्पति पाव ॥"

ये दोहे इस बात के सूचक हैं कि शाहज़ादे जसवंतसिंह को अपनी निश्छलता और पितृ-भक्ति का परिचय दे कर युद्ध से बच जाना और सीधे दिल्ली पहुँच जाना चाहते थे। शाहज़ादों की अजेयता और शक्तिमत्ता का उल्लेख तो ऊपर हो ही चुका है।

अन्य चरित्र—कवि ने रणक्षेत्र में काम आने वाले अनेक वीरों का भी परिचय दिया है। प्रायः एक-एक दोहे में उन के वंश और अद्भुत कृत्य का वर्णन है पर उस से भी अधिक सहृदयता-पूर्ण वर्णन गद्य-बद्ध वचनिका में है। वे चित्रण हैं बारहठ जसराज, भगवान, अमर, साहिब कुंभाणी, कुमार रायसिंह आदि के जिन में युद्ध के लिए प्रवल उत्साह उमड़ा पड़ रहा है। गद्य में ऐसे भाव-चित्र वस्तुतः अन्यत्र दुर्लभ हैं।

रसास्वादन

'वचनिका' के वस्तु-विवेचन से ही स्पष्ट हो चुका है कि उस का मुख्य रस वीर है। वैसे रीतिकालीन कवि के हृदय में नवों रसों का एकत्र समावेश करने का प्रयत्न एक साधारण कामना वन चुकी थी। खिड़िया जगा भी इस कवि-स्वभाव से अछूता न था। उस ने भी एक वचनिका के अन्तर्गत नव रसों और छह ऋतुओं के नाम परिगणित कर इस कवि-कर्तव्य की इति-श्री समझी। परन्तु आचार्यों ने नाम परिगणन-मात्र से रस-निष्पत्ति को सम्भव नहीं माना है। इस के विपरीत उस को दोष माना है। अस्तु यह रस-नामोल्लेख रसास्वाद की दृष्टि से उपेक्षणीय है। वस्तुतः वीर रस के अतिरिक्त अन्य कुछ रसों के समावेश का प्रयत्न कथा-सूत्र में विद्यमान है जिस की विवेचना आगे की पंक्तियों में की जावेगी।

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है जिस का उदय प्रतिनायक आदि आलम्बन विभावों के दर्शन से वीर आश्रय के हृदय में होता है और चतुर्दिक् की परिस्थिति-रूपी उद्दीपन विभावों से उद्दीप्त हो कर तथा वीर-हृदय की अनेक कामनाओं-रूपी संचारियों से पुष्ट होकर रस-रूप में निष्पन्न होता है। दान-वीर, दया-वीर, धर्म-वीर आदि की परिस्थितियाँ युद्ध-वीर से कुछ भिन्न होती हैं पर स्थायी भाव सभी में उत्साह होने के कारण सव का समावेश एक ही के अन्तर्गत किया गया है।

वचनिका का प्रधान रस युद्ध-वीर है। उस में युयुत्सु राठौड़ों—जसवंतसिंह, रतनसिंह तथा उन के सामन्तों—के युद्धोत्साह का सांगोपांग वर्णन है :

"तामजुहार कियौ खग तोले। वीजे भवि मिलिस्याँ हसि वोले।
जीवै तिके भलाँ घरि जावौ। आवै लगि मो सार्थ आवौ।" तथा—

"रूक पियाला पीयस्याँ पायस्याँ। चाचरि विहँडस्याँ विहँडायस्याँ। रिण खेत रे विखै रंगियै वाणासि मतवाळाँ ज्यूँ घूमता थकाँ हाथियाँ सूँ टला खायस्याँ। महारुद्र नै सिर पेस कराँ।" आदि उक्तियाँ यह सिद्ध करने को पर्याप्त हैं कि कमधज वीरों के हृदयों में किस प्रकार उत्साह उमड़ा पड़ रहा था। होना स्वाभाविक भी था ही। विरोधी वीरों की विकट वाहिनी सामने सन्नद्ध खड़ी हो; त्रम्बाल् गड़ागड़ वज रहे हों; तुरही, भेरी और नफेरी शब्दायमान हों; गज-वाजि सुसज्जित हो गर्जना और हींकार कर रहे हों; आकाश रेणु से आच्छन्न हो; गोले गनगना रहे हों; योगिनियाँ, डाकिनी, शाकिनी, पिशाचिनी रक्त-पात्र लिए घूम रही हों तो वीरों के हृदयों में उत्साह क्यों न जागृत होगा। "मूँछा करि घाति वोलै। तलवार तोलै" तथा अनेक वीर कृत्यों-रूपी अनुभावों से वह उत्साह अभिव्यक्त भी होता ही है और अप्सराओं के वरण की कामना, देवताओं से 'धन्य-धन्य' सुनने की अभिलाषा, नाम अमर होने की आकांक्षा आदि संचारी भावों से उस उत्साह की पुष्टि भी होती है और इस प्रकार वचनिका में वीर रस पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँचता है। गद्य तो पद्य से भी अधिक सरस है। पद्य में रतनसिंह के अन्तिम युद्ध वाला वर्णन छन्द, भाषा, शब्दावलि, रीति, वृत्ति आदि सभी दृष्टियों से वीर रस के अनुकूल है। गद्य भाग में रतनसिंह और उस के साथियों की मन्त्रणा वाला प्रसंग दर्शनीय है।

रतनसिंह के अपने डेरे आ कर दान-पुण्य करने और ब्राह्मणों-कवियों को भोजन कराने के प्रसंग में कवि ने दान-वीर की अवतारणा की है।

"अजुवालण पख आपरा नारि तजे ग्रिह नेह।
चढि चंचल सरवर चली मंगल जालण देह ॥"

में गृह-नेह का त्याग वस्तुतः निर्वेद-जन्य नहीं सती-धर्म से प्रेरित है। अतः उस प्रसंग को धर्म-वीर का प्रसंग माना जा सकता है।

वचनिका में वीर रस के बाद दूसरा महत्व-पूर्ण स्थान शृङ्गार को देने का प्रयत्न है। नायक की मृत्यु के पश्चात् वस्तुतः जहाँ पाठक करुण रस की आशा करेगा वहाँ कवि ने शृङ्गार की अवतारणा करने और अपने काव्य को सुखान्त बनाने का प्रयत्न किया है। सामान्यतः पाठक को शृङ्गार के वर्णन के लिए ऐसा प्रसंग ढूंढ़ना और सती होने के लिए—भस्मीभूत होने के लिए—जाती हुई रानियों के नख-शिख का वर्णन बहुत खटकेगा। कहाँ करुण का वातावरण और कहाँ शृङ्गार की कल्पना। परन्तु राजस्थान के कवि की कर्म-भूमि ही भिन्न थी। उस के समाज का आदर्श ही भिन्न था। वहाँ की नारी की आजीवन यही लालसा होती थी कि उस का पति शीघ्र रण भूमि में शत्रुओं का गंजन करता हुआ धरा-शायी हो जाये और उस को ऐसे अनुपम अपलायी वीर की पत्नी कहलाने और उस के साथ सती हो कर स्वर्ग में सह-वास करने का अद्भुत अवसर प्राप्त हो। पति का जीवित युद्ध-भूमि से वापस आना तो पत्नी के लिए मानो मरण-तुल्य था। सूरजमल की उक्ति देखिए :

"मणिहारी जारी भरी अब न हवेली आव।
कंत मुआ घर आविया विधवाँ किसा बणाव।"

पलायित पति की पत्नी पति का उपालंभ करती है। वह मनिहारी को संबोधन कर कहती है "मेरा पति वापस घर आया है तो निश्चित मरा हुआ आया होगा—जीवित आया हो तो मेरा पति नहीं—अतः आज से मैं विधवा हूँ। मुझे बनाव-शृङ्गार की अब आवश्यकता नहीं होगी।" कैसी व्यंग्योक्ति है ? यह था सामंती संस्कृति का आदर्श। अतः निश्चय ही मृत वीर की पत्नी अपने लिए उस दिन को जीवन के महान् उत्सव का दिन समझती थी जब वह सती हो। वह नव वधू बन कर अपने स्वर्गस्थ पति का सहवास करने के लिए षोडश शृङ्गार सज्जित हो कर अग्नि-मार्ग से अपने भावी पति-गृह को जाती थीं। इन आदर्शों में पले हुए जगा ने—रण में अभिमुख-हत हो कर सूर्य-मण्डल का भेदन करने वाले पुरुष-व्याघ्र को ही पुरुषोत्तम मानने वाले 'जयकाव्य' की परम्परा के चारण कवि ने—इसी दृष्टि से शृङ्गार की यह अवतरणा की है। रतन विष्णु भगवान से प्रार्थना करता है :—"यहाँ बारह दिन विश्राम कीजिए जब तक सतियाँ भी अग्नि-स्नान करके आ जायें।" उधर रतन की मृत्यु का समाचार सुन सतियाँ षोडश शृङ्गार सज्जित हो कर अग्नि-प्रवेश-मार्ग से पति के पास पहुँचने का उपक्रम करती हैं। इस प्रसंग में रानियों का नख-शिख-वर्णन शुद्ध शृङ्गारी परंपरा का वर्णन है। भस्मसात् होने के लिए प्रस्तुत होने वाली सतियों की विशिष्ट परिस्थिति का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ पाया है। पर नख-शिख-वर्णन समाप्त होने पर कवि वस्तु-स्थिति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। सब आदर्शों को भूल कर उस को कहना ही पड़ा—"करुणा सहि लोक लगा करणं।" सामन्ती आदर्श कुछ भी रहे हों पर ऐसी परिस्थिति में नख-शिख-वर्णन साधारण रसज्ञ को थोड़ा सा खटके बिना नहीं रह सकता। अस्तु, रानियाँ सती हो कर वैकुण्ठ पहुँचती हैं। उन का वहाँ लक्ष्मी-उमा आदि स्वागत करती हैं। रतन को देवता

बधाई देते हैं और रतन अपनी रानियों से सहर्ष मिलता है। यों संयोग शृङ्गार की कल्पना कर कवि ने अपने काव्य को सुखान्त बनाने का प्रयास किया है। वस्तु-स्थिति के अनुकूल भाव भी हठात् बीच में आ ही गये हैं जो संक्षिप्त होने पर भी अधिक मर्म-स्पर्शी हैं।

रानियों के अग्नि-प्रवेश का वर्णन करते हुए कवि हठात् अपनी शृङ्गार-कल्पना भूल जाता है और उस के मुख से करुण रस पूरित यह उक्ति निकल ही जाती है :

"हा हा कार पुकार हुइ राम राम भणि राम।
घणूं कहर वीती घड़ी जहर लहर विधि जाम॥"

कथा का यह स्थल ऐसा मार्मिक था कि शृङ्गार की कल्पना करता हुआ कवि भी विवश हो करुण की धारा प्रवाहित कर चला। रस के सभी अवयव हों चाहे न हों, साहित्य के आचार्य को सन्तोष हो चाहे न हो, पर भावुक पाठक के लिए यह एक दोहा करुण रस का अच्छा उदाहरण है।

शांत रस की निष्पत्ति के लिए भी अवसर उपयुक्त था पर कवि ने उस का उपयोग नहीं किया। वीरों की मृत्यु से संसार की असारता का ज्ञान किसी को न हुआ पर सतियों ने मृत्यु-लोक का मोह अवश्य छोड़ा।

"सती उमग्गे स्रग दिसा, मोह तजै म्रित लोक।" शांत रस-पुष्ट

में कवि शान्त रस के द्वार तक पहुँच कर वापस आ गया। उसे कदाचित् अपनी शृङ्गार-कल्पना में यह भाव व्याघातक प्रतीत हुआ।

युद्ध-वीर के प्रसंग में कहीं-कहीं वीभत्स का दृश्य भी उपस्थित हुआ करता है। वचनिका के कवि का भी ऐसी परिस्थितियों से साक्षात्कार हुआ है। यथा—'**रलत्तल् नीर जिहीं रुहिराल्**'; '**कटै कर कोपर कालिज कंध**'; '**दड़व्वड़ मुण्ड रड़व्वड़ दीस**'; '**अँत्राँ खग भाट निराट अलग्ग**'; '**पड़ै बि बि जंघ पड़ै भड़ि पग्ग।**' आदि। पर ये सभी प्रसंग वीर के संचारी मात्र हो पाये हैं वीभत्स की रस-संज्ञा के अधिकारी नहीं। वीभत्स का पूर्ण निर्वाह।

कथा के प्रारम्भ ही में—

"जीवत म्रित हुइ साहिजहाँ दिल्ली वै सुरिताण।
रात दीह अंदर रहै नह मंडै दीवाण॥
धुंध हुवै सारी धरा सहर दिली पड़ि सोर।"

आदि वर्णनों को यदि कुछ आगे बढ़ाया जाता तो भयानक रस की सृष्टि संभव थी और रतन-रासो-कार ने वैसा किया भी है पर वचनिका-कार को यह सब अभीष्ट प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार सेनाओं के प्रस्थान, तोपों की गड़गड़ाहट, बाणों की सरसराहट आदि के प्रसंग भी भयानक रस के उपयुक्त होते हैं, पर कवि ने उधर प्रयत्न नहीं किया है। वीर रस के साथ रौद्र रस का संयोग बहुत संभव था पर कवि ने उस दिशा में भी प्रयास नहीं किया।

हाँ, वचनिका-कार की एक अद्‌भुत सफलता है और वह है अद्‌भुत रस की सृष्टि। रतन की मृत्यु के उपरान्त शृङ्गार की सृष्टि में तो कवि सफल न हुआ पर इस अद्‌भुत प्रसंग में अद्‌भुत की कल्पना कर पाया। विष्णु प्रभृति देवों का आगमन, विश्वकर्मा द्वारा नव नगर का निर्माण अनुपम देव-सभा की सृष्टि, विष्णु के पुराणोक्त देव-रूप का वर्णन, सभा में हो रहे अद्‌भुत नृत्यादि का विवरण—ये सभी कल्पनाएँ कवि की सफलता के प्रमाण हैं।

शब्दावलि भी मनोरम है—"वैजयन्ती माल। मोर मुकुट कुण्डल विसाल। मदन मोहन। कमल लोचन। स्याम सुन्दर ठाकुर विराजमान हुवा छै। मणि माणिक जड़ित छत्रपाट सिंघासण विराजमान दीसै छै। भलहलाट करि जगा जोति जागै छै।''''तेज पुंज। रूप की गंज।" आदि। यों वचनिका-कार यत्न करके भी शृङ्गार की सृष्टि में असफल रहा है जब कि करुण में हठात् सफल हुआ है और अद्भुत में अद्भुत रूप से कृत-कृत्य।

अलंकार-चमत्कार

अलंकारों के प्रति वचनिका-कार का न तो कोई विशेष आग्रह ही रहा है न औदासीन्य ही। शब्दालंकार—विशेषकर अनुप्रास और वयणसगाई—तो वचनिका में भरे पड़े हैं। वयणसगाई का तो चारण कवियों को आग्रह था ही। यमक के भी अनेक उदाहरण हैं। पुनरुक्तवदाभास तथा वीप्सा भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं। अर्थालंकारों का कवि ने थोड़ा ही प्रयोग किया है। उस की उक्तियाँ स्वाभाविकता से अधिक पूर्ण हैं पर फिर भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, संदेह, विषम आदि ऐसे अलंकार हैं जो भारतीय कवि की लेखनी से विना चाहे भी अंकित हो ही जाते हैं। उचित समय पर उपयुक्त अलंकार का प्रयोग करने में कवि नहीं चूका है। पर उस के अलंकार कहीं भी काव्य-भारती के भार नहीं बने हैं। कुछ उदाहरणों से यह कथन अधिक स्पष्ट हो जायेगा :

यमक : (१) गुणपति गुणे गहीरं गुणग्राहग दान गुण दियणं।
(२) सझि आरावाँ समसमा समा समा सझि सूर।
समा समा दल़ सालुल़ै त्रहै त्रँबाल़ा तूर॥
(३) गौ काल़ौ कुम्भाथल़ाँ काल़ गजाँ सिर काल़॥
(४) घण अहिरण घण घाव साम्है चाचरि सात्रवाँ।
वाहे साहे वीठलो खाँडो खाँडेराव॥
(५) सूर सभा विचि सूर।

वीप्सा : (१) इलल्ला इलल्ला इलल्लाह अक्खै।
(२) राम राम भणि राम।

पुनरुक्तवदाभास (१) मंडै घण जाणि कि बारह मेह।
(२) असी खग घाव लगा जब अंग।

वयणसगाई : यह तो चारण कवि का एक अनिवार्य अलंकार है। उस के किसी-न-किसी रूप का निर्वाह कवि को करना ही पड़ता है। जगा इस दिशा में भी सफल रहा है।

अनुप्रास : अनुप्रास की छटा वचनिका में भरी पड़ी है। प्रायः प्रत्येक दोहे या छन्द में किसी-न-किसी रूप में वह मिल ही जाता है।

अर्थालंकारों में उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा की तो बहुलता है ही पर विषम, संदेह आदि के उदाहरण भी मिल जाते है :

उपमा : (१) कपोलं गंज चोल सिंदूर केसं।
ओपै इन्द्रधानंख जैसा अरेसं॥
(२) भिड़ंताँ गजाँ भीम जेही भमाड़ै।

(३) नरवर सूर निगेम भारथ मझि रीती भरी ।
आवै जावै अपछरा अगि अरहट घड़ि जेम ॥
(४) औरँग जसौ अगाहि जूटा सूरिज राहु जिम ।

रूपक : (१) दल सिरणगार वंस घर दीवो ।
(२) दुरजोण माण । अरजणह वाण । भुजवली भीम ।
(३) रिण समंद माहै सूर कमल विकसि विराजमान हुवा ।
(४) दुल्लह रयण दुझाल सूरा पूरा जान सहि ।
(५) रूक रहिल वागी ।
(६) है वै घड़ दुलहणि हुई घण तोरण गज ढाल ।

उत्प्रेक्षा : (१) कसे पाखरां चामरां जूह काला ।
वर्णं जाणि पाहाड़ हेमंग वाला ।
(२) धजां फाबि नेजां गजां सीस ढल्लं ।
माथै उड्डिया जाणि गुड्डी महल्लं ॥
(३) कुलं अट्ठ चल्ले गिरं गज्ज काला ।
मँडै इन्द्र जाणं घटा मेघमाला ॥

विषम : (१) काल अजुवालो कियो आवि दलां अवियट्ट ।

भाषा-शैली

वचनिका की भाषा मारवाड़ी का साहित्यिक रूप डिंगल है । उक्त भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार है । किस रस में, किस प्रसंग में, कैसी परिस्थिति में कैसी भाषा और शब्दावलि का प्रयोग किया जाये इस बात का कवि को पूरा ज्ञान है । युद्ध के विकट प्रसंग में भीषण शब्दावलि और परुषा वृत्ति के आधिक्य से वीर रस-निष्पादन की क्षमता, अद्भुत चित्रण के प्रसंग में कोमल-कान्त संस्कृत पदावलि का प्रयोग, साधारण विवरण अथवा इतिवृत्त-कथन के समय सामान्य भाषा का प्रयोग—ये हैं कवि की विशेषताएँ जो उस के भाषा-अधिकार और औचित्य ज्ञान की परिचायक है ।

विकट शब्दावलि का उदाहरण देखिए :

"भड़ां घड़ भंजि हुवै वि वि भग्ग । खड़ग्खड़ ढल्ल झड़ज्झड़ खग्ग ॥
कड़क्कड़ बाजि घड़ां किरमाल । वड़व्वड़ भाजि पड़ंत वंगाल ॥
दड़व्वड़ मुण्ड रड़व्वड़ दीस । अड़व्वड़ लेत चड़च्चड़ ईस ॥
....
वड़प्फर टूक हुवै गज वाज । तड़प्फड़ मच्छ जिहीं सिरताज ॥
मरद्द जरद्द पड़ै अनमंध । फ्रहफ्रह वीरह नाचि कमंध ॥"

रणरणात ध्वनि करती हुई शब्दावलि में युद्धादि का वर्णन देखिए :

"घुबै दल राजंद बाजंद घोम । गजै गुण वाण अनै रिण गोम ॥
उडै घण वाण खतंग अंगार । पड़ै झड़ि नाखित जाणि अपार ॥
....

मिरणा रेह तेजाळ बंका बिडंगं । कबाणं गुणं डाणि झल्ले कुरंगं ।।

....

सिलहाँ खाँना ऊघड़े बह भड़ कछै दुबाह ।
कटकाँ बिहुँ हूँकळ कळळ हुवै सनाह सनाह ।।
दल सिणगार बिरोल दल दावानल दंताल ।
दिया जसै औरँग दुआ छोडी गज छंछाल ।।

....

त्रिजड़ा हथ सूजौ केहरि तरण । किलँबाँ घड़ा करण रण कण कण ।।"

मधुर कोमल-कान्त संस्कृत पदावलि के उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। अन्य उदाहरण भी उसी गद्य-खण्ड में भरे पड़े हैं।

गद्य-बद्ध छोटे-छोटे वाक्य लिखने में तो कवि सिद्ध-हस्त है :

(१) पतिसाहाँ रा विभाडण हार । पातिसाहाँरा पडिगाहण । गजराजाँ राजान के गजवाग । अरिसाल । विजाईमाल । लख दीयण जस लीयण ।

(२) ....अगनि सोर गाजसी । पवन बाजसी । गजबंध छत्रबंध गजराज गुड़सी । हिन्दू असुराइण लड़सी ।........देवता स्याबास कहिसी । वात रहिसी ।

(३) ....रंग प्रेम का झड़ । तेज पुञ्ज । रूप की गंज । काम की कली । चख नख चीज । सुख की सिलाव । विरह की बीज ।

वचनिका में यत्र-तत्र मुहावरों और लोकोक्तियों के भी दर्शन हो जाते हैं :—'चंद जस नामो चाढ़ाँ'; 'कोधा चंदनामा' आदि में "चंदनामा" मुहावरागत प्रयोग है। 'हार जीप वाताँ हरि हाथे' एक लोकोक्ति है।

वृत्त-विचार

वचनिका में अनेक छंदों तथा गद्य-बंधों का प्रयोग हुआ है। छंदों में संस्कृत के त्रोटक, भुजंगी, गाथा, मौक्तिक-दाम आदि हैं तो भाषा के दूहा, वड़ा दूहा, कवित्त (हिंदी का छप्पय) विअक्खरी, चांद्रायणौ, हणूफाल चौसर गाहा और दुमेल गाहा। गद्य रूपों में वचनिका तथा वार्त्ता हैं।

गाहा (गाथा)—यह प्राकृत का बहु-प्रयुक्त छंद है। गाहा-सतसई इसी छंद में लिखा हुआ सतसई-परंपरा का आदि ग्रंथ है। गाहा मात्रिक छंद है। इस के विषम चरणों में बारह-बारह मात्राएँ, द्वितीय चरण में अठारह मात्राएँ तथा चतुर्थ में पन्द्रह मात्राएँ होती हैं। इस को संस्कृत में आर्या कहते हैं। पर इस के एक भेद के विषम चरणों में बारह-बारह तथा सम चरणों में पन्द्रह-पन्द्रह मात्राएँ भी होती हैं।

गाहा चौसर—इस के प्रत्येक चरण में सोलह-सोलह मात्राएँ होती हैं। प्रथम चरण में जो अन्तिम शब्द होता है उस की आवृत्ति प्रत्येक चरण के अन्त में होती है।

गाहा दुमेल—इस के भी प्रत्येक चरण में सोलह-सोलह मात्राएँ होती हैं पर अन्तिम शब्द की आवृत्ति का नियम नहीं है। पहले और दूसरे चरण में तथा तीसरे और चौथे चरण में तुक मिलना आवश्यक है।

कवित्त—यह हिन्दी का छप्पय छंद है। इस की रचना रोला और उल्लाला छंदों के योग से होती है। प्रथम चार चरणों में ग्यारह, तेरह की यति से चौवीस-चौवीस मात्राएँ होती हैं और अन्तिम दो में पन्द्रह, तेरह की यति से अट्ठाईस-अट्ठाईस मात्राएँ।

हणूफाल—यह सम वर्णिक छंद है जिस में सगण, जगण और जगण के क्रम से नौ वर्ण होते हैं। यह छंद मात्रिक रूप में भी मिलता है।

विग्रवखरी—यह सम मात्रिक छंद है। प्रत्येक चरण में चार चौकल अर्थात् सोलह मात्राएँ होती हैं पर अंत में जगण नहीं होता।

चांद्रायणी—यह भी सम मात्रिक छन्द है। प्रत्येक चरण में ग्यारह-दस की यति से इक्कीस मात्राएँ होती हैं। पर चौथे चरण के प्रारम्भ में प्रायः 'परिहाँ' शब्द जुड़ा रहता है जिस की गणना इक्कीस मात्राओं के अन्तर्गत नहीं होती।

दूहो—यह हिंदी का दोहा छन्द है। यह अर्ध-सम मात्रिक छंद है। इस के विषम चरणों में तेरह-तेरह तथा सम चरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं।

वडो दूहो—यह दोहे का भेद है। इस के प्रथम और चतुर्थ चरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं और द्वितीय तथा तृतीय में तेरह-तेरह मात्राएँ।

भुजंगी—यह संस्कृत का भुजंगप्रयात वृत्त है जिस के प्रत्येक चरण में चार यगण होते हैं। पर डिंगल में यह मात्रिक रूप में भी मिलता है अर्थात् एक गुरु वर्ण के स्थान पर दो लघु अथवा दो लघु वर्णों के स्थान पर एक गुरु वर्ण स्थापित कर दिया जाता है।

त्रोटक—यह संस्कृत का वर्ण वृत्त है जिस के प्रत्येक चरण में चार सगण होते हैं। यह भी मात्रिक रूप में भी मिलता है।

मोतीदाम—यह भी सम वर्णिक छंद है जिस के प्रत्येक चरण में चार जगण होते हैं। इस का भी मात्रिक रूप मिलता है।

छंदों का प्रयोग कवि ने प्रायः प्रसंगानुकूल ही किया है। दोहा आत्म-पूर्ण मुक्तक उक्ति के लिए बहुत ही उपयुक्त छंद है। वीरों के पृथक्-पृथक् युद्ध का वर्णन करने में कवि ने इन का विशेष रूप से प्रयोग किया है जिस से ये दोहे कथा-सूत्र के मोती भी बन सकें और स्वतन्त्र आभा भी व्यक्त कर सकें। युद्ध के लम्बे वर्णन के लिए चारण कवियों ने प्रायः भुजंगी और मोतीदाम को चुना है। त्रोटक शृङ्गार-वर्णन और वीर-वर्णन दोनों के उपयुक्त माना जाता है। वस्तुतः मोतीदाम और त्रोटक सवैये के ही भेद हैं। सवैया जितना शृङ्गार के उपयुक्त होता है उतना ही वीर के भी।

वचनिका बड़े गद्य-खण्ड का नाम है और वार्त्ता छोटे का। दोनों का प्रयोग जगा ने यथोचित स्थान पर किया है।

वर्ण्य-विलोडन

पूर्व-सूरियों की अनूठी उक्तियों को अपने काव्य में स्थान दे देना सौती साहित्य में परम्परा-सिद्ध और शास्त्र-कार सम्मत है। आदि ग्रन्थ महाभारत तक में पूर्व-वर्ती ग्रन्थों—उपनिषद् आदि—की उक्तियाँ मिलती हैं। इस क्रिया को चोरी नहीं माना गया। निरादर की दृष्टि से भी नहीं देखा गया। वचनिका में भी पूर्व-वर्ती कवियों की उक्तियाँ हैं। 'आसीस-वचनिका'

तो पूर्णतः अचलदास खीची की वचनिका की 'विरुदावली' का उद्धरण मात्र है। भुजंगी छंदों में अनेक पर 'गज-रूपक' की छाप है। अश्व-वर्णन की उक्तियों में 'राउ जैतसी रौ छंद' का अनुकरण है। पर यह भी सम्भव है 'जैतसी रौ छंद' तथा वचनिका दोनों ही में किसी तृतीय मूल का अनुकरण हो।

आशा है वचनिका का यह साहित्यिक विवेचन जगा की साहित्यिक प्रतिभा का परिचय कराने में सहायक होगा।

(५) 'वचनिका०' की भाषा का शास्त्रीय अध्ययन

(१) ध्वनि-समूह

डिंगल भाषा के स्वरूप की चर्चा करते हुए डिंगल की ध्वनियों का उल्लेख हो चुका है। प्रायः वे सभी ध्वनियाँ वचनिका की भाषा में भी उपलब्ध हैं। उन का ध्वनिशास्त्रीय विवेचन अपेक्षित है।

१. स्वर

अ—हिन्दी के समान मध्य, अर्ध-विवृत, ह्रस्व।

आ—अग्र, विवृत, दीर्घ।

आ—'आ' का ह्रस्व रूप है जिस का प्रयोग प्रायः छन्द की दृष्टि से करना पड़ता है। जैसे-'हाडा गौड़ जादव्व......।'

इ—अग्र, संवृत, ह्रस्व।

ई—अग्र, संवृत, दीर्घ।

उ—पश्च, अर्ध-संवृत, ह्रस्व।

ऊ—पश्च, अर्ध-संवृत, दीर्घ।

ऍ—अग्र, अर्ध-संवृत, ह्रस्व। यह ध्वनि भारत की प्रायः सभी आधुनिक भाषाओं में विद्यमान है पर उसके लिए अलग लिपि चिह्न की व्यवस्था केवल द्रविड़ परिवार की भाषाओं में है।

ए—अग्र, अर्ध-विवृत, दीर्घ।

ऐ—अग्र-मध्य, अर्ध-विवृत, दीर्घ।

ऒ—पश्च, अर्ध-संवृत, ह्रस्व। इस के लिए भी लिपि चिह्न की व्यवस्था केवल द्रविड परिवार की भाषाओं की लिपियों में की गयी है।

ओ—पश्च, अर्ध-संवृत, दीर्घ।

औ—पश्च-मध्य, अर्ध-संवृत, दीर्घ।

औ—यह 'औ' का ह्रस्व रूप है जिस का प्रयोग छन्द की आवश्यकता-वश करना पड़ता है।

प्रायः इन सभी ध्वनियों के नासिक्य रूप भी वचनिका में प्राप्य हैं।

अं—अनुस्वार।

२. व्यंजन

वचनिका की भाषा में प्रयुक्त व्यंजन प्रायः हिन्दी के ही समान हैं। ल् का

प्रयोग विशिष्ट है। 'व' का ओष्ठ्य रूप भी द्रष्टव्य है। ड और ड़ दो पृथक् ध्वनियाँ हैं। इसी लिए हस्त-लिखित प्रतियों में उन के लिए अलग लिपि-चिह्न भी मिलते हैं। हिन्दी की 'ढ़' ध्वनि डिंगल में नहीं मिलती।

संस्कृत के श, ष, ङ और ञ ध्वनियों के प्रयोग वचनिका में नहीं मिलते।

विशेष विवेचन इस प्रकार हैं—

स्पर्श

क—कण्ठ्य, अल्पप्राण, अघोष।
ख—कण्ठ्य, महाप्राण, अघोष।
ग—कठ्य, अल्प प्राण, सघोष।
घ—कठ्य, महाप्राण, सघोष।
च—वर्त्स्य अल्पप्राण, अघोष।
छ—वर्त्स्य महाप्राण, अघोष।
ज—वर्त्स्य, अल्पप्राण, सघोष।
झ—वर्त्स्य, महाप्राण, सघोष।
ट—मूर्धन्य, अल्पप्राण, अघोष।
ठ—मूर्धन्य, महाप्राण, अघोष
ड—मूर्धन्य, अल्पप्राण, सघोप।
ढ—मूर्धन्य, महाप्राण, सघोष।
ण—मूर्धन्य, अल्पप्राण, सघोष, आनुनासिक।
ड़—मूर्धन्य, अल्पप्राण, सघोष, उत्क्षिप्त।
त—दन्त्य, अल्पप्राण, अघोष।
थ—दन्त्य, महाप्राण, अघोष
द—दन्त्य, अल्पप्राण, सघोष।
ध—दन्त्य, महाप्राण, सघोष।
न—दन्त्य, अल्पप्राण, सघोष, आनुनासिक
प—ओष्ठ्य, अल्पप्राण, अघोष।
फ—ओष्ठ्य, महाप्राण, अघोष।
ब—ओष्ठ्य, अल्पप्राण, सघोष।
भ—ओष्ठ्य, महाप्राण, सघोष।
म—ओष्ठ्य, अल्पप्राण, सघोष।

पार्श्विक

ल—सघोष, दन्त्य, पार्श्विक।
ळ—सघोष, पार्श्विक, उत्क्षिप्त।

घर्ष

स—अघोष, दन्त्य।
ह—अघोष/सघोष, काकल्य।

अन्तःस्थ :

य और व अन्तःस्थ ध्वनियाँ हैं जिन का प्रयोग कभी शुद्ध व्यंजन के रूप में होता है और कभी स्वर के श्रुति-गत रूप में। तेस्सितोरी ने श्रुति-गत य व को स्वीकार नहीं किया और उन के स्थान पर इ उ के प्रयोग को उचित समझा। पर प्राचीनतम प्रतियों में भी य व का प्रयोग मिलता है। अतः हम तेस्सितोरी की कल्पना को निराधार समझते हैं।

(२) व्याकरण

संज्ञा

वचनिका में प्रयुक्त संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया-सूचक शब्दों में हिन्दी के समान ही दो लिंग और दो वचन होते हैं। संज्ञाओं के साथ विभक्तियों के अर्थ में प्रायः प्रत्ययों का प्रयोग होता है जो कभी-कभी पृथक् शब्द कहलाने के अधिकारी होते हैं। नीचे दिये हुए उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

कर्त्ता—इस का कोई प्रत्यय नहीं। कभी मूल रूप से ही काम चल जाता है तो कभी विकारी रूप से। बहुवचन में विकारी रूप अधिक मिलता है।

उदा०—मूल रूप—एक वचन— १. जसौ हालियौ (पुं०)
२. नदी हेम थी ले चली (स्त्री०)

विकारी रूप—एक वचन—१. चगथै जसौ चलावियौ (पुं०)

मूल रूप—बहु वचन— १. हाडा गौड़ जादव्व झाला हठाला (पुं०)
२. गाड़ी नालि़ गोला़ चलै (स्त्री०)

विकारी रूप—बहु वचन—१. हाडा गौड़ जादव्व झाला हठाला (पुं०)
२. हलीलां हिलै संप फौजाँ हसत्ती (स्त्री०)

कर्म—इस के प्रत्यय भी हैं और शब्द का मूल रूप अथवा विकारी रूप में भी प्रयोग होता है।

उदा०—मूल रूप—एक वचन—चगथै जसौ चलावियौ।
मूल रूप—बहु वचन—दल़ बाबल़ तावीन दे।
विकारी रूप—एक वचन—चलंता इसा मीर तीरां चलावै।
प्रत्यय—नूँ, नै, दिसा, दिसि, दिसौ, सारू।
उदा०—(१) मरण तणौ सोबौ दे मो नूँ।
(२) महा रुद्र नै सिर पेस करां।
(३) सती उमंगै स्रग दिसा।
(४) मेछ घड़ा दिसि मल्हपियौ।
(५) औरँगसाह दिसौ आखौ इम।
(६) सभै चालियौ एम उज्जैणि सारू।

करण—इस का प्रयोग प्रायः शब्द के मूल रूप में होता है। प्रमुख प्रत्यय 'सूँ' है।

उदा०—मूल-रूप—(१) विधि एणि गयौ स्रग क्रित्ति वरे।
(२) चढिया पौरस चूँच।

प्रत्यय— (१) सूं पतिसाहां सूत्रण समहर।

सम्प्रदान—इस के मुख्य प्रत्यय कजि, छलि, सारू आदि हैं।

उदा०—(१) कमधज राव तणां जतनां कजि।

(२) रोहड़ छलि राजा रतन।

(३) सीख रतन कीधी लगि सारू।

अपादान—इस के प्रत्यय थी और सूं हैं।

उदा०—(१) नदी हेम थी ले चली जाणि नीरं।

(२) आकास सूं सोव्रन मैं विवाण पिणि आया।

सम्बन्ध—इस के प्रत्यय हैं तणौं, रौ, हरौ, कौ जिन के उत्तर पदके अनुसार बहु वचन, स्त्रीलिंग आदि के विचार से तणां, तणी, रै, रा, री, हरा, हरी, हर आदि रूप बनते हैं।

उदा०—(१) रासौ रैणायर तणौ।

(२) तिणि वार त्रिया रतनेस तणी।

(३) राण तणाँ कपि राय।

(४) कीरतियां रौ झूंबकौ।

(५) महासरवर री पालि।

(६) आप रै पूत परिवार नै।

(७) दिली रा वाका।

(८) हणमंत ज्यूं जैता हरौ।

(९) (मधकर का आखाड़ मल)

कुछ प्रतियों में 'चौ' प्रत्यय भी मिलता है। (दल सिणसागर वंस चौ दीवौ) जो मराठी प्रभाव प्रतीत होता है। 'चौ' तथा उसके अन्य रूपों—'चा', 'ची'—का प्रयोग अन्य डिंगल ग्रन्थों में भी मिलता है।

अधिकरण—इस के प्रत्यय मां मांहि, मांहे, मां, माथै, मझि आदि हैं।

उदा०—(१) तियाँ मांहि ऊभी वणी रेख तासं।

(२) इतरा माहे वात करतां वार लागै।

(३) पडै आगि मां उड्डि जेहा पतंगं। (कुछ प्रतियों में 'मैं')

(४) माथै साहिजादां बिहां राव मारू।

(५) रहे रतन मझि राड़ि।

सम्बोधन—एक वचन में शब्द मूल रूप में रहता है बहु वचन में विकृत रूप में।

उदा०—(१) क्यूं बारहठ जसराज। हां महाराज।

(२) ठाकुरौ सतरंज रौ ख्याल मंडियौ।

लिंग और वचन—वचनिका में प्रयुक्त संज्ञाएं ओकारान्त-बहुला हैं। जिन के स्त्रीलिंग में ईकारान्त और बहु वचन (पुं०) में आकारान्त रूप होते हैं।

उदा०—ऊपर सम्बन्ध कारक के उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा। यथा—तणौ, तणा, तणी।

सर्वनाम

वचनिका में प्रयुक्त सर्वनाम शब्द जितने रूपों में प्राप्य हैं उन का विवरण इस प्रकार है:—

हूँ (मैं)—विहुं पतिसाह सरिस हूं वाथे।
मो (मेरे)—रिण मो रहियां राज रहेसी।
मो (मुझे)—मो थां आडो मेल्हियो।
मोनूं (मुझे)—मरण तणी सोवो दे मोनूं।
म्हारो (मेरा)—धड़ म्हारो भंजूं खग धारे।
मूझ (मुझे)—रिण आवगो मूझ दे राजा।
माहरै (हमारे)—माहरै तो भगवानदास वाघोत कहता।
आपै (हमने)—आपै तो अणी वांटि हरवल किया।
तोनूं (तुझे)—टीलो राज धरा छळ तोनूं।
तुम (आप)—तुम सिरहर दुइ राह।
थे (आप)—थे तो आबू आंबेर ऊजळा करि।
थां (तुम्हारे-ब० व०)—मो थां आडो मेल्हियो।
आपा (स्वयं ही)
अप्प (अपनी) }—आपा ओद्रकै अप्प छाया अपारं।
आप (अपना)—आप रै पूत परिवार नै।
निय (अपना)—निय वँस चाढे नूर।
आ (यह-स्त्री०)—आ तो ग्रीखम रित।
औ (यह-पुं०)—औ तो वडो अवसाण आयो।
ए (ये)—ए वेवै अरडिंग।
इण (इस)—इण जाइगा।
एणि (इस से)—विधि एणि गयो अग क्रित्ति वरे।
उणि (उस)—उणि वेला लागो अरसि।
तिको (वह-पुं०)—दाणव तिको पछे फिरि दहियो।
तिका (वह-स्त्री)—तिका तो वात आय।
तिके (वे-पुं०)—जीवै तिके भलां घरि जावो।
तिणि (उस)—तिणि वेला राजा रैणसाह।
तिण (उस)—तिण वार त्रिया रतनेस तणी।
तियां (उन)—तियां मांहि ऊभी वणी रेख तारां।
त्यां (उन)—त्यां मांहे जसराज गजणतण।
त्यानूं (उनको)—त्यानूं सरजीत कीजै।
ते (उस पर)—[ते पाटि अछे महिराण तन।] कुछ प्रतियां में यह पाठ मिलता है। अधिकांश में 'ते' के स्थान पर 'तिणि' है जो हमने भी स्वीकार किया है।
जास (जिस का/की/के)—पित जास महेस नरेस पिरं।

जासु (जिन का/की/के)—नळी जन्त्र मै जासु वाखाण नक्खं।

टिप्पणी—जास और जासु दोनों ही रूप एक ही शब्द के हैं और इन का प्रयोग एक वचन में भी हो सकता है और बहु वचन में भी। जास को एक वचन और जासु को उस का बहु वचन नहीं समझना चाहिए।

जियाँ (जिन का/के/की)—पुडच्छी जियाँ तोछ पै कंध पूरा।

ज्याँ (जिन का/के/की)—तरूआर ज्याँ तेज रा ताप तुट्टै।

जिके (जो-ब० व०)—न भागै जिके जुद्ध भागाँ न मारै।

जिणि (जिस)—गढ विड्ढि लियौ जिणि देवगिरं।

जिण (जिस)—जिण आगै जमराणौ विमुहा खड़ै।

जिहीं (जिस)—मलराव जिहीं जगि आपमला।

जे (जो-पुं०)—पखै जे प्रिथीनाथ भूपाल पूरा।

जेणि (जिन)—केवियाँ दल तंडल जेणि किया।

कासूँ (क्या, कौनसा)—कहौ जाव कासूँ कहाँ।

को (कोई)—जस मींढ न को नर सूर जती।

कोइ (कोई)—कमँधाँ कोइ न बुरो कहेसी।

कुण (कौन)—राज जितरौ कुण जाणै।

किणि (किस)—कहि दिखावै किणि भाँति।

आपणी (अपनी)—आपणो ही केइ एक सुणसी।

राज (आप)—राज जितरौ कुण जाणै।

याँ (इन ने)—याँ हरिनाम उचारियौ।

वाँ (उन ने)—वाँ रहिमान अलाह।

सु (सो)—सु औ वडौ अवसाण आयौ। [कुछ प्रतियों में]।

विशेषण

वचनिका की भाषा के विशेषणों की स्थिति प्रायः हिंदी से मिलती-जुलती है। प्रायः उन के लिंग और वचन विशेष्यानुवर्त्ती होते हैं पर अकारान्त विशेषण ऐसे होते हैं जिन में लिंग और वचन से कोई अन्तर नहीं आता।

गुण-वोधक विशेषणों में सूर, वीर, दातार आदि कुछ शब्द तो हिन्दी के समान ही हैं पर अधिकांश डिंगल के विशिष्ट शब्द हैं। यथा—अगाह, अणंकल, अणबीह, अमलीमाण, अरडिंग, अरेस, अवसाणसिध, असंध, आपमला, लजाथंभ, हीरजड़ित आदि।

ईदृक्ता, इयत्ता और संख्या-वोधक विशेषणों का भाषा में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान होता है अतः इस कोटि के वचनिका-प्रयुक्त विशेषणों का परिचय भी आवश्यक है :—

घणूँ—घणूँ कहर वीती घड़ी।

अतरा—अतरा माहै साचौरा मछरीक।

इतरा—इतरा भड़ औनाड़।

इसड़ी—इसड़ी वेढ री डाकणि वात।

इसौ—सु इसौ अवसाण आयौ। [कुछ प्रतियों में]।

इसै—वाजै इसै विनाणि।

इसा—चलंता इसा मीर तीरां चलावै।

इसी—वहंती इसी पंथि ओप्पै वहीरं।

ऐसा—दळां रोळ दंताळ ऐसा दुगंमं।

ऐसी—ऐसी उरवसी जैसी अपछरा।

एहा—एराकी वडा खेंगरू गात एहा।

इहड़ी—उवरै पख च्यारि जिसा इहड़ी।

कैसा—सभा रूप कैसा।

किसड़ी—किसड़ी ही क दीसै।

किहड़ी—कुळवंति पतीवरता किहड़ी।

जिसौ—रण रामायण जिसौ रचावां।

जिसा—जिसा गोवरधन अंनड़।

जैसा—बारहठ जसराज जैसा कवेसर।

ज्यारका—विराजै ज्यारका।

जिसड़ौ—जिसड़ौ कीरतियां रो भूंवको।

जितरौ—राज जितरौ कुण जाणै।

जैसी—ऐसी उरवसी जैसी अपछरा।

जेहा—बलि जेहा चक्कवै हुवा जिण वंस नरेसुर।

जेही—जँगम्मं पसम्मं मुखंमल्ल जेही।

तिसी—तन रंभह खंभ कनंक तिसी।

संख्यात्मक विशेषण—संख्या-सूचक जितने प्रयोग वचनिका में द्रष्टव्य हैं वे आगे दिये जा रहे हैं।

एक—एक जसौ अणभंग।

एकणि—एकणि चोट अताग।

दुइ—तुम सिरहर दुइ राह।

दुज्जौ—कहियौ यां दुज्जौ करन।

दुवै—दुवै फौज फब्बै गिरं गज्ज डाणै।

दुहुँ—दुहुँ बाजार भँडा देठाळै।

दोवै } चत्रवाह साह दोय राह चढि सझि फौजां दोवै समथ।
दोय }

दूसरौ—दूसरौ मधुकर।

बि बि—खगां चढि धार हुवै बि बि खंड।

बिहुँ—साहिजादां बिहुँ सांमुहौ।

बिहां—माथै साहिजादां बिहां राव मारू।

बिन्है—निपट बिन्है दळ आया नैड़ा।

बिन्हे—बिन्हे फौज फौजां धणी चत्रवाहं।

बीजा—बीजा या साथे दळ सब्बळ।

बीये—रचि बीये दिन राड़ि।

बे—बे भाई बिरदाळ औरँग साह मुराद इम।

बेवै—ए बेवै अरडिग।

बेहू—चंद सूरिज बेहू खवासी करै छै।

उभै—उभै विरुद्दां उद्धरै।

तीन—तीन पोहर हाथूके महाराजा जसराज ही लड़ै।

त्रिण्ह—च्यारि राणी त्रिण्ह खवासि।

त्रिण्हे—त्रिण्हे लोक कौतिक्क देखंत त्यारं।

तीसरौ—ओ तीसरौ महाभारथ।

मुर—थर हर मुर भुवरो थिया।

चत्र—चत्रवाह साह दोय राह चढि।

च्यारि—च्यारि राणी त्रिण्ह खवासि।

चौथा—चौथा पोहर लागा।

पंच—इंद्री पंच जीपै महासूर अेहा।

खट—खट भाख जाण।

छह—छह रित नव रस निजर आवै।

छ—छ खंड खुरसाण।

सपत—छह राग छत्तीस रागणी सपत सुर।

मुरचत्र (तीन + चार = सात)—जलनिधि मुरचत्र जाणि।

सात—सात समँद गिरि आठ ताम धर मेर टळट्ळि।

आठ—आठ असुर गज एक।

नव—नव लाख नाखित्र माल।

नव्व—खगां मारि डंडे जिके नव्व खंडं।

दसो—घोड़ा चढि चढि दसो दिसि चाली।

बारह—बारह घण मुँहडा आगे छिड़काव करै।

तेरह—सिणगार तेरह सक्ख।

सोळ—विधि साहस सोळ सिंगार वणी।

सोल्ह—सोळ्ह सिंगार रंग प्रेम का झड़।

अढार—जाणै अढार भार वनसपति।

छवीस—वणै त्रिण सै सर सेल्ह छबीस।

त्रीस—कसीसं गुणं त्रीस टंकी कबाणं।

तेतीस—तेतीस कोड़ि देवता।

छत्तीस—छत्तीस वंस हिंदू सरजीत करि।

छत्रीस—छत्रीस वाजित्र वाजै छै।

छतीस—अैसा वंस छतीस देरगह उम्बरा।
तीस-छै—करै आवर्त तीस छै जुज्झ कज्ज।
बावन—चौसठि जोगणी बावन वीर।
बासठि—बासठि हजार फौजां रा भांजणहार।
चौसठि—चौसठि जोगणी बावन वीर।
असी—असी खग घाव लगा जब अंग।
चौरासी—चौरासी सिद्ध विराजमान हुवा छै।
आधी—ऊनै जाणि आधी निसा अंधकार।
आधो—आधो दल् ऊडाड़ि।
सवाया—गड़ा सवाया गणणिया।
चौथा—चौथा पोहर लागा।
सातमैं—पग सातमैं पयाळि।
हजारां—हजारां मुहां वाथि त्वं वीर हक्कं।
हजारी—पंच हजारी पाड़तो।
सद्दी—पंच सद्दी वि सद्दी।
पनरोतर—पनरोतरै वरस्सि।
लक्ख—दत सासण लक्ख गजेंद्र दिया।
लाख—लाख लाख रा लाखीक।
कोड़ि—तेतीस कोड़ि देवता।
सको (सब)—सको सचाळा सत्थ।
सारा—जोव सारा इम जप्पै।
सारी—वुंब हुवै सारी धरा।
सब्ब—लियां साहि रा उंबरां सब्ब लारां।
बोह—करि बोह कोड़ पोहप वरिखा करि।
बह—रैणा मुरही बह।
एता—रूप भूप एतां रतन।
इतरा—इतरा मड़ ओनाड़।
सार्वनामिक विशेषणों का परिचय सर्वनामों के प्रसंग में कराया ही जा चुका है।

क्रिया

किसी भी भाषा की सब से बड़ी विशेषता है उस के क्रिया-रूप। वचनिका में प्रयुक्त क्रियाएँ संस्कृत मूलक भी हैं और डिंगल की विशिष्ट क्रियाएँ भी, जिन को देशज कहा जा सकता है। दोनों ही वर्गों की क्रियाएँ संयुक्त रूप में भी मिलती हैं और एकल रूप में भी। संयुक्त क्रियाएँ पुनः दो प्रकार की हैं—दो क्रिया-शब्दों के मेल से बनी हुई और क्रियेतर शब्द के साथ क्रिया के मेल से बनी हुई। बहुत-सी क्रियाओं के णिजन्त रूप भी वचनिका में द्रष्टव्य हैं। इन सभी वर्गों की क्रियाओं का परिचय कराने के लिए आगे उन के उदाहरण

दिये जा रहे हैं। डिंगल की क्रियाओं के मानक रूप में अन्त में 'णौ' होता है जैसे हिन्दी में 'ना' (पढ़ना आदि)। उदाहरणों में हम 'णौ' को छोड़कर शेष मूल रूपों का ही प्रयोग करेंगे। जैसे मानक रूप 'सुमरणौ' के स्थान पर केवल 'सुमर'।

संस्कृत मूलक क्रियाएँ—(१) एकल—सुमर, वखाण, हो (व), उद्धर, दे (व), समाप, ले (व), ग्रह, कर, जा (व), पूज, रह, पड़, बैठ, कोप, कह, सज, चल, चाल, उड, वह, फट, सोख, पा (व), खड़, आ (व), रच, मिल, भाग, गुड़, वंध, धर, कस, वैस, आरोह, छा (व), क्रम, मर, उल्लट, गाज, लिख, रोक, परस, सुण, पूछ, आख, जाण, जप्प, थप्प, बूझ, सूत्र, मरण, अड़, सभ, जीव, भोग, दह, गंज, भंज, तोल, हस, दरस, पोख, बिधूंस, बिभाड़, तपण, विराज, खेल, डंड, धूंस, हण, जळ, वाँध, अप्प, जुड़, उचार, सूक, बरण, जाग, लाग, वाज, वाग, गा(व), ऊछल, बरस, भर, जूट, वसण, तज, उल्हस, तूठ, वधार, विहंड, झाड़, सोह, नीवड़, पाधार, मान, दीस, जीप, जिगमग, पुंख, लोप, पी, धूम, सोच, वर, ऊबर, लह, ऊघड़, छोह, आण, ताण, राज, पूर, गिण, धस, त्रुट, भाख, तोड़, मरोड़, त्रोड़, वाच, भाव आदि।

(२) संयुक्त—(क) (क्रिया+क्रिया)—ले चल, जाण पा (व), गाज हो (व), जाण दे (व), खंड कर, वणि आ, कहि दिखा।

(ख) (क्रियेतर+क्रिया)—वधारो दे, साथि कर, संग-लग, वणाव कर, चाक चढ, राड़ कर, सिनान कर, पाव परस, पारि कर, राड़ रच, लूण वार, समाइ जा, संग जा, कामि आ, क्रीड़ा कर, निरत कर आदि।

देशज क्रियाएँ—(१) एकल—वेढ, विढ, हकार, हाल, वल़, छिल़, सालुल़, ढुल़, रुल़, त्रह, झिल़, फरर, आमूझ, गूंडल़, धुव, मेल्ह, तेड़, हेड़व, घात, साचव, छिक, गाह, सेल, ओद्रक, ऊमट, रोल़, खिंव, लुड़, खलक, ऊपट, पट, चोपड़, कछ, ठेल, कड़ख, कसस्स, निहस्स, सल़स्सल़, टल़ट्टल़, ढूक, गणण, खूट, भल़, मल्हप, खंडर, धड़हड़ आदि।

(२) संयुक्त—मेल़ हो (व), झाँखो कर, धाक पड़, जोडं धर, टल्ला खा (व), ऊभो हो (व), कोड कर, तण्डल़ कर, दाग दे, झोला खा (व) आदि।

विदेशी—कुछ फारसी आदि की क्रियाएँ मूल रूप में भी आयी हैं और कुछ फारसी शब्दों के साथ अन्य क्रियाएँ जोड़ कर बनी संयुक्त क्रियाएँ भी दृष्टि-गोचर होती है। यथा :

(१) एकल—वहस्स, वगस, फाब आदि।

(२) संयुक्त—कूच हो (व), डेरा हो (व), जाब कह, अरज कर, निजरि आ, पेस कर, मुकाम कर, पैदास कर आदि।

णिजन्त—णिजन्त रूपों में भी कुछ क्रियाएँ वचनिका में प्रयुक्त हुई हैं। यथा :

मँडाड़, चाढ, पाड़, चलाव, वजाड़, वहांड़, सुणाव, पाव, विहँडाव, गवाड़, वजाड़, वेसार, गिराव, चाल, भमाड़, जड़ाव, दाख, ऊडाड़, वाढ, रचा (व), दिढाव, वेछाड़, परठ, बुलाव, भुंजा आदि।

तिङन्त और कृदन्त—वचनिका में प्रयुक्त क्रिया-रूप संस्कृत तिङन्त के वर्ग के भी हैं और कृदन्त के वर्ग के भी। भूत काल में हिंदी के समान कृदन्त-जन्य प्रयोग हैं पर वर्तमान तथा भविष्य काल में प्रायः तिङन्त-जन्य हैं। यथा :

कृदन्त—भूत—हुता<भूताः (पुं०, ब० व०) ।

किया<कृताः (पुं०, ब० व०) ।

कहियौ<कथितः (पुं०, ए० व०) ।

पराठियौ<प्रस्थापितः (पुं०, ब० व०) ।

मंडियौ<मंडितः (पुं०, ब० व०) ।

चली/चाली<चलिता/चालिता (स्त्री०) ।

तिङन्त—वर्तमान—दीसै<दृश्यते ।

पड़ै<पतति ।

भविष्य—जाइस्यां<गमिष्यामः ; खाइस्यां<खादिष्यामः ।

गाजसी<गर्जिष्यति; कहिसी,<कथयिष्यति ।

पुरुष—वचनिका की क्रियाओं में उत्तम, मध्यम और अन्य (प्रथम) पुरुष का भेद है। विध्यर्थक (लोट्) रूप का तीनों पुरुषों में प्रयोग द्रष्टव्य है।

प्र० पु०—अखियाति ऊबरै । ए० व० ।

गाजै हारि गयन्दो । ब० व० ।

म० पु०—कहौ जाव कानूं कहां । ब० व० ।

राजा राखौ । ब० व० ।

राड़ि म करि । ए० व० ।

उ० पु०—मरां तौ अपछरां वरां । ब० व० ।

कहौ जाणूं केम । ए० व० ।

लिंग—वचनिका की क्रियाओं में भूत काल में तो लिंग-भेद होता है क्योंकि वे कृदन्त-जन्य हैं पर वर्तमान और भविष्य में नहीं होता। कुछ उदाहरणों से यह कथन पुष्ट हो जायेगा।

भूत— बुधि बूडौ जैसा हरौ । ए० व०, पुं० ।

रिण तूर बागा । देवासुर देखवा लागा । ब० व०, पु० ।

हेमन्त रित लागी । सिसिर रित लागी । ए० व०, स्त्री० ।

नालि र उछालि वलगु चाली । ब० व०, स्त्री० ।

वर्तमान— पवन बाजै छै । ए० व०, पुं० ।

अनेक खग विहंगम कीला करै छै । ब० व०, पुं० ।

उरवसी जैसी अपछरा''' निरत करै छै । ब० व०, स्त्री० ।

मही उमंगै त्रग दिसा । ए० व०, स्त्री० ।

भविष्य— देवता स्याबास कहिसी । ब० व०, पुं० ।

वात रहिसी । ए० व०, स्त्री० ।

राज रहेसी । कोई न बुरो कहेसी । ए० व०, पुं० ।

पर वर्तमान काल में यत्र-तत्र कृदन्ती रूप के साथ 'छै' क्रिया का प्रयोग होता है। फलतः कृदन्ती रूप में लिंग-भेद होना स्वाभाविक है। यथा :

विराजमान हुआ छै। (पुंलिंग) । जिसका स्त्रीलिंग में 'हुई छै' होगा।

वाच्य—वचनिका की भाषा में हिंदी के समान कर्तृ-वाच्य, कर्म-वाच्य और भाव-

वाच्य—तीन वाच्य पाये जाते हैं। यथा :

कर्तृ— जुधि जूटौ जैसा हरो। ए० व०, पुं०।
देवासुर देखवा लागा। ब० व०, पुं०।
डाकरिण वात दसो दिसि चाली। ए० व०, स्त्री०।
दान पुंन करण लागी। ब० व०, स्त्री०।

कर्म— गढ विड्ढि लियौ जिणि देवगिरं। ए० व०, पुं०।
केवियाँ दळ तंडळ जेरिण किया। ब० व०, पुं०।
अमर देह पाई। ए० व०, स्त्री०।
सुन्दर मिन्दर सौव्रनं अंदर लई वधाइ। ब० व०, स्त्री०।

भाव— महाराज मानी।
राजा रतन वैकुण्ठनाथ महाराज सूं.....कहियौ।

लकार—वचनिका में वर्तमान, भूत और भविष्य काल को व्यक्त करने के लिए तो पृथक् क्रिया रूप हैं ही साथ ही लोट् (आज्ञा, प्रेरणा आदि) तथा लिङ् (कामना, चाहिए आदि सूचक) के लिए भी पृथक् रूप हैं।

वर्तमान, भूत और भविष्य के उदाहरण तो लिंग-विवेचन के प्रसंग में आ ही गये हैं। लोट् और लिङ् के अर्थ को व्यक्त करने वाले कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे।

लोट्— जाण द्यूं केम।
राजा राखौ।
अखियात ऊबरै।

लिङ्— गाजै द्वारि गयन्दो।
लोहाँ रा वोह सेलाँ रा धमंका लीजै।
डण्डाहड़ि खेलीजै।
पुरजा पुरजा हुई पडीजै।
जोधाँ घणी घणा दिन जीवौ। (मिलाइए—राजा राखौ)।
मुंहड़ा आगै लड़ाँ।
टूट टूक होय पड़ाँ।

अव्यय—क्रियाविशेषणादि

इस वर्ग के प्रमुख शब्दों के उदाहरणों से उन का प्रयोग स्पष्ट हो जायेगा।

अनमंध=अबाध रूप से —मरद् जरद् पड़ै अनमंध।

इम, ईम =यों —इम अक्खै उँवराव राज जितरौ कुण जाणै।
—अड़ै सिर व्योम कमंधज ईम।

अेम, अेमि =यों —सझे चालियौ अेम उज्जेणि सारू।
—आगा कहियौ अेमि।

केमि=कैसे —कहौ जाणद्यूं केमि।

क्यूं=क्यों —क्यूं वारहठ जसराज।

जई=जब —जालोर पटै गढ दीध जई।

जद=यदि, जब	—जपि आवाहन सुर ईसट जद ।
जब	—जसवंत औरँग साह जब ।
जेम, जेमि = जैसे, मानो	—आवै जावै अपछरा जग अरहट घड़ि जेम ।
	—भुवपत्तिय जेमि रतंन भणं ।
ज्यूं=जैसे	—पांडव ज्यूं पतिसाह ।
जेही=जैसी	—जँगम्मं पसम्मं मुखंमल्ल जेही ।
जाम, जियार, ज्यारां = जब	—जुटा रतनागर औरँग जाम ।
	—जयज्जय जोगिणि किद्ध जियार ।
	—जसवंत अेम वोलियौ ज्यारां ।
जिणि वार=जिस समय	—सार तणै भरि सोहियौ जीवौ ही जिणि वार ।
जिम=ज्यौं	—भमाडण रोद गजां जिम भीम ।
तई=तब	—टगटग्गी लग्गी तई ।
तठै=वहां	—तठै वंधेज कियौ ही ज छै ।
आगलि	—सोनगिरौ आगलि सळखां ।
आगै, पीछै	—आगै पीछै आव ।
अग्गै	—आरावां निवावां किया थट्ट अग्गै ।
उप्परै, ऊपरै = ऊपर	—पवै उप्परै जाणि फूले पलासं ।
	—उल्लटिया इल ऊपरै ।
उप्परां	—पतिसाही थां उप्परां ।
आडौ	—मौ थां आडौ मेल्हियौ ।
आडा	—आडा साहि मंडिया अंनड ।
आम्हो साम्हां	—आम्हो साम्हां ऊछलै ।
ताम, तियारां, त्यारं, त्यारां, सई = तब	—ताम रयण तेड़ियौ त्रिभै तण ।
	—तेड़ि माहेस तियारां ।
	—त्रिण्हे लोक कौतिक्क देखंत त्यारं ।
	—तण माहेस अरज की त्यारां ।
	—सनमान करे सुरताण सई ।
ज्यां=जहां	—ज्यां साहिजादां जोर ।
तिमि=त्यों	—त्रीकम काळ जवन आगै तिमि ।
अनै, अर = और	—सुपह अनै पतिसाह ।
	—गाया अर सुणाया ।
नै=कर	—चणाइ नै ऊभा हुवै ।
अवर	—अवर ही छत्तीस वंस ।
कि	—जाणि कि वाग विधूंसिया ।
क	—किसड़ी ही क दीसै ।
किना=अथवा	—किना लंका पति कुम्भेण कहीजै ।
किर, किरि = मानो, अथवा मानो	—बादल किर वरसाळ ।
	—किरि दुज्जोण करंन ।

कै=अथवा	—फटौ आभै कै जाणि सामंद्र फट्टै।
पिण=पर	—पिण औ महाभारथ रौ आगम।
वळि=भलेही	—राजा वळि वुज्झौ रतन।
तो	—तिका तो वात श्राय।
तौ	—तौ वकुण्ठ चढीजे।
निपट	—निपट विन्है दळ श्राया नैड़ा।
फिरि	—जोइ दिली फिरि जाइस्यां।
लगै=तक	—साह लगै दे जाण।
म	—राड़ि म करि इक तरफ रहि।
नहीं तौ	—नहीं तौ जीवित सिभ हुई ऊबरां।
जाणि } =मानो	—पवै उप्परै जाणि फूले पलासं।
जाणै }	—जाणै वरफ रा टूक।
ही	—सती ही श्रावै।
कजि } =के लिए	—कमधज राव तणां जतनां कजि।
काज }	—करण मरण पह काज।
कन्है } =के पास	—करनाजल अणवर कन्है।
गोढै }	—सूजावत गोढै मधकर सझि।
पाखती=पास	—पडि भुंइ कमधां पाखती।
छलि } =के लिए	—जसवंत छळि मातै जुड़णि।
छळ }	—टीलौ राजधरा छळ तांनूं।
चौसरा=चारों श्रोर	—चौसरा चंवर ढुळै छै।
तरफ	—इक तरफ रहि।
दिसा } =तरफ	—सती उमग्गे स्रग दिसा।
दिसि }	—सुज्जा दिसि जैसाह सजि।
दिसौ }	—श्रौरंगसाहि दिसौ श्राखौ इम।
परवै } =बिना	—पखे पार वीवा हिलै थट्ट पूरा।
पारवै }	—पाखै तरां पहाड़।
हाँ जी	—हाँ जी दूलह क्यूं चलै विगर जानी।
ज	—श्रौ ही ज धणी दे ज्यौ।
परि=तरह	—भीम तणी परि भीम।
सारिखा=सदृश	—सूर वलू सारिखा।
नै	—श्रापरै पूत परिवार नै।
नूं	—मरण तणौ सोवौ दे मो नूं।
तणौ	—रासौ रैणायर तणौ।
तणी	—तिण वार त्रिया रतनेस तणी।
तणां	—कमधज राव तणां।
रै	—श्राप रै पूत परिवार नै।

री — कीरतियाँ री मूँवकी ।
रा — दिली रा वाका ।
री — महासरवर री पालि ।
का — मयकर का आखाड़ मल ।
पूठि=पीछे — डेरा पूठि चंदोल दिवारे ।
यूँ — यूँ कहियौ अनपति ।
साम्हाँ, साँम्ही, सामुहा } =सामने
— ऊडै सर साम्हाँ अखत ।
— आगै सुर त्रिय साँम्ही आई ।
— सेन उजेणी सामुहा ।
माँ — पडै अगिन माँ उड्डि जेहा पतंगं ।
माथै=ऊपर — माथै साहिजादाँ बिहाँ राव माल ।
विचै, विचि, विचालूँ } =बीच में
— गोल विचै सिरदारे ।
— विचि भंड थंड मंडे वडा ।
— भ्रमतौ रौद्रायण कियौ व्योम विचालूँ व्योम ।
वाहिर — आया वाहिर खेम ।
माहै, महि } =में
— इतरा माहै बात करताँ वार लागै ।
— महि लोहड़ो सुरताण मंडोवर ।
साल=के लिए — सभे चालियो खेम उज्जेणि साल ।
हरो=वाला — जोवा हरो रुन जैतारण ।
तै, तैं } से
— खळक्कै गिरा मेर ते नीर खाळं ।
— आत लोक तैं स्वग लोक जायस्याँ ।
सूँ, थी } =से
— पतिसाहाँ सूँ पावरै लोह जरी का लेण ।
— नदी हेम थी ले चली जाणि नीरं ।
सहित, संगि, साथै, साथि, सहि } =साथ
— चंडी सहित ईसर त्रिलम चढि आया ।
— लजायंम सीसोदियाँ संगि लीवाँ ।
— पोतो साथै परठियौ ।
— कमंधाँ वडाँ कूरिमाँ साथि कीधाँ ।
— तुम सहि जोवाँ छात ।
मझि=में — रहे रतन मझि राडि ।
वाह वाह — वाह वाह बारहठ जी भली कही ।
हो — वाप हो वाप ।

कृदन्त

कृदन्तों के जो अनेक रूप वचनिका में दृष्टिगोचर होते हैं उन का उदाहरणों सहित परिचय आगे दिया जा रहा है ।

१. पूर्वकालिक—ये प्रायः इकारान्त होते हैं । यह इकार वचनिका की कम पुरानी प्रतियों में लुप्त हो गया है ।

उदा०—सुमरि, ग्रहि, समापि, चढि, कराडि, भरणाड़ि।

२. विशेषणार्थक (Participles)

आँ—लियाँ, हुआँ, कीधाँ, लीधाँ।

अंत—सोभंत, देखंत, वारंत।

अंता—पडंता, मरंता, भिड़ंता, कसंता।

अंती (स्त्री)—वहंती।

तौ—जातौ (विकरण-जातै)।

३. तुमर्थक—ण—लेण, रचण, करण।

वा—करेवा, मरेवा, जुड़ेवा।

४. भूतकालिक (क्तार्थक)—जीवत, मृत, मुवा, हुआ, त्राड़ियौ।

५. कर्तृत्वबोधक—ण—तारण, दियण, माँडण, मंडण।

हार—भाँजणहार, विधूँसणहार।

आर—दातार, झूझार।

गर—जाणगर।

तद्धित

अपत्यार्थक तद्धित का बोध कहीं तो मूल शब्द के बहु वचन रूप से व्यक्त कर दिया जाता है और कहीं पृथक् प्रत्यय द्वारा।

उदाहरण—बहु वचन—चाँपाँ, कूपाँ, अचल्लाँ, जोधाँ।

आ—सांचोरा (साँचोर गांव का)।

वत—दलावत, जैतावत, धरमावत।

औत—डूंगरोत, सुरताणौत, भारमलौत।

आण—जोधाण

ई—देवड़ी, कछवाही।

वति—सेखावति, राजावति।

मत्वर्थी—जमडाढाल़, चामरियाल़, हथाला, भुलाल़, प्रौचाल़ौ, दंताल़।

मयार्थी—जंत्र मै।

समास

वचनिका में समस्त शब्दों की भी कमी नहीं है पर उन में विशेष द्रष्टव्य बात है फारसी ढंग के समास। *यथा :—भाँजण गजाँ, तारण पखां आदि।*

(३) शब्द-भंडार

वचनिका के शब्द-भण्डार में अनेक कोटि के शब्द दृष्टिगोचर होते है। जैसे—डिंगल के विशिष्ट शब्द, विदेशी (अरबी-फारसी के) शब्द और ध्वन्यनुकरण-मूलक शब्द। इन में विदेशी शब्दों की मात्रा अनुपात की दृष्टि से बहुत कम है। ऐसे शब्दों के उदाहरण

हैं :—दीवाण, साहिजादा, तावीन, राह, फौजां, दर कूच, हुकम, काइम, निजर, स्यावास, जिहाज आदि ।

ध्वन्यनुकरण-मूलक शब्दों की संख्या अनुपात में विदेशी शब्दों से अधिक है पर संस्कृत और डिंगल के शब्दों से कुछ कम । उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—

गड़गड़, हड़वड़, घड़ड़ि, खाटखड़ि, क्रहक्रह, चड़च्चड़, झाटझड़ि, धड़घड़, कणकण, कळळ, सळस्सळि, टळट्टळि, खड़क्खड़, गणणिया, घमघम, वड़वड़ते, वडवड्डियो झड़ज्झड़, कड़क्कड़, वड़व्वड़, दड़व्वड़, रड़व्वड़, अड़व्वड़, रमज्झम आदि ।

डिंगल के विशिष्ट शब्दों की संख्या तो वचनिका में वहुत अधिक है ही पर इस से भी अधिक ध्यान देने योग्य वात है एक ही अर्थ के व्यंजक अनेक पर्यायों की वहुलता । नीचे के उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायेगा कि एक ही भाव के लिए कितने-कितने पर्यायों का प्रयोग वचनिका में उपलब्ध है :

घोड़ा—अलल्ला, खेंगरू, तुरी, पवंग, प्रवंग, भिड़ज्ज, वाज, विडंग, सारंग, हैमर, हैंवर ।

हाथी—गैंवर, गज, छंछाळ, घेंघिगर, पटाल, वइण्डा, हाथी, कुंजर, मैमंत, गयंदो ।

मुसलमान—असुरायण, किलंव, खुंदालिम, खान, चंकथा, चामरियाल, चुंगलाल, जवन, बंगाळ, वीवा, मळेच्छ, मेछ, मुंगल, मुगलाल, मेछाल, रवद, रौद्र, रौद्राल, रुद्रं, रौद्रायण ।

ये शब्द मूलतः मुसलमानों की विविध जातियों अथवा उन के गुणों के बोधक थे पर वचनिका में मुसलमान के सामान्य अर्थ में ही प्रयुक्त हुए हैं ।

तलवार—असि, असमरि, किरमाल, खग्ग, खगा, खांडा, चौधार, छरा, जमदढ़, दुछरा, दुजड़, दुवाह, तिजड़ा, त्रिजड़, धजवड़, धाराळ, पडियाळग, बिजड़ी, रूक, सार ।

भाला—छड़, छड़ाळ, सावळ ।

समूह—गरह, घमचाळ, जूह, थाट, थट, थट्ट, थंड, डंबर, साथ ।

आकाश—अंबर, गैण, गैणाग, गोम, व्योम, वोम, असमाण (फा०), आकाश (सं०), निहंग ।

संस्कृत-मूलक शब्द तत्सम रूप में भी प्राप्य हैं और अर्ध-तत्सम तथा तद्भव रूपों में भी । यथा :

तत्सम—पवन, गजबंध, छत्रबंध, गजराज, कुंजर, मरण, संग्राम, प्रचंड, भूपाल, दन्त, पंच, रोम, नवखंड, डंबर, वैकुंठ, रौद्ररस, देवासुर, नर, सुर, दानव, वसुधा, वास, कमल, हंस, क्रीडा, उत्तम, द्रुम, लता, चक्र, नदी, मदनमोहन, विराजमान, पुंज आदि ।

अर्ध-तत्सम शब्दों की संख्या और भी अधिक है । यथा—गुणग्राहग, सिधि, रिधि, सुवुधि, ग्यान, गज्ज, तपतेज, क्रित, जीवत, धर, द्रव्व, रिण, अभंग, मेघाडंबर, हीरजड़ित, नागेन्द्र, इळ, जळनिधि, दळ, मती, अविनासी, जळ, दुरजोधन, म्रित, सूर, द्वारि, म्हाराजा, राज, गुणीजण, ब्रहमंड, छत्रपती, सनाह आदि ।

तद्भव शब्दों की संख्या भी अर्ध-तत्सम से कम नहीं । कदाचित् अधिक ही हो । यथा—घड़ा, भड़, समहर, त्रिभै, भाई-वंध, दुज्जोण, विहग, त्रीकम, किसन, सरिस, स्रग, गयन्द, रजपूत, जुजिठल, इन्द, समन्द, जळहर, बात, सामि, पुन्न, रेहा, ऊजळा, अपछरा, सींग, साथ, धजां, माथै, त्रिण्हे, खेत, गात, असप्पति आदि ।

(६) धरमत के युद्ध की ठीक तारीख

वचनिका के अनुसार धरमत का यह युद्ध शुक्रवार, वैशाख वदि ६, १७१५ वि० सं० के दिन हुआ था (छं० सं० १७२)। 'इण्डियन एफ़िमेरीज़' के अनुसार उस दिन तारीख अप्रैल १६, १६५८ ई० थी। वचनिका एक समकालीन ऐतिहासिक आधार-ग्रन्थ है। परम्परागत जनश्रुति के अनुसार उसका रचयिता खिड़िया जगा अपने आश्रयदाता रतनसिंह राठौड़ के साथ धरमत गया था और युद्ध के समय वह वहाँ उपस्थित था। अतः उसकी दी हुई इस युद्ध-तिथि में किसी प्रकार की भूल होने की कोई सम्भावना नहीं होनी चाहिए। किन्तु डॉ० यदुनाथ सरकार ने अपने इतिहास-ग्रन्थ 'हिस्ट्री आफ औरंगज़ेब' में इस युद्ध की तारीख गुरुवार, अप्रैल १५, १६५८ ई० दी है जो अब तक प्रायः सब ही इतिहासकारों द्वारा मान्य रही है, और तदनुसार 'रतलाम का प्रथम राज्य' में भी धरमत के युद्ध की यही तारीख दी गई। यों इन दोनों तिथि-तारीखों में एक दिन का भेद पाया जाता है, एवं वचनिका का संपादन करते समय यह प्रश्न स्वतः सामने आया कि उसमें दी गई वह युद्ध-तिथि डॉ० यदुनाथ सरकार द्वारा निर्धारित इस युद्ध-तारीख की तुलना में कहाँ तक ठीक है। अतः तदर्थ धरमत के युद्ध के ठीक दिन और तारीख सम्बन्धी समूचे प्रश्न की पूरी-पूरी जाँच-पड़ताल सर्वथा अनिवार्य हो जाती है।

डॉ० यदुनाथ सरकार ने सारे महत्त्वपूर्ण समकालीन फारसी आधार-ग्रन्थों का गहरा अध्ययन किया और प्रधानतया उन्हीं के आधार पर उन्होंने अपने उक्त इतिहास-ग्रन्थ की रचना की थी। अतः इस युद्ध के दिन और उसकी हिजरी तारीख के सम्बन्ध में उन विभिन्न फारसी आधार-ग्रन्थों में क्या लिखा मिलता है यह पहले देखना चाहिए।

(१) शाहशुजा को लिखे गये पत्र में मुराद ने तब ही लिखा था—"गुरुवार, २१ रजब को देपालपुर में मैं भाई (औरंगज़ेब) के साथ जा मिला।·········शुक्रवार के दिन (हमारी) सेना ने युद्ध किया।" (फ़ैय्याज़-उल्-क़वानीन, २, पृ० ५६०)।

(२) 'आदाब-इ-आलमगीरी' में औरंगज़ेब ने स्वयं लिखा है—"शुक्रवार, २२ रजब के दिन मैंने सेना को आदेश दिया कि वह व्यूह-बद्ध हो कर युद्ध के लिए तत्पर हो।" (२, पृ० २१६ ब-२२० अ)।

(३) 'वाक़िआत-इ-आलमगीरी' में लिखा है—"दूसरे दिन, शुक्रवार २२ रजब, १०६८ हि० को छोटे से संकड़े ऊबड़-खाबड़ मैदान में अपनी सेना को क्रमबद्ध कर जसवन्त-सिंह युद्ध के लिए उतारू हुआ।" (अलीगढ़ संस्करण, पृ० ३८-३६)।

(४) 'आलमगीर-नामे' में उल्लेख है—"शुभ दिन शुक्रवार, २२ रजब, १०६८ हिजरी तथा इलाही सन् के ७ उर्दिबहिश्त को प्रातःकाल में औरंगज़ेब ने हिन्दुओं के साथ

युद्ध प्रारम्भ किया और उन्हें पराजित किया।" (पृ० ९१)।

(५) 'मासिर-इ-आलमगीरी' के मूल फारसी ग्रन्थ में मिलता है—"शुभ दिन शुक्रवार, २२ रजब को औरंगजेब ने (जसवंतसिंह के साथ) युद्ध के लिए तत्पर होने के लिए सेना को आदेश दिया।" (पृ० ५)।

यों इन सब समकालीन फारसी आधार-ग्रन्थों में धरमत के युद्ध की एक ही तारीख २२ रजब, १०६८ हिजरी समान रूप से मिलती है। परन्तु 'इण्डियन एफ़िमेरीज़' के अनुसार २२ रजब के दिन अप्रैल १५, १६५८ ई० थी और उस दिन शुक्रवार नहीं होकर गुरुवार ही था। फारसी आधार-ग्रन्थों में दिए गये दिन और हिजरी तारीख तथा 'इण्डियन एफ़िमेरीज़' द्वारा निर्धारित दिन और तारीख़ में यों एक दिन का भेद जो सामने आता है उससे अवश्य ही एक उलझन उत्पन्न हो जाती है। डॉ० यदुनाथ सरकार के सामने भी यही समस्या उपस्थित हुई होगी। स्पष्ट है कि 'इण्डियन एफ़िमेरीज़' की तारीख़ गणना को ठीक मान कर तदनुसार २२ रजब की ईसवी तारीख़ गुरुवार, अप्रैल १५, १६५८ ई० को धरमत के युद्ध की तारीख़ निर्धारित करते समय तब फारसी आधार-ग्रन्थों में दिये गए शुक्रवार के उल्लेख की पूर्ण उपेक्षा करना ही उन्हें उचित प्रतीत हुआ होगा। 'मासिर-इ-आलमगीरी' का जो अनुवाद डॉ० यदुनाथ सरकार ने किया है उसमें भी उन्होंने मूल फारसी ग्रन्थ में दिए गये वार को बदल कर धरमत के युद्ध की तारीख "गुरुवार, १५ अप्रैल १६५८, २२ रजब" दी है (पृ० २)।

इधर वचनिका में जो युद्ध-तिथि मिलती है उसमें भी युद्ध के दिन शुक्रवार होने का सुस्पष्ट उल्लेख है। पुनः मारवाड़ की ख्यातों में इस युद्ध का जो सविस्तार विवरण लिखा है, उनमें भी युद्ध की तिथि शुक्रवार, वैशाख वदि ९, १७१५ वि० सं० ही दी गई है (मुरारी २, पृ० ९९; ख्यात०, १, पृ० २०७)। अतः स्वाभाविकतया यह प्रश्न उठता है कि सब ही आधार-ग्रन्थों में समान रूप से दिए गये युद्ध-दिन, शुक्रवार, की पूर्ण उपेक्षा कर निश्चित की गई तारीख अप्रैल १५, १६५८ ई० क्या सर्वथा ठीक है और क्या आगे भी यह मान्य होनी चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण बातें विचारणीय हैं।

(क) मुसलमान लोग शुक्रवार को शुभ दिन मानते हैं तथा उसके प्रति उनकी विशेष धार्मिक भावना होती है, और इस बार उसी दिन तो औरंगजेब ने महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त की थी, एवं युद्ध के दिन शुक्रवार होने के जो सुस्पष्ट उल्लेख सारे विभिन्न समकालीन फारसी आधार-ग्रन्थों में मिलते हैं उनमें किसी भी प्रकार की कोई भूल होने की सम्भावना ही नहीं रह जाती है।

(ख) 'आलमगीर-नामे' में इलाही सन् के अनुसार भी युद्ध के दिन की तारीख दी है। उक्त तारीख ७ उर्दिबहिश्त भी शुक्रवार, अप्रैल १६, १६५८ ई० को ही पड़ती है। समकालीन इतिहासकार द्वारा सौर वर्ष गणना के अनुसार दी गई इस तारीख की भी उपेक्षा करना सम्भव नहीं।

(ग) प्रत्येक हिजरी मास का प्रारम्भ चन्द्र-दर्शन से होता है और दूसरे चन्द्र-दर्शन तक वह मास माना जाता है। हिजरी तारीख-पत्रक सम्बन्धी नियमों के अनुसार विभिन्न हिजरी महीनों की दिन-संख्या निश्चित है, किन्तु चन्द्र-दर्शन सम्बन्धी जो अनिश्चितता यदा-

कदा बनी रहती है उसके कारण ईसवी महीनों की तरह प्रत्येक हिजरी माह के लिए निश्चित रूपेण यह कह सकना कदापि संभव नहीं हो सकता कि वह किसी विशेष दिन ही प्रारम्भ होगा। अतः हिजरी तारीख-पत्रक के नियमानुसार निश्चित किसी माह की पूर्ण दिन-संख्या के समाप्त हो जाने पर भी उस विशिष्ट दिन चन्द्र-दर्शन नहीं हो सकने के कारण समाप्त-प्राय माह का एक और दिन बढ़ जाना हिजरी तारीख-पत्रक के विगत इतिहास में कोई नई अनहोनी बात नहीं है। यों 'अखबारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला' के अनुसार हिजरी सन् १०७८, १०९१ और १०९८ में ३० सफ़र, हिजरी सन् १०७७ और १०९८ में ३० रबि-उस्-सानी और हिजरी सन् १०७७, १०९१ और १०९२ के अधिक-दिन वर्ष नहीं होते हुए भी उन वर्षो में ३० ज़िल्हिज्ज की तारीखें हुई थीं। (जयपुर अखबारात, जुलूस सन् ९, पृ० १९१; जुलूस सन् १०, खण्ड १, पृ० २७७, और खण्ड २, पृ० १२९; जुलूस सन् २४, खण्ड १, पृ० ४३१; जुलूस सन् २५, पृ० ११; जुलूस सन् २६, खण्ड १, पृ० ३७४; जुलूस सन् २८, खण्ड १, पृ० ४४९, और खण्ड २, पृ० २०६)। चान्द्र-गणना कर निश्चित नियमानुसार हिजरी तारीख-पत्रक में जो हिजरी तारीखें और उनके जो वार दिए जाते हैं उनमें और तब जो हिजरी तारीख जिस वार को वास्तव में मनाई गई तथा समकालीन कागज-पत्रों और इतिहास-ग्रन्थों में तदनुसार किए गए उनके उल्लेखों में इसी कारण यदा-कदा एक दिन का भेद हो ही जाता है।

(घ) अन्त में इस बात का भी निर्णय करना अनिवार्य हो जाता है कि हिजरी तारीख २२ रजब पिछले दिन सूर्यास्त से प्रारम्भ होकर गुरुवार, अप्रैल १५, १६५८ ई० के दिन सूर्यास्त तक चलती रही या गुरुवार, अप्रैल १५, १६५८ ई० के दिन सूर्यास्त से प्रारम्भ होकर अगले दिन भी सूर्यास्त तक चलती रही। तदर्थ हिजरी माह रजब, १०६८, किस ईसवी तारीख को वस्तुतः प्रारम्भ हुआ था यह निश्चय किया जाना अत्यावश्यक हो जाता है। प्रत्येक हिजरी माह का प्रारम्भ चन्द्र-दर्शन से होता है। स्युएल और दीक्षित का मत है कि "(हिन्दू) माह (के शुक्ल पक्ष) की प्रतिपदा तिथि यदि सूर्यास्त से कम-से-कम ५ घटिका पहले ही समाप्त हो जाती है तो उसी दिन संध्या को बहुत करके चन्द्र-दर्शन हो जायगा। किन्तु यदि (उक्त) प्रतिपदा तिथि सूर्यास्त से ५ घटिका या अधिक समय बाद में समाप्त होती है तो चन्द्र-दर्शन बहुत करके अगले दिन संध्या समय ही हो सकेगा।" (इण्डियन एफ़िमेरीज़' में 'इण्डियन केलेण्डर' का उद्धरण, खण्ड १, भाग १, पृ० ७०)। 'इण्डियन एफ़िमेरीज़' के अनुसार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा बुधवार, मार्च २४, १६५८ ई० को थी और उसी में प्रतिपदा समाप्ति-काल .८१ दिया है, जिसके अनुसार मार्च २४, १६५८ ई० के सूर्योदय से कोई ४८½ घटिका अथवा १९ घंटे और ३० मिनट पर प्रतिपदा तिथि समाप्त हुई थी। अतः उपर्युक्त कथन के अनुसार चन्द्र-दर्शन अगले दिन, शुक्रवार, मार्च २५, १६५८ ई० की संध्या को ही हो सका होगा। 'इण्डियन एफ़िमेरीज़' के अनुसार हिजरी तारीख १ रजब गुरुवार, मार्च २५, १६५८ ई० को पड़ती है, किन्तु जैसा कि ऊपर बताया गया वस्तुतः तारीख १ रजब गुरुवार, मार्च २५ की संध्या से ही प्रारंभ होकर अगले दिन सूर्यास्त तक चलती रही। अतएव इसी प्रकार हिजरी तारीख २२ रजब भी वास्तव में गुरुवार, अप्रैल १५, १६५८ ई० को सूर्यास्त समय से प्रारम्भ होकर अगले दिन शुक्रवार, अप्रैल १६, १६५८ ई०

को सूर्यास्त काल तक चलती रही। धरमत के युद्ध के दिन का जो वार और जो हिजरी तारीख समकालीन फारसी आधार-ग्रन्थों में दिये गए हैं वे सर्वथा ठीक हैं, यह इस प्रकार निर्विवाद रूप से प्रमाणित है। अतः शुक्रवार की उपेक्षा कर निर्धारित की गई युद्ध-तारीख गुरुवार, अप्रैल १५, १६५८ ई० में आवश्यक परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाता है।

धरमत का युद्ध यथार्थ में शुक्रवार, २२ रजब, १०६८ हिजरी अथवा अप्रैल १६, १६५८ ई० को ही हुआ था, यह मान्य हो जाने से वचनिका में दी गई युद्ध-तिथि के सम्बन्ध में कोई भी कठिनाई या समस्या नहीं रह जाती है। शुक्रवार, वैशाख वदि ८, १७१५ वि० सं० के दिन ईसवी तारीख अप्रैल १६, १६५८ ही थी। यों स्पष्ट हो जाता है कि वचनिका में दी हुई युद्ध-तिथि सर्वथा ठीक है और समकालीन फारसी आधार-ग्रन्थों से भी इसी तिथि का पूर्ण समर्थन होता है। अतः अब यह अत्यावश्यक हो जाता है कि आगे भविष्य में सब ही इतिहासकार धरमत के युद्ध की इस संशोधित ठीक तारीख, शुक्रवार, अप्रैल १६, १६५८ को स्वीकार कर उसे ही मान्य करें।[1]

---

१. "दी डेट आफ़ बेटल आफ़ धरमत" शीर्षक मेरा लेख "बंगाल : पास्ट एण्ड प्रेजेण्ट" (खण्ड ७४, भाग २, पृ० १४४-१४६) में छपा था। उसे पढ़कर डा० यदुनाथ सरकार ने नवम्बर ७, १९५५ ई० के अपने पत्र में लिखा था "पुनर्विचार के बाद मैं सहमत हूँ कि महीने की तारीख (२२) की अपेक्षा सप्ताह के दिन (शुक्रवार) का उल्लेख करने में भूल की संभावना कहीं कम ही थी (और इसीलिए दिन का उल्लेख फारसी हस्त-लिखित ग्रन्थों में किया जाता था)। एवं ईसवी तारीख अप्रैल १५ नहीं होकर अप्रैल १६ ही होनी चाहिए।"

(७) धरमत का युद्ध और रतनसिंह राठौड़

मार्च, १६४७ ई० में अपने वीर और साहसी पिता महेशदास राठौड़ की मृत्यु पर रतनसिंह राठौड़ जालोर परगने का शासक बना, जो उसे भी वतन के रूप में मिला था। किन्तु अगले आठ वर्षों में उसे शाही सेना के साथ अधिकतर बाहर ही रहना पड़ा, जिससे उसका काफ़ी द्रव्य व्यय हो गया तथा निजी देख-रेख और पर्याप्त प्रयत्नों के अभाव में जालोर परगने की आय भी बहुत घट गई थी। यों रतनसिंह की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न रही। एवं सन् १६५६ ई० के प्रारम्भ में उचित अवसर पा कर रतनसिंह ने जालोर परगने की आमदनी का ठीक-ठीक ब्योरा और अपनी सारी आर्थिक कठिनाइयों का सच्चा-सच्चा विवरण शाहजहाँ की सेवा में निवेदन करवाया। तब अप्रैल, १६५६ ई० के लगभग रतनसिंह को जालोर परगने के बदले में मालवा सूबे के अन्तर्गत रतलाम परगना वतन के रूप में वंशपरम्परागत दे दिया गया और उसके मनसब के अनुरूप आमदनी पूरी करने को रतलाम के आसपास के कुछ और भी परगने उसे जागीर के रूप में मिले। अपने युवा पुत्रों और मुख्य साथी-सैनिकों को ले कर रतनसिंह मई, १६५६ ई० में ही रतलाम चला आया। परन्तु अपने इस नए वतन की ठीक व्यवस्था होने के बाद ही सन् १६५८ ई० के प्रारम्भ में उसने अपनी रानियों तथा अन्य रहे-सहे कुटुम्बियों आदि को जालोर से रतलाम बुलवाया।

उस समय शाहज़ादा औरंगज़ेब दक्षिणी मुगल सूबों का सूबेदार था। दिसम्बर, १६५६ ई० में उसे बीजापुर पर चढ़ाई करने का आदेश दिया गया तथा उसकी सहायतार्थ एक बड़ी शाही सेना दक्षिण भेजी गई। आदेशानुसार दक्षिण पहुँच कर रतनसिंह भी फरवरी, १६५७ ई० के लगभग उसमें सम्मिलित हो गया। शाही सेना ने मार्च, १६५७ ई० में बीदर पर और अगस्त १, १६५७ ई० को कल्याणी पर अधिकार कर लिया। बीजापुरियों के विरुद्ध अच्छा परिश्रम करने के उपलक्ष्य में रतनसिंह के मनसब में चार सौ सवार बढ़ा कर उसका मनसब दो हज़ारी ज़ात—दो हज़ार सवारों का कर दिया गया।

परन्तु इधर कुछ महीनों से मुग़ल साम्राज्य के भाग्याकाश में विद्रोह और गृह-कलह के घने बादल घिरने लगे थे। सन् १६५७ ई० की गरमी के दिनों से ही बूढ़े मुगल सम्राट् शाहजहाँ का स्वास्थ्य बहुत गिरने लगा था। आदिलशाह के साथ सन्धि कर लेने का शाही आदेश जुलाई, १६५७ ई० में औरंगज़ेब को मिला। कुछ समय बाद दिल्ली से प्राप्त शाही फरमानों के अनुसार महाबत खाँ, राव शत्रुभाल हाड़ा आदि सेनानायक बीजापुर की चढ़ाई के लिए दक्षिण भेजी गई सारी शाही सेना को ले कर सितम्बर, १६५७ ई० के लगभग औरंगज़ेब की आज्ञा लिए बिना ही उत्तरी भारत के लिए रवाना हो गए। रतनसिंह भी उन्हीं के साथ दक्षिण से चल दिया तथा दिसम्बर २०, १६५७ ई० को सब के साथ आगरा

शाही दरबार में उपस्थित हुआ।

सितम्बर ६, १६५७ ई० को शाहजहाँ दिल्ली में सख्त बीमार पड़ गया था और एक सप्ताह तक दरबार में नहीं दिखाई देने के कारण उसकी मृत्यु की झूठी खबर सब दूर फैल गई और अधिकाधिक विकृत रूप में यह समाचार सुदूर प्रान्तों में भी जा पहुँचा। अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए शाहजादा दारा शिकोह ने बाहर जाने वाले समाचारों पर पूरी पाबन्दियाँ लगा दी थीं, जिनका परिणाम पूर्णतया विपरीत ही हुआ। शाही दर-बार से आने वाले सच्चे समाचारों पर भी अब कोई विश्वास नहीं करता था। शाहजहाँ को सचमुच मृत जान कर मुग़ल राज्य-सिंहासन के लिए निकट भविष्य में होने वाले गृह-युद्ध की अनिवार्य सम्भावना के कारण सर्वत्र भय, आशंका और अस्थिरता की भावना उत्पन्न हो गई, एवं सारे साम्राज्य में अशान्ति और अराजकता उमड़ने लगी।

सुदूर प्रान्तों में नियुक्त तीनों ही शाहजादे मुग़ल राज्य-सिंहासन के लिए युद्ध की पूरी-पूरी तैयारी करने लगे। मुराद ने नवम्बर २०, १६५७ ई० को अहमदाबाद में स्वयं को बादशाह घोषित किया। कुछ सप्ताह बाद बंगाल में शाहजादा शुजा भी सिंहासनारूढ़ हुआ और अपनी सुसज्जित सेना ले कर बिहार की ओर बढ़ा। औरंगजेब भी दक्षिण में अपनी आवश्यक तैयारी में लगा हुआ था। ऐसी स्थिति में विवश हो कर अपने इन विद्रोही छोटे शाहजादों का सामना करने के लिए शाही सेनाएँ भेजने की आज्ञा शाहजहाँ ने दी। शायस्ता खाँ के स्थान पर जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया गया। उधर आम्बेर के मिर्ज़ा राजा जयसिंह की देख-रेख में शाहज़ादे सुलेमान शिकोह के साथ एक बड़ी सेना पूर्व की ओर शाहजादा शुजा के विरुद्ध दिसम्बर, १६५७ ई० के अन्तिम सप्ताह में भेजी गई।

महाराजा जसवन्तसिंह एक बड़ी शाही सेना लेकर दिसम्बर १८, १६५७ ई० को आगरा से मालवा के लिए रवाना हुआ। आठ दिन बाद शाहजादा मुराद के स्थान पर कासिम खाँ गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया और दिसम्बर २६ को कासिम खाँ भी एक बड़ी सेना लेकर मालवा की राह गुजरात के लिए आगरा से चल पड़ा।

रतनसिंह एक अनुभवी योद्धा था, वह महाराजा जसवंतसिंह का चचेरा भाई होता था, एवं उसका वतन तथा जागीर भी मालवा में थे। इसलिए जब वह बीजापुर की चढ़ाई से लौट कर आगरा पहुँचा तब उसकी भी नियुक्ति महाराजा जसवंतसिंह की सेना के साथ कर दी गई और मालवा लौटने के लिए जल्दी ही उसे विदा कर दिया गया। आगरा से रवाना हो कर रतनसिंह सीधा रतलाम पहुँचा, वहाँ अपने वतन और जागीर की उचित व्यवस्था की एवं उसका शासन-प्रबन्ध अपने ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह को सौंप दिया। अप्रैल, १६५८ ई० के प्रारम्भ में रतनसिंह को महाराजा जसवंतसिंह का भी सन्देश मिला एवं वह जल्दी ही ससैन्य उज्जैन के लिए रवाना हो गया। उसका दूसरा पुत्र, रायसिंह, जिसकी वय इस समय १६-१७ वर्ष से अधिक की नहीं थी, हठ करके रतनसिंह के साथ ही उज्जैन के लिए रवाना हुआ।

महाराजा जसवंतसिंह जनवरी २७, १६५८ ई० को ही उज्जैन पहुँच गया था और वहीं से शाहजादों की गति-विधि का पता लगाने का कुछ-कुछ प्रयत्न करता रहा। तथापि

अप्रैल ३ को जब औरंगज़ेब नर्मदा पार कर मालवा में घुस आया तब ही जा कर जसवंतसिंह को उसकी सेना सम्बन्धी कोई समाचार प्राप्त हो सके। मार्च २०, १६५८ ई० को बुरहानपुर से रवाना हो कर औरंगज़ेब ने अकबरपुर के पास नर्मदा नदी पार की और माण्डू के किले के पास की घाटी से चढ़ कर धार होता हुआ वह देपालपुर की ओर बढ़ा। उधर अहमदाबाद से रवाना हो कर अप्रैल १४ को मुराद भी देपालपुर के पास आ पहुँचा था। अप्रैल १५ को देपालपुर के तालाब के पास ही औरंगज़ेब और मुराद की सेनाएँ सम्मिलित हो गई, और तब पूर्ण उत्साह और तत्परता के साथ दोनों शाहज़ादे ससैन्य उज्जैन की ओर बढ़े।

इधर कुछ दिन पहिले औरंगज़ेब के ब्राह्मण दूत कविराय ने उज्जैन पहुँच कर जसवंतसिंह को औरंगज़ेब का सन्देश सुनाया और शाहजादों की राह न रोकने का आग्रह किया; परन्तु जसवंतसिंह ने यह सलाह नहीं मानी एवं औरंगज़ेब का प्रस्ताव ठुकरा दिया। अन्त में जसवंतसिंह सारी शाही सेना ले कर औरंगज़ेब की राह रोकने के लिए अप्रैल १३ को उज्जैन से निकला। गुजरात का नया सूबेदार कासिम खाँ भी अपनी शाही सेना ले कर जसवंतसिंह के साथ चला। उज्जैन से कोई १४ मील दक्षिण-पश्चिम में गम्भीर नदी के पूर्वी तट पर स्थित धरमत गाँव के सामने सारी शाही सेना के साथ जसवंतसिंह ने पड़ाव डाला। अप्रैल १५ को संध्या होते-होते शत्रु सेनाएँ भी आ पहुँची और उन्होंने भी गम्भीर के पूर्वी तट पर धरमत के पास ही डेरा डाला। औरंगज़ेब ने अगले दिन जसवंतसिंह के साथ युद्ध करने का निश्चय किया।

दोनों शाहज़ादों को युद्ध के लिए कृत-निश्चय जान कर जसवंतसिंह पुनः किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होने लगा, क्योंकि आगरा से रवाना होते समय शाहजहाँ ने उससे विशेष रूप से आग्रह किया था कि जहाँ तक हो सके वह शाहज़ादों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचावे और सर्वथा अनिवार्य हो जाने पर ही उनके साथ युद्ध करे। आसकरण नींबावत ने आधी रात के समय आक्रमण कर शत्रु सेना की सारी तोपें छीन लेने का प्रस्ताव किया, परन्तु क्षत्रिय-सुलभ सरलता के साथ इसे धर्म-युद्ध के विपरीत घोषित कर जसवंतसिंह ने उसे अस्वीकार्य समझा। युद्ध के दिन भी प्रातःकाल में समझौते के लिए दोनों ओर से विफल प्रयत्न किये गए।

अन्त में शुक्रवार, अप्रैल १६, १६५८ ई० के दिन सूर्योदय से कोई दो घण्टे बाद तोपों की गड़गड़ाहट और बन्दूकों के चलने के साथ ही युद्ध प्रारम्भ हो गया। शत्रु के तोपखाने पर आक्रमण करने के लिए मुकुन्दसिंह हाड़ा ने अपने भाइयों को ले कर उस ओर घोड़े दौड़ा दिए। दयालदास झाला, अर्जुन गौड़ और सुजानसिंह सिसोदिया ने भी अपने सवारों को साथ ले कर मुकुन्दसिंह हाड़ा का साथ दिया। रतनसिंह इस हमले में उनके साथ नहीं था; वह जसवंतसिंह के साथ ही बना रहा।

मुकुन्द हाड़ा आदि राजपूत सेनानायकों के नेतृत्व में राजपूत घुड़सवारों का यह दल तोपखाने पर टूट पड़ा, तोपचियों के छक्के छुड़ा दिए और तोपों की पंक्तियों में होता हुआ शत्रु-सेना में हरोल के सामने के दल पर टूट पड़ा। राजपूतों का यह आक्रमण किसी भी प्रकार नहीं रोका जा सका और आगे बढ़ते हुए वे हरोल में जा घुसे, जहाँ बड़ी घमा-

रतनसिंह का युद्ध एक प्रकार से जसवंतसिंह का पीछा नहीं करने देने के लिए किया गया पृष्ठानीक युद्ध ही था। प्राणों का मोह छोड़ कर रतनसिंह एवं उसके सारे साथी सेनानायक और सैनिक अलौकिक वीरता तथा अद्वितीय साहस के साथ शत्रुओं पर टूट पड़े। एक-एक कर उसके वीर साथी सेनानी कट-कट कर गिरने लगे। रतनसिंह के कई घोड़े बारी-बारी से घायल हो कर गिरे, परन्तु हर बार वह किसी दूसरे घोड़े पर सवार हो कर पुनः युद्ध में जुट गया। अन्त में घावों से जर्जरित हो कर रतनसिंह भी गिर पड़ा। युद्ध का अन्त हो गया। शाही सेना पहले ही मर-कटी थी या तितर-बितर हो गई थी। अब रतनसिंह और उसके साथियों के मरते ही कोई विरोध नहीं रह गया था। औरंगजेब और मुराद ने विजय के नक्कारे बजाए। इस विजय के स्मारक-स्वरूप फतेहाबाद नामक नए कस्बे के बसाने का आदेश दिया गया जिससे धरमत गांव के पास ही वर्तमान फतेहाबाद कस्बे की नींव पड़ी।

यों धरमत के इस ऐतिहासिक युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ रतनसिंह खेत रहा। इस युद्ध में उसे छब्बीस तीर लगे थे और सारे शरीर पर तलवार के कोई अस्सी घाव भी लगे थे। इन्हीं सबसे जर्जरित और लोहू-लुहान हो कर वह अचेत धरती पर गिरा। युद्ध समाप्त होने के कुछ ही समय बाद रतनसिंह की मृत्यु हो गई। यत्र-तत्र बिखरे हुए तीर और भालों को एकत्र कर वीरोचित चिता रची गई और युद्ध-क्षेत्र में जहाँ रतनसिंह धरती पर गिरा था, वहीं उसकी दाह-क्रिया की गई। उसकी अस्थियों और भस्म को उज्जैन के पुण्य तीर्थ पर क्षिप्रा में बहा दिया गया, एवं रतनसिंह के इस अपूर्व आत्मत्याग की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए रतनसिंह के उत्तराधिकारी रामसिंह ने रतनसिंह के दाह-स्थान पर एक पूजनीय स्मारक—एक चौंतरा बनवा दिया था। समय, आँधी, पानी और धूप की मार ने इस स्मारक को बहुत-कुछ तोड़-फोड़ डाला था, एवं रतनसिंह की मृत्यु के पूरे ढाई सौ वर्ष बाद रतनसिंह के वंशजों ने उस चौंतरे के स्थान पर श्वेत संगमरमर की एक नई सुन्दर भव्य छतरी बनवा दी।

मार्च, १६५८ ई० में उस दिन रतलाम से विदा ले कर गया हुआ रतनसिंह अपनी राजधानी को लौट कर नहीं आया। वहाँ से वापस आई केवल उसके सिर की रक्त-रंजित पाग। जालोर से रतलाम के लिए रवाना हो कर रतनसिंह की रानियाँ और उसके अन्य कुटुम्बी साथी तब तक रतलाम नहीं पहुँचे थे। एवं उस पाग को ले कर सांडनी-सवार रतनसिंह की रानियों के पास उसे पहुँचाने के लिए रवाना किया गया। रतलाम से उत्तर-पश्चिम दिशा में कोई २५ मील पर नीनोर (कोटड़ी) नामक स्थान पर रतनसिंह की रानियों ने अपने पति के खेत रहने के समाचार सुने। तब उन्होंने वहीं सती होने का निश्चय किया। नीनोर के तालाब की पाल पर मई १५, १६५८ ई० को रतनसिंह की चार रानियाँ और तीन उपपत्नियाँ सती हुईं। इन सतियों का स्मारक एक चौंतरा, आज भी नीनोर (कोटड़ी) में विद्यमान है।
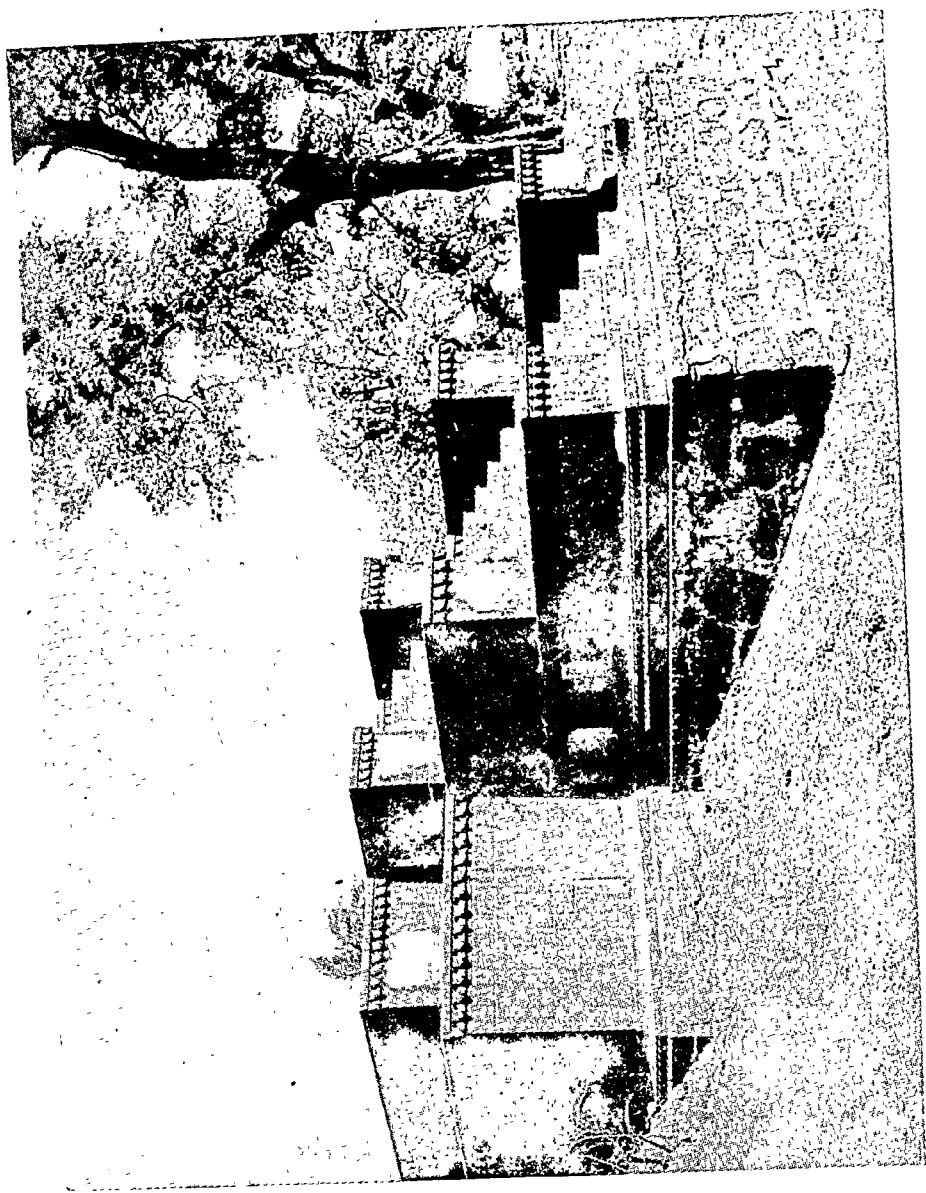
रतनसिंह की सतियों का स्मारक – नीनोर (कोठड़ी) के तालाव के किनारे

(८) 'वचनिका०' का ऐतिहासिक महत्त्व

जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह और मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ के विद्रोही पुत्र औरंगज़ेब एवं मुराद के बीच मालवा में उज्जैन से कोई १४ मील दक्षिण-पश्चिम में धरमत गाँव के पास शुक्रवार, १६ अप्रैल, १६५८ ई० को जो निर्णायक ऐतिहासिक युद्ध हुआ था, उसी को ले कर कवि खड़िया जगा ने अपने इस डिंगल ग्रन्थ वचनिका की रचना की थी। महाराजा जसवन्तसिंह की ओर से लड़ने वाले प्रमुख शाही सेनानायकों में रतलाम का शासक रतनसिंह राठौड़ भी था। साहसपूर्ण प्रारम्भिक आक्रमण, भयंकर मार-काट और पहर-भर से भी अधिक समय के घमासान युद्ध के बाद भी शाही सेना की हार को सर्वथा सुनिश्चित जान कर जब उसके साथी सेनानायकों ने जसवन्तसिंह को युद्ध-क्षेत्र छोड़ने के लिए विवश किया, तब उसने वहाँ बची-खुची युद्ध-रत शाही सेना का सेनापतित्व रतनसिंह को सौंपा। रतनसिंह निरन्तर वीरतापूर्वक लड़ता रहा और अन्त में वहीं खेत रहा। खड़िया जगा ने रतनसिंह के अलौकिक साहस, अद्वितीय वीरता एवं उसके गौरवपूर्ण चरम आत्म-त्याग का वर्णन कर इस वचनिका का नामकरण भी उसी के नाम से किया। डिंगल भाषा में लिखित यह वीर रस प्रधान ग्रन्थ तब बहुत ही लोकप्रिय हुआ था और उसकी हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ भी राजस्थान तथा मालवा के प्रायः सभी साहित्य-प्रेमी अथवा इतिहास-जिज्ञासु घरानों में पहुँच गई।

वंशपरम्परागत जन-अनुश्रुति के अनुसार इस वचनिका का रचयिता कवि खड़िया जगा रतनसिंह के ही दरबार का राजकवि था। रतनसिंह के साथ ही वह भी उज्जैन और धरमत गया था तथा वहाँ जसवन्तसिंह एवं रतनसिंह की सेना में जो कुछ भी हुआ उसे उसने देखा-सुना था। कहा जाता है कि युद्ध प्रारम्भ होने से पहिले ही कवि जगा को आदेश हुआ था कि वह उस युद्ध में भाग न ले, जिससे कि युद्ध के बाद भी जीवित रह कर वह उस युद्ध में दिखाए गए अपने वीर स्वामी के शौर्य और साहस का ठीक-ठीक विवरण लिख सके। यों किम्वदन्ती के आधार पर यह माना जाता है कि कवि जगा ने उस दिन वह सारा युद्ध अपनी आँखों से देखा था तथा वहाँ से प्राप्त अपनी निजी जानकारी के आधार पर ही उसका पूरा विवरण अपनी इस वचनिका में लिखा था। यह बात तो तेस्सितोरी भी मानता है कि इस काव्य की रचना युद्ध के कुछ ही काल बाद हुई होगी (वचनिका, इंट्रोडक्शन, पृ० १-२)। अतएव इस वचनिका में खड़िया जगा ने धरमत के इस निर्णायक युद्ध का जो विवरण दिया है उसका अपना विशेष ऐतिहासिक महत्त्व है। इस युद्ध-सम्बन्धी प्राथमिक ऐतिहासिक महत्त्व की जो भी आधार-सामग्री अब तक प्राप्य हो सकी है उसमें जो बहुत बड़ी कमी रह जाती है उसको यह वचनिका कई अंशों तक पूरा करती है।

फ़ारसी में लिखे गए सारे प्राप्य महत्त्वपूर्ण आधार-ग्रन्थों में प्रधानतया इस युद्ध के विजेता और बाद में राज्यारूढ़ मुग़ल सम्राट औरंगजेब की ही तरफ से युद्ध का हाल लिखा है। विजेता का दृष्टिकोण और उस ओर से प्राप्त सामग्री या जानकारी ही इन लेखकों के आधार बन गए। 'आलमगीर-नामा', 'आमल-इ-सालिह' एवं 'ज़फ़रनामा-इ-आलमगीरी' में दिए गए विवरण मुख्यतया मुग़ल साम्राज्य के राजकीय कागज़-पत्रों के आधार पर लिखे गए थे। मीर मुहम्मद मासूम ने अपना पूरा समय बंगाल में ही बिताया था एवं धरमत के युद्ध-सम्बन्धी उस समय प्रचलित अन्य विवरणों का बंगाल तक पहुँचना सम्भव नहीं था कि उन्हें 'तारीख़-इ-शाहशुजाई' में स्थान मिल पाता। जसवन्तसिंह ने इस युद्ध में जो वीरता दिखाई और जो-कुछ भी उसने वहाँ किया, ईश्वरदास नागर ने उसका उल्लेख अपने ग्रन्थ 'फ़तूहात-इ-आलमगीरी' में विशेष रूप से किया है। परन्तु उसने यह विवरण इस युद्ध के कोई चालीस-पचास वर्ष बाद लिखा था, एवं उसे जसवन्तसिंह के सब ही प्रमुख राजपूत सेनापतियों के बारे में विशेष जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी होगी; उसने केवल मुकुन्दसिंह हाड़ा की वीरता एवं उसके मारे जाने का ही उल्लेख किया है।

धरमत के युद्ध से पहिले जसवन्तसिंह के शिविर में क्या-क्या हुआ ? युद्ध के समय जसवन्तसिंह की सेना में कौन-कौन-सी घटनाएँ घटीं ? जब जसवन्तसिंह को युद्ध छोड़ने को विवश किया गया, तब जसवन्तसिंह के अधीन शाही सेना का नेतृत्व किसने सँभाला ? आदि प्रश्नों का उत्तर हमें किसी भी फारसी ऐतिहासिक आधार-ग्रन्थ में नहीं मिलता है। इस-लिए इन प्रश्नों पर प्रकाश डालने के हेतु अन्य भाषाओं में प्राप्य ऐतिहासिक सामग्री की खोज तथा उसकी पूरी-पूरी जांच-पड़ताल अत्यावश्यक हो जाती है।

यह सत्य है कि राठौड़ों के अतिरिक्त गहलोत, हाड़ा गौड़ आदि विभिन्न कुलों के भी कई वीर योद्धाओं ने इस युद्ध में भाग लिया, और प्रायः सारे रजवाड़ों तथा सब महत्त्वपूर्ण राजघरानों के वीर इस युद्ध में काम आए, तथापि यह युद्ध प्रधानतया राठौड़ों का ही गिना गया जिससे अन्य राजपूत घरानों की ख्यातों आदि में इस युद्ध की विशेष चर्चा नहीं पाई जाती है।

पुनः यद्यपि जसवन्तसिंह इस शाही-सेना का प्रधान सेनापति था और उसने इस युद्ध में शत्रुओं का वीरोचित साहस तथा दृढ़ता के साथ सामना किया था, तथापि अन्ततः युद्ध में हार कर उसे युद्ध-क्षेत्र से जीवित ही लौटना पड़ा था। अतः जोधपुर के सुप्रसिद्ध रणबंका राठौड़ राजघराने के इतिहास को कलंकित करने वाली इस घटना विशेष वाले इस युद्ध का विस्तृत विवरण न तो जोधपुर राज्य की ख्यातों में मिलता है और न जोधपुर के राजघराने सम्बन्धी काव्य-ग्रन्थों में ही।

किन्तु इस युद्ध में मर कर रतनसिंह राठौड़ ने अमरत्व प्राप्त किया। उसके साहस, उसकी वीरता तथा युद्ध-क्षेत्र में लड़ते हुए खेत रहने के कारण रतनसिंह राजपूत वीरों के लिए पूजनीय आदर्श बन गया। उसके शौर्य्य, मर-मिटने की साधना और उत्कट अडिग राजभक्ति ने कवियों को अत्यधिक आकर्षित किया, एवं उन्होंने रतनसिंह की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए इस युद्ध के विशद विवरणपूर्ण काव्य-ग्रन्थों की रचना की। ऐसे काव्य-ग्रन्थों में खड़िया जगा कृत वचनिका अधिक प्रामाणिक एवं सर्वथा समकालीन होने

के कारण सब से महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है। जसवन्तसिंह की सेना में होने वाली घटनाओं का पर्याप्त विवरण हमें वचनिका में मिलता है और यों फारसी ऐतिहासिक ग्रन्थों की उस बड़ी कमी को कई अंशों में यह वचनिका पूरा करती है।

विभिन्न महत्त्वपूर्ण इतिहास-ग्रंथों में धरमत के इस युद्ध के जो भी विवरण अब तक लिखे गए हैं, उनमें अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिस्ट्री आफ औरंगज़ेब' में डा० यदुनाथ सरकार द्वारा लिखित वृत्तान्त सब से अधिक प्रामाणिक कहा जा सकता है। सारे प्राप्य फारसी ऐतिहासिक आधार-ग्रन्थों की पूरी-पूरी छान-बीन कर उन्हीं के आधार पर उन्होंने यह विवरण लिखा था। इस ग्रन्थ की दूसरी जिल्द, जिसमें कि धरमत के युद्ध का वृत्तान्त पाया जाता है, पहली बार सन् १९१२ ई० में प्रकाशित हुई थी। तब उन्हें वचनिका प्राप्य नहीं थी। सन् १९१७ ई० में बंगाल एशियाटिक सोसायटी ने तेस्सितोरी द्वारा सम्पादित वचनिका का मूल ग्रन्थ प्रकाशित किया था। परन्तु यों प्रकाशित होने पर भी भाषा की दुरूहता के कारण डिंगल भाषा से अनभिज्ञ विद्वानों के लिए यह वचनिका तब भी दुष्प्राप्य ही रही और सन् १९२५ ई० में 'हिस्ट्री आफ औरंगज़ेब' की प्रथम दो जिल्दों का संशोधित संयुक्त संस्करण तैयार करते समय भी वचनिका में वर्णित घटनाओं की अत्यावश्यक जाँच-पड़ताल नहीं की जा सकी थी।

यदि वचनिका में दिये गए युद्ध-विवरण की सयत्न ब्योरेवार जाँच-पड़ताल की जावे तो अनेकानेक छोटी-मोटी बातों में यह वृत्तान्त डा० यदुनाथ सरकार द्वारा मान्य प्रामाणिक विवरण से विभिन्न देख पड़ेगा। किन्तु इन दोनों विवरणों में विभिन्नता मुख्यतया दो विशेष बातों में ही पाई जाती है। प्रथमतः जहाँ वचनिका के अनुसार रतनसिंह की मृत्यु सब के बाद में एवं जसवन्तसिंह के युद्ध-क्षेत्र छोड़ने के अनन्तर कुछ समय बाद ही हुई थी, वहाँ डा० यदुनाथ सरकार के मतानुसार रतनसिंह भी मुकुन्दसिंह हाड़ा आदि राजपूत घुड़सवारों के पहले हमले के समय ही मारा गया था (औरंग०, १-२, पृ० ३६०, ३६३)। दूसरे, वचनिका के अनुसार युद्ध-क्षेत्र छोड़ते समय जसवन्तसिंह ने तब भी वहाँ लड़ रही बाकी शाही सेना के संचालन का भार रतनसिंह को सौंपा था, तथा जसवन्तसिंह के युद्ध-क्षेत्र छोड़ने के बाद भी कुछ समय तक रतनसिंह और उसके साथी सेनानायक वीरता-पूर्वक विद्रोही शाहज़ादों की सेना का सामना करते रहे। डा० यदुनाथ सरकार के मता-नुसार रतनसिंह की मृत्यु प्रारम्भिक हमले में ही हो गई थी। अतः उसको सेना-संचालन का भार तब सौंपने की बात उठती कैसे। जसवन्तसिंह के युद्ध-क्षेत्र छोड़ने के बाद, डा० यदुनाथ सरकार के मतानुसार "शाही सेना के बाकी रहे विरोध का भी अन्त हो गया। शाही सेना के जो बचे-खुचे दल अब तक शाहज़ादों की सेना का सामना कर रहे थे, वे भी अब युद्ध-क्षेत्र छोड़ कर भाग खड़े हुए। राजपूत सैनिक अपने-अपने घरों को लौट गए और मुसलमान सैनिकों ने आगरा की राह ली।" (औरंग० १-२, पृ० ३६६)।

अतः यह बात विशेषरूपेण विचारणीय है कि इन दोनों विवादपूर्ण विषयों-सम्बन्धी जो भिन्न वर्णन वचनिका में पाया जाता है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से कहाँ तक मान्य और विश्वसनीय कहा जा सकता है। रतनसिंह की मृत्यु कब हुई थी इस विषय की कुछ जान-कारी एकमात्र 'आलमगीर-नामा' में मिलती है। पहिले हरोल में नियुक्त सरदारों में

रतनसिंह का नाम दिया है और आगे मुकुन्दसिंह हाड़ा के साथ घुड़सवारों के हमले में वीर-गति प्राप्त करने वाले सेनानायकों की सूची में रतनसिंह का भी उल्लेख है (आ० ना०, पृ० ६४)। इन्हीं उल्लेखों के आधार पर ही डा० यदुनाथ सरकार ने प्रारम्भिक हमले में मुकुन्दसिंह हाड़ा के साथ रतनसिंह के भी मारे जाने की बात लिखी है। अतः प्रश्न उठता है कि रतनसिंह के मृत्यु-समय को निश्चित करने में किसे अधिक विश्वसनीय समझा जावे 'आलमगीर-नामा' को या वचनिका को। युद्ध की प्रधान हलचलों, विशिष्ट सेनानायकों अथवा प्रमुख योद्धाओं के कारनामों तथा युद्ध में मारे गए महत्त्वपूर्ण विरोधी सेनानायकों की ठीक-ठीक सूची औरंगज़ेब तथा उसके पक्षवालों को ज्ञात हो गई होगी परन्तु प्रत्येक विरोधी सेनानायक के व्यक्तिगत कारनामों का ठीक-ठीक एवं पूरा विवरण उनमें से किसी को साधारणतया ज्ञात हो सका होगा यह कठिन ही जान पड़ता है। अतएव किसी भी विरोधी सेनानायक सम्बन्धी व्यक्तिगत घटनाक्रम को निश्चित करने में 'आलमगीर-नामा' में दिये गए संक्षिप्त उल्लेख को सर्वथा निर्विवाद स्वीकार नहीं किया जा सकता है। पुनः वचनिका में दिया हुआ तत्सम्बन्धी विवरण किसी प्रकार अनहोना या पूर्णतया अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता है।

दूसरा प्रश्न यह है कि जसवंतसिंह के युद्ध-क्षेत्र छोड़ने के बाद भी क्या युद्ध कुछ समय तक चलता रहा था। इस विषयक कुछ-कुछ जानकारी केवल दो फारसी आधार-ग्रंथों में ही मिलती है। 'ज़फ़रनामा-इ-आलमगीरी' के अनुसार जसवंतसिंह के युद्ध-क्षेत्र छोड़ने के बाद बाकी रही शाही सेना तितर-बितर हो गई और इन भागने वालों के साथ औरंगज़ेब की सेना की लड़ाई हुई जिसमें कई शाही सैनिक मारे गए (ज़फ़र०, पृ० ३१-२)। 'आमल-इ-सालिह' में युद्ध की अन्तिम घड़ियों में शाही सेना के दो दल हो जाने का उल्लेख है। ये दोनों दल युद्ध-क्षेत्र के तंग दर्रे में घिर गए और वहाँ लड़ते रहे। अन्त में जसवंतसिंह युद्ध-क्षेत्र छोड़ कर रवाना हो गया और औरंगज़ेब ने कुछ मीलों तक उसका पीछा भी किया (कम्बू०, ३, पृ० २८७)। एक दल के इस प्रकार चले जाने के बाद दूसरे दल का क्या हुआ इसका वहाँ कोई भी उल्लेख नहीं है। तथापि यह तो स्पष्ट है कि जसवंतसिंह के युद्ध-क्षेत्र से रवाना होने के बाद भी कुछ समय तक तो अवश्य ही वहाँ बहुत-कुछ मार-काट होती रही होगी। डा० यदुनाथ सरकार ने भी शाहज़ादों की सेना का तब भी सामना करते रहने वाले शाही सेना के बचे-खुचे दलों का उल्लेख किया है (औरंग०, १-२, पृ० ३६६)। किन्तु युद्ध की अन्तिम घड़ियों में शाही सेना के प्रधान सेनापति जसवंतसिंह तथा कासिम ख़ाँ का युद्ध-क्षेत्र छोड़ना ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घटना थी। उसके बाद भी शाही सेना के कौन वीर सेनानायक शाहज़ादों का सामना करते रहे तथा उन्होंने क्या-क्या वीरता दिखाई ये सभी बातें मुग़ल साम्राज्य के इतिहासकारों तथा औरंगज़ेब के शासन-काल और उसकी सफलताओं का विवरण लिखने वालों के लिए सर्वथा गौण और महत्त्व-हीन थीं, एवं फारसी आधार-ग्रंथों में रतनसिंह राठौड़ तथा उसके सेनानायक साथियों के वीरतापूर्ण अन्तिम युद्ध का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। प्रत्युत वचनिका में वर्णित यह अन्तिम युद्ध पूर्णतया असंभावित घटना नहीं ज्ञात होता है।

पुनः जसवन्तसिंह जिस समय युद्ध-क्षेत्र से रवाना हुआ, तब तक मुकन्दसिंह हाड़ा

मारा जा चुका था. और कासिम खाँ, जो पहले से ही युद्ध से किनारा काट रहा था, इस समय युद्ध-क्षेत्र से रवाना होने को तत्पर था, एवं शाही मनसबदारों में तब बच रहे सर्वोच्च सेनानायक रतनसिंह को युद्ध-क्षेत्र में लड़ रही बाकी शाही सेना का भार सौंपना स्वाभाविक ही नही सर्वथा न्याय-सम्मत भी था। अतएव वचनिका में वर्णित इस घटना के इस मूल तथ्य को सर्वथा अमान्य नही किया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में विशेषरूपेण उल्लेखनीय बात यह भी है कि इन सब ही बातों विषयक जो-जो विवरण वचनिका मे मिलते है उनका बहुत-कुछ समर्थन कवि कुम्भकर्ण रचित 'रतन-रासो'[1] नामक राजस्थानी मिश्रित पिंगल वीर-काव्य में दिये गए धरमत युद्ध के वर्णन से भी होता है। कुम्भकर्ण स्वयं मालवा निवासी था और रतनसिंह के राजघराने एवं रतनसिंह के उत्तराधिकारियों के साथ कुम्भकर्ण का बहुत अधिक सम्बन्ध रहा था, जिससे इस युद्ध विषयक सारी बातों की पूरी-पूरी प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने में उसे किसी प्रकार की कोई कठिनाई नही हुई होगी। रतनसिंह की मृत्यु के कोई २० वर्ष बाद इस काव्य की रचना उज्जैन में हुई थी। इस काव्य के पिछले तृतीयांश से भी अधिक भाग में कवि कुम्भकर्ण ने मुगल राज्य-सिंहासन के लिए होने वाले इस गृह-युद्ध के प्रारम्भ एवं धरमत के इस ऐतिहासिक युद्ध का सविस्तार वृत्तान्त लिखते हुए रतनसिंह के वहाँ वीरता-पूर्वक अन्त तक लड़ते-लड़ते खेत रहने का भी पूरा-पूरा वर्णन किया है। यों वचनिका के समान यह 'रतन-रासो' भी इस युद्ध के लिए तो अवश्य ही प्राथमिक महत्त्व का ऐतिहासिक आधार-ग्रन्थ है।

अतएव इस सारे विचार-विमर्श के बाद यह बात निश्चित रूपेण स्पष्ट हो जाती है कि धरमत के इस युद्ध के लिए तो वचनिका निर्विवाद रूप से एक महत्त्वपूर्ण प्राथमिक आधार-ग्रन्थ है जिसकी यत्किंचित् भी उपेक्षा करना किसी भी सच्चे इतिहासकार के लिए न सम्भव है और न किसी प्रकार उचित ही समझा जायगा। इसी कारण 'रतलाम का प्रथम राज्य' मे धरमत के युद्ध का विवरण लिखते समय वचनिका में वर्णित इन सारी घटनाओं के ऐतिहासिक तथ्यों का यथा-स्थान समावेश कर उसे सर्वथा प्रामाणिक एवं सम्पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया था। पुनः डा० यदुनाथ सरकार कृत 'ए शार्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब' का संशोधित संक्षिप्त हिन्दी संस्करण 'औरंगजेब' जब तैयार हो रहा था तब 'वचनिका और 'रतन-रासो' मे दिये गए धरमत के युद्ध के समकालीन विवरणों की ओर डा० यदुनाथ सरकार का ध्यान आकर्षित किया गया था। तब उन्होंने भी स्वीकार किया कि इन दोनों ग्रन्थों में दी गई बातों के आधार पर उनके पहिले के विवरण में यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन किया जाना आवश्यक हो गया था। अतः उनके ग्रन्थ के उक्त हिन्दी संस्करण में डा० यदुनाथ सरकार द्वारा मान्य धरमत के युद्ध का जो संशोधित विवरण छपा है उसमें अवश्य ही वचनिका आदि में वर्णित आधार पर कुछ अत्यावश्यक परिवर्तन कर दिए गए है। [औरंगजेब (हिन्दी), पृ० ७८-९ फुटनोट]। अब अन्य इतिहासकारों द्वारा भी इन संशोधनो के सर्वमान्य होने में

---

१. 'रतन-रासो' अब तक छप कर प्रकाशित नहीं हुआ है। भावार्थ एवं अत्यावश्यक टिप्पणियों सहित इसका एक सुसम्पादित संस्करण तैयार किया जा रहा है जो शीघ्र ही प्रकाशित किया जायगा।

वचनिका के भावार्थ आदि सहित इस नए संस्करण का प्रकाशन अवश्य ही बहुत सहायक होगा।

धरमत के युद्ध का एक समकालीन प्रामाणिक पूरक विवरण प्रस्तुत करने के अतिरिक्त भी वचनिका द्वारा कई एक महत्त्वपूर्ण बातों पर सर्वथा नया प्रकाश पड़ता है। शाही राजदरबार से सम्बद्ध उस समय के उच्चवर्गीय राजपूत समाज के संगठन, रहन-सहन, आचार-विचार, विश्वासों और रुचि आदि विषयक बहुत-सी उपयोगी जानकारी इस वचनिका में सर्वत्र बिखरी पड़ी है। पुनः वचनिका से उस समय साधारणतया प्रचलित एवं इस युद्ध में भी प्रयुक्त युद्ध-प्रणाली का बहुत-कुछ पता लगता है। यद्यपि शाहजादों की सेना के साथ तोपखाना भी था और उसकी गोलाबारी अन्ततः इस युद्ध में निर्णायक ही प्रमाणित हुई तो भी साधारणतया युद्ध तलवारों और तीरों से ही लड़ा जाता था। हाथी तब भी युद्ध में उपयोगी समझे जाते थे। फिर भी यह युद्ध प्रधानतया घुड़सवारों द्वारा ही लड़ा गया था। इस युद्ध में लड़ने वाले या वहाँ खेत रहे योद्धाओं तथा सेनानायकों का उल्लेख करते हुए खड़िया जगा ने यत्र-तत्र उनके बारे में जो-कुछ भी लिखा है उससे भी उन या उनके घरानों सम्बन्धी कई एक छोटी-मोटी बातें ज्ञात होती हैं जिनसे तद्विषयक ऐतिहासिक ज्ञान अधिक समृद्ध ही होगा।

(६) सम्पादन-सम्बन्धी

वचनिका का पहला सम्पादन आज से ४५ वर्ष पूर्व डिंगल साहित्य के अपूर्व भक्त और पारखी इटली-निवासी विद्वान् डा० तेस्सितोरी ने किया था। उसे बीकानेर, उदयपुर, जोधपुर, मालवा आदि के पुस्तकालयों में वचनिका की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ देखने को मिली थीं। उन में से अधिक प्राचीन और प्रामाणिक तेरह प्रतियों का संग्रह कर के उन के आधार पर उस ने वचनिका का सम्पादन किया था। उस में भूमिका, प्रामाणिक पाठ और अन्य पाठान्तरों के साथ-साथ तेस्सितोरी ने व्याकरण के विशिष्ट प्रयोगों का परिचय कराने के लिए छन्द-क्रम से कुछ टिप्पणियाँ भी लिखी थीं और अन्त में डिंगल के विशिष्ट शब्दों की एक सूची भी सम्मिलित की थी, जिन में प्राय: सभी व्यक्ति-वाचक नामों को उद्धृत किया गया था। व्याकरण-सम्बन्धी टिप्पणियों में उस ने डिंगल के अन्य ग्रन्थों में प्राप्त होने वाले मिलते-जुलते प्रयोगों के साथ वचनिका के प्रयोगों की तुलना भी की थी। तेस्सितोरी का विचार था कि वचनिका का एक और खण्ड निकाला जाये जिस में पूरे पाठ का अंग्रेजी में अनुवाद हो, वचनिका की भाषा का पूरा व्याकरण हो और ऐतिहासिक विवेचन हो।

दुर्भाग्य से डा० तेस्सितोरी की असामयिक मृत्यु हो गयी और वचनिका का वह दूसरा खण्ड प्रकाश में न आ सका। फलत: इतिहास के विद्वानों और डिंगल से अपरिचित साहित्य-सेवियों के लिए वचनिका एक दुरूह रचना ही बनी रही। अब तो तेस्सितोरी द्वारा सम्पादित संस्करण की प्रतियाँ दुर्लभ होती जा रही हैं अत: वचनिका के एक ऐसे संस्करण की आवश्यकता थी जिस का साहित्य और इतिहास के अधिक-से-अधिक पाठक प्रयोग कर सकें और डिंगल के इस अद्भुत ग्रन्थ-रत्न से परिचित हो सकें। इसी को ध्यान में रख कर वचनिका का यह संस्करण प्रस्तुत किया गया है।

पहले तो हमारा विचार तेस्सितोरी के सम्पादित पाठ को ही पूर्णत: प्रामाणिक मान कर केवल हिन्दी अनुवाद और विशिष्ट शब्दों के अर्थ आदि दे देने का था परन्तु बीकानेर के श्री अगरचन्द नाहटा से चर्चा होने पर विदित हुआ कि वचनिका की कुछ ऐसी प्राचीन प्रतियाँ भी प्राप्य हैं जो तेस्सितोरी को सुलभ न हो पायी थीं और जिन के आधार पर वचनिका का अधिक प्रामाणिक सम्पादन किया जा सकता है। नाहटाजी से कुछ प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त भी हो गयीं। अधिक खोज करने पर एक प्रति बनेड़ा के श्री रविशंकर देराश्री के संग्रह से भी प्राप्त हुई और एक बीकानेर के खजांची-संग्रहालय से। इन प्रतियों की सहायता से वचनिका का एक बार पुन: सम्पादन करना ही आवश्यक समझा गया।

इस प्रकार सात हस्तलिखित प्रतियों और आठवीं तेस्सितोरी द्वारा सम्पादित और मुद्रित प्रति के आधार पर वचनिका का यह सम्पादन प्रस्तुत किया गया है। तेस्सितोरी द्वारा

प्रयुक्त सभी प्रतियों पर पुनः विचार करने की आवश्यकता न समझ कर केवल तेस्सितोरी द्वारा निर्धारित पाठ को ही प्रामाणिक माना गया है परन्तु उस ने उन प्रतियों के कुछ पाठ को अप्रामाणिक मान कर छोड़ दिया था और उस का उल्लेख केवल पाठान्तर के रूप में किया था। उस पाठ में साहित्यिक तत्त्व भी हैं और ऐतिहासिक सामग्री भी। अतः इस संस्करण में उस सामग्री को भी सर्वथा त्याज्य नहीं माना गया। हाँ, उसे पूर्णतः प्रामाणिक मानने के लिए अभी और अधिक शोध की आवश्यकता है और इस समय प्राप्त हुई प्रतियों से भी प्राचीन प्रतियाँ मिलने पर और उन प्रतियों में वह पाठ प्राप्त होने पर ही उसे प्रामाणिक माना जा सकेगा। अतः ऐसे पाठों को भी पाठान्तर के रूप में न दे कर दिया तो मूल पाठ के अन्तर्गत ही गया है पर उस की छन्द-संख्या क्रमागत नहीं रखी गयी है। ऐसे पाठ को [ ] कोष्ठकों के अन्तर्गत रखा गया है और उस की छन्द संख्या अलग से एक, दो, तीन आदि अंकित की गयी है। यदि बड़े छन्द के अन्तर्गत एक चरण मात्र रखा गया है तो चरण संख्या पृथक् नहीं दी गयी है केवल पाठ को [ ] कोष्ठकों के अन्तर्गत रखा गया है।

तेस्सितोरी ने पाठ-निर्धारण में नियम-पूर्वक 'य', 'व' श्रुतियों का बहिष्कार किया था और उन के स्थान पर शुद्ध स्वरों का प्रयोग किया था। तेस्सितोरी की धारणा थी कि वचनिका की रचना के समय तक य, व श्रुतियों का आगम डिंगल भाषा में न हो पाया था किन्तु धरमत के युद्ध से कोई २१ वर्ष बाद की प्रति में भी ये 'य-व' श्रुतियाँ पायी जाती हैं। अतः तेस्सितोरी की यह कल्पना कष्ट-साध्य ही प्रतीत हुई और शुद्ध स्वरों के स्थान पर य और व श्रुतियों के पाठ को ही प्रामाणिक मानना उचित समझा गया। पाठ का यह भेद वचनिका में आदि से अन्त तक है इस लिए उस का निर्देश पाठान्तरों में बार-बार कर के पाठान्तर का कलेवर नहीं बढ़ाया गया है।

छंदों का संख्यांकन भी तेस्सितोरी से भिन्न पद्धति से किया गया है। तेस्सितोरी ने भुजंगी, मोतीदाम आदि को चार चरणों का छंद मान कर छंद-संख्या दी है। पर सौती-साहित्य के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों को देखने से पता चलता है कि उस के लेखक छंद विशेष में एक साथ लिखे हुए सभी चरणों को मिला कर एक ही छंद मानते थे। इसी लिए ऐसे पाठों का प्रायः चार-चार चरणों में विभाजन भी नहीं हो सकता है। उदाहरणार्थ वचनिका के छंद सं० ४५ में ६४ और छंद संख्या ५८ में १५० चरण हैं। अतः दूहा, गाहा और कवित्त के अतिरिक्त सभी छंदों में चार चरणों की छंद-योजना नहीं की गयी और एक साथ आये सभी चरणों को एक ही छंद के चरण माना गया है। पाठान्तर ढूँढ़ने की सुविधा की दृष्टि से दो-दो चरणों के बाद उप-संख्या अवश्य दे दी गयी है।

तेस्सितोरी द्वारा सम्पादित प्रति और उस की टिप्पणियों को देखने पर पता चलता है कि तेस्सितोरी कुछ शब्दों के अर्थ को ठीक से समझ नहीं पाया था। उदाहरणार्थ—'छलि' डिंगल का चतुर्थी के अर्थ का सूचक प्रत्यय है परन्तु तेस्सितारी ने उस का अर्थ सर्वत्र 'युद्ध' किया है। 'वळि' शब्द का अर्थ तो 'भले ही' है परन्तु तेस्सितोरी ने 'वल' धातु के रूपों को भी यत्र-तत्र 'वळि' का ही पाठान्तर समझा है। जैसे—'वळे वंश छत्रीस साथै वडाला' में। यहाँ 'वळे' का अर्थ 'चले' है। इसी प्रकार तेस्सितोरी ने अन्त में जो शब्दावलि दी है उस की टिप्पणी में लिखा है कि उस शब्दावलि में सभी व्यक्ति-वाचक नाम सम्मिलित कर लिये गये

हैं। परन्तु छाडा, ढाँडा आदि नाम उस सूची में नहीं हैं जिस से पता चलता है कि तेस्सितोरी इन को नाम नहीं समझता था। इसी प्रकार 'तोग' का अर्थ समझने में तेस्सितोरी ने कष्ट-कल्पना की थी। उस ने इसे 'तेग' का भ्रष्ट रूप माना था जब कि वह मनसबदारी का एक विशेष चिह्न रहा है। ऐसे दोषों का निराकरण करने का यथा-शक्य यत्न किया गया है।

वचनिका के प्रस्तुत संस्करण में ग्रीक भाषा के श्रेण्य ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवादों की पद्धति को अपनाया गया है एवं बाएँ पृष्ठ पर मूल पाठ तथा दाहिने पृष्ठ पर उस का अनुवर्ती हिन्दी रूपान्तर रखा गया है। मूल पाठ के नीचे अन्य प्रतियों के पाठान्तर दिये गये हैं। उधर अनुवाद के नीचे ऐसे कठिन शब्दों के अर्थ दे दिये गये हैं जिन के बिना भाव पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाता। पाठान्तरों में जहाँ पाठ स्वीकृत पाठ से सर्वथा भिन्न हैं वहाँ स्वीकृत पाठ भी पाठान्तर के आगे [ ] में दे दिया गया है जिस से यह समझने में सरलता हो कि अमुक पाठान्तर किस पाठ के स्थान पर मिलता है। लुप्त पाठ को भी इसी [ ] के अन्तर्गत दिया गया है।

वचनिका के सम्पादन में सब से बड़ी कठिनाई थी अक्षरी की। राजस्थान के प्रति-लिपिकार और कवि भी ह्रस्व-दीर्घ के भेद का प्रायः बहुत कम ध्यान रखा करते थे और उस का निर्णय केवल छन्द की दृष्टि से ही किया जा सकता है। ह्रस्व ऎ और ह्रस्व ऒ की ध्वनियाँ डिंगल के समान हिन्दी की विविध बोलियों में भी विद्यमान हैं परन्तु उन के लिए देवनागरी में भी कोई लिपि-चिह्न नहीं है। इसी तरह छन्द-सुविधा के लिए यत्र-तत्र आ का भी ह्रस्व उच्चारण करना पड़ता है। यदि इन सब ह्रस्व रूपों के लिए लिपि में व्यवस्था न की जाये तो इन भाषाओं से अल्प परिचित लोगों के लिए वास्तविक उच्चारण जान सकना बहुत कठिन होगा। सब प्रकार के पाठकों का ध्यान रख कर इस संस्करण के लिए विशेष रूप से लिपि-चिह्नों की योजना की गयी। इस प्रकार ऎ, ऒ और आ के ह्रस्व रूप के लिए नये लिपि-चिह्न बनवाये गये। प्रतिलिपिकार प्रायः ल और ल़ में भी बहुत कम भेद करते आये हैं और अनुस्वार तथा चन्द्र-बिन्दु का भेद तो बहुत ही कम किया गया है। अतः इस संस्करण के मूल-पाठ में इस प्रकार के दोषों का निराकरण करने के लिए ल़ के लिए मराठी में प्रचलित विशिष्ट चिह्न को अपनाया गया है और अनुस्वार तथा चन्द्र-बिन्दु का भी पूरा भेद रखा गया है जिस से पाठक वास्तविक उच्चारण को समझ सकें। अनेक प्रतियों में ख ध्वनि के भी दो रूप मिलते हैं, एवं जहाँ वह संस्कृत के ष से उत्पन्न है वहाँ ष ही लिखा जाता है और जहाँ शुद्ध ख है वहाँ ख। हमने इस भेद को मिटा दिया है क्योंकि डिंगल में उच्चारण सर्वदा ख ही है। मूल पाठ में साम्य की दृष्टि से ए और ऐ ध्वनियों के लिए अे और अै रूप रखे गये हैं क्योंकि तभी वे अॆ के ह्रस्व रूप के साथ साम्य रख पायेंगे।

प्रस्तुत सम्पादन में जिन प्रतियों का प्रयोग किया गया है उन का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

(क) यह प्रति श्री अगरचन्द नाहटा से प्राप्त हुई। इस का लिपि-कर्ता कोई पण्डित रामचन्द्र है, जिस ने उस की प्रतिलिपि बीकानेर के निकट नापासर ग्राम में कार्तिक शुक्ल अष्टमी संवत् १९४१, तदनुसार मंगलवार तारीख ४-११-१८८४ ई० को की थी। इस प्रति का कागज गला हुआ और यत्र-तत्र त्रुटित है। अक्षर सुवाच्य हैं। पत्रों का आकार १०"×४" है।

कुल पत्र-संख्या ६ है, जिस में अब पत्र-संख्या ८ विद्यमान नहीं है। पत्र संख्या २ का भी कोना टूट गया है। प्रत्येक पत्र के दोनों पृष्ठों पर लिखा गया है। प्रत्येक पृष्ठ की पंक्ति-संख्या १८ है। प्रत्येक पंक्ति की अक्षर-संख्या ५० के लगभग है। यह प्रति धरमत के युद्ध से केवल २५ वर्ष बाद लिखी होने के कारण महत्त्वपूर्ण है।

(ख) यह श्री नाहटाजी से प्राप्त एक अपूर्ण प्रति है जिस के केवल पाँच पत्र प्राप्य हैं। प्रत्येक पृष्ठ में पंक्ति-संख्या २२ से २५ तक है और प्रत्येक पंक्ति की अक्षर-संख्या ६० से ८० तक। पत्रों का आकार १०"×४½" है। अक्षर कहीं छोटे हैं कहीं बड़े। कागज मैला गला हुआ है और चौथे पत्र का दूसरा पृष्ठ अधिकांश खाली है। पाँचवें पत्र से आगे के पत्र लुप्त होने के कारण उस के लिपि-कर्ता, लिपि-स्थान तथा लिपि-काल आदि के विषय में कुछ भी विदित नहीं है।

(ग) यह प्रति भी श्री नाहटाजी से प्राप्त हुई है। इस में तेरह पत्र हैं जिन में पहले पत्र का पहला पृष्ठ रिक्त है। प्रत्येक पृष्ठ में पंक्ति-संख्या १४ और प्रत्येक पंक्ति की अक्षर-संख्या ४६ है। कागज १०"×४½" आकार का है। प्रतिलिपि-कार डेह ग्रामवासी विद्वज्जयचन्द्र है और प्रतिलिपि-काल वैशाख शुक्ल दशमी सं० १७३६, तदनुसार शुक्रवार तारीख १०-४-१६७६ ई० है। इसमें यत्र-तत्र हाशिये में कुछ संशोधन भी किये हुए हैं।

(घ) नाहटाजी से प्राप्त इस प्रति के केवल प्रारम्भ के पाँच पत्र विद्यमान हैं जिस के प्रथम पत्र का पहला पृष्ठ रिक्त है। प्रत्येक पृष्ठ में पंक्ति-संख्या १४ है और प्रत्येक पंक्ति में अक्षर-संख्या प्राय: ४५ है, परन्तु कहीं-कहीं मोटे अक्षर होने पर केवल ३६ है। पत्रों का आकार १०"×४½" है। यह प्रति भी अपूर्ण होने के कारण इस के लिपि-कर्ता, लिपि-स्थान और लिपि-काल आदि के विषय में कुछ भी विदित नहीं है।

(ङ) नाहटाजी से प्राप्त यह प्रति भी अपूर्ण है और इस के केवल प्रारम्भ के चार पत्र विद्यमान हैं। प्रथम पत्र का पहला पृष्ठ रिक्त है। प्रत्येक पृष्ठ की पंक्ति-संख्या १३ है। प्रत्येक पंक्ति की अक्षर-संख्या ४५ है और कहीं-कहीं ३६ भी। पत्रों का आकार १०"×४½" है। पत्र बहुत साफ-सुथरे हैं और अक्षर सुवाच्य हैं। परन्तु प्रति अपूर्ण होने के कारण लिपि-कर्ता, लिपि-स्थान और लिपि-काल के विषय में कुछ भी विदित नहीं है।

(च) यह बीकानेर के खजांची-पुस्तकालय की प्रति है एवं आधुनिक पुस्तक की तरह सिली हुई, एक संग्रह-पुस्तक है जिस में अनेक दोहों, गीतों आदि का भी संग्रह है। उस के पत्र १० से २४ तक में वचनिका है। इस प्रकार कुल पुस्तक के १४ पत्रों में वचनिका लिखी गयी है। प्रत्येक पत्र में पंक्ति-संख्या २४ है और प्रत्येक पंक्ति में अक्षर-संख्या भी २४ है। इस का प्रतिलिपि-कार मुनि तेजा है जिस ने भेड़ गाँव में इस की प्रतिलिपि की। प्रतिलिपि-काल आषाढ़ कृष्ण नवमी संवत् १७३६, तदनुसार रविवार तारीख २२-६-१६७६ ई० है। यह अब तक प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों में सब से प्राचीन है; धरमत के युद्ध से केवल २१ वर्ष बाद की। अत: यह सब से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रति है।

(छ) यह श्री रविशंकर जी देराश्री से प्राप्त प्रति है। इस में भी पत्र-संख्या १०१ से ११६ तक—इस प्रकार कुल १६ पत्रों में वचनिका लिखी हुई है। प्रत्येक पत्र की पंक्ति-संख्या २० है और प्रत्येक पंक्ति की अक्षर-संख्या २२ से २४ तक है। पत्रों का आकार

८$\frac{3}{8}$"×६$\frac{1}{2}$" है। इस का लिपि-कर्ता कोई वेणीदास है जिस ने आश्विन शुक्ल चतुर्थी संवत् १७६४, तदनुसार शुक्रवार तारीख १६-१०-१७०७ ई० को बीकानेर नगर में प्रतिलिपि की थी। इस के अक्षर सुवाच्य और सुडौल हैं।

(ज) यह तेस्सितोरी द्वारा सम्पादित और रायल एशियाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित मुद्रित प्रति है जिसका सम्पादन तेरह प्रतियों के आधार पर किया गया था। उन तेरह प्रतियों में भी कुछ प्रतियाँ ऐसी हैं जिन के पाठों को तेस्सितोरी ने अप्रामाणिक मान कर केवल पाठान्तर के रूप में दिया था। तेस्सितोरी के पाठान्तरों के आधार पर ही उन प्रतियों के केवल ऐसे पाठ को वचनिका में सम्मिलित किया गया है और उसे प्रायः [ ] के अन्तर्गत रखा गया है। उन प्रतियों के विशेष परिचय के लिए तेस्सितोरी के संस्करण के अन्तर्गत B, D, F, J, P, R, S, U प्रतियों का विवरण द्रष्टव्य है।

इस प्रकार वचनिका की अब तक प्राप्य प्राचीन प्रतियों के आधार पर किया हुआ यह सम्पादन पाठकों के लिए विशेष उपयोगी होगा, ऐसी आशा है। इस सम्पादन के लिए प्रेरणा देने और समय-समय पर आवश्यक सभी प्रकार की सामग्रियों का प्रबन्ध करने के लिए मेरे साथी सम्पादक डॉ० रघुवीरसिंह जी को धन्यवाद देना केवल उपचार-मात्र होगा। वस्तुतः यह सम्पादन और उस का प्रकाशन कराने का सारा श्रेय उन को ही है; मैं तो इस में निमित्त-मात्र हूँ। परिश्रम मुझे भी करना पड़ा है। परन्तु इस परिश्रम में मैं ने बहुत कुछ सीखा है; और उस प्रशिक्षण का प्रयोग भविष्य में अन्य अप्राप्य राजस्थानी ग्रन्थों के सम्पादन और संशोधन में भी कर सकूँगा, यह मेरे लिए परम सन्तोष की बात है।

वचनिका

राठौड़ रतनसिंघजी री महेसदासौत री

खिड़िया जगा री कही

वचनिका

राठौड़ रतनसिंघजी री महेसदासौत री खिड़िया जगा री कही

गाहा—गणपति गुणे गहीरं गुणग्राहग दानगुणदियणं ।
सिधि रिधि सुबुधि सधीरं सुण्डाळा देव सुप्रसन्नं ॥१॥

कवित्त—समरि विसन सिव सकति सिद्धिदाता सरसत्ती । [१]
वाखाणूँ कमधज्ज पुहवि राजा छत्रपत्ती ॥ [२]
बळि जेहा चक्कवै हुवा जिण वंस नरेसुर । [३]
खाग त्याग सौभाग वंस छत्रीस तणा गुर ॥ [४]
गजराजदियण भाँजण गजाँ उभै विरुद्दाँ उद्धरै । [५]
कुळ भाँण घरै प्रगट्यौ कमँध रतनमल्ल रिणमल्ल रै ॥ [६] ॥२॥

दळपति उदयासिंह माल गंगेव महाबळ । [१]
बाघा सूजा जोध कमँध रिणमाल अणंकळ ॥ [२]
चूँडा वीरम सलख साख तेरह अजुवाळा । [३]
छाडा तीडा छात हुआ कमधज्ज हथाळा ॥ [४]
हिँदुवाण तिळक हिंदू विहद धूहड़ आसौ सीह धन । [५]
तिणि पाटि अछै महिराण तन रूप भूप अेताँ रतन ॥ [६] ॥३॥

१. गुणपति (छ) (ज); गंभीरं (क); गुंणदातारदांनि (च); लेयण (क); देयणं (ख) (ग) (ङ), लियण (छ), दिअणं (ज); रिद्धिसिद्धिसुबुद्धि (ग), सिधिबुधिरिधि (छ) ।
२. [१] समर (ङ), सिमरि (ग) (च); सगति (ख) (घ) (छ) (ज); [२] वाखाणिस (ङ); [३] वलजिहा (ख); [४] ख्यागत्याग (ग) (घ), त्याग त्याग (छ); गुरु (क) (ख) (ग); [५] विरुदह (ख) (ग); [६] कुलि (च) ।
३. [१] उदयासंग (घ), उदयासिंघ (ङ); मल्ल (क) (ग), मल (च); [२] रिणमल्ल (ङ); [३] चौंडा (ग) (ङ); [४] हठाला (ङ); [५] बेहिद्द (ङ); आसो (ङ) (च) (ज); [६] त्यै (छ), ते (ज); हूअ (ङ), हुअे (च) [अछै] के स्थान पर ।

वचनिका

राठौड़ रतनसिंहजी महेशदासौत की

खिड़िया जगा कृत

गंभीर गुणों वाले, गुणग्राहक, गुणों का दान करने वाले, सिद्धि, रिद्धि, बुद्धि और धैर्य को धारण करने वाले शुंडधारी देव गणपति प्रसन्न हों ॥१॥

सिद्धिदाता विष्णु, शिव, शक्ति और सरस्वती का स्मरण करके पृथ्वी के छत्रपति राजा कमधज (राठौड़) का वर्णन करता हूँ जिसके वंश में खड्ग-प्रयोग, त्याग और सौभाग्य में छत्तीस राजवंशों से श्रेष्ठ बलि जैसे चक्रवर्ती राजा हुए। उस राठौड़ का गजराजों के दान का और गज-सैन्य के भंजन का—दोनों प्रकार का—विरुद उच्च कोटि का है। वह राठौड़ रतनमल्ल (रतनसिंह) रणमल्ल के घर में वंश के सूर्य के समान प्रकट हुआ ॥२॥

ऐसे रूपवाला महेशदास का पुत्र रतन उसी राज्यासन पर बैठा जिस पर (उत्क्रम से) दलपति, उदयसिंह, मालदेव, महाबली गाँगा, बाघा, सूजा, अजय राठौड़ रणमल, चूंडा, वीरम, तेरह शाखाओं में उज्ज्वल सलखा, विशाल भुजाओं वाले कमधज क्षत्रिय छाड़ा और तीड़ा, हिन्दू-तिलक और हिन्दुओं में बड़े बूहड़, आसा और सीहा जैसे धन्य भाग्य वाले राजा आसीन हो चुके थे ॥३॥

१. गहीरं=गंभीर; ग्राहग=ग्राहक; दियणं=देनेवाला।

२. समरि=स्मरण करके। वाखाणूं=बखान करता हूँ। जेहा=जैसे; चक्कवै=चक्रवर्ती (चक्रपति)। खाग=खड्ग; तणा=वाले। भांजण=भंजन करने वाले; धरै=धारण करने वाले।

३. कमंध=कमधज; अणंकल=अजेय। उजुवाला=उज्ज्वल। हथाला=विशाल भुजाओं वाले। विहड़=बूहड़। पाटि=सिंहासन पर; अछै=है; महिराण तन=महेशदास का तनय; एता=इतने।

छंद हणूफाल—रढ रांण भांण रतंन । करतब्बि भारथ क्रंन ।।[१]
नर नाह जे मुखि नीर । ग्रहवन्त ग्यानि गहीर ।।[२]
ससमत्थ सूर सकज्ज । गजदियण भांजणगज्ज ।।[३]
पित मात तारण पक्ख । सिणगार तेरह सक्ख ।। [४]।।४।।

छंद त्रोटक—गुरुदेव सुमत्ति समापि गणं ।
भुवपत्तिय जेमि रतंन भणं ।। [१]
पित जास महेस नरेस पिरं ।
गढ विड्ढि लियौ जिणि देवगिरं ।। [२]
छळि साहि तणै ग्रहि खग्ग छरा ।
धुंसी चढि लीध बलक्क धरा ।। [३]
सनमान करे सुरताण सई ।
जाळोर पटै गढ दीध जई ।। [४]
केवियां दळ तंडळ जेणि किया ।
दन सासण लक्ख गजेन्द्र दिया ।। [५]
कमधज्ज कणैगिरि राज करे ।
विधि अेणि गयौ स्रग क्रित्ति वरे ।। [६]
तिणि पाटि रतंन महेस तणै ।
घण थाट लियां तपतेज घणै ।। [७]
मलराव जिहीं जगि आपमला ।
भुज पूजै साहिजिहान भला ।। [८] ।।५।।

४. [१] भाणराण (छ); करतव्य (क) (ग) (छ), करतव्व (ख) (ज); करन्नं (घ); [२] ज्यु [जे] (ङ); [३] ससमाथ (क) (ग); [४] तारह पाख (ग); साख (ग) ।

५. [१] गिणां (ङ), गणु (च), गुणं (ज); भूपत्ती (क), यति (ख); [२] नरस (घ); वेढि (ख) (ग) (घ) (ज), विट्ठलिया (ङ); [३] सीह [साहि] (क); घूंसे (ख) (ग) (घ) (ज); जिणलीध (घ) (च); बलकंध (ख); [४] सयं (च); जयं (च); [५] लाख गजेन्द्र (क) (घ) (ङ) (ज); लक्ख गजेन्द्र (ख) (ग) (च) (छ); [६] कणैगढि (च); कीत (क), कील (छ), कीया (ङ); [७] घट (ख); थट्टथीयै (ग); लीयण (छ); तणै [घणै] (घ), तेण (ङ); [८] मलराज (ङ); मत [भुज] (ङ) ।

वह रतन रावण और सूर्य के समान प्रचण्ड है। कर्तव्य (युद्ध) में अर्जुन और कर्ण के तुल्य है। राजाओं के मुख की आब के समान है। दृढ़ और गम्भीर ज्ञान वाला है। समर्थ, शूर तथा सुकार्य करने वाला है। गजों का दान और भंजन करने वाला है। अपने मातृ पक्ष और पितृ पक्ष दोनों का तारण करने वाला है और तेरह शाखाओं का शृंगार है ॥४॥

गुरुदेव ने मुझे सुमति और गुण समर्पित किये हैं जिनसे मैं उस राजा रतन का वर्णन कर सकूँ जिसका पिता वह राजा महेसदास था, जिसने देवों के ही द्वितीय दुर्ग के समान देवगिरि दुर्ग को युद्ध करके जीता था।

जिसने बादशाह के लिए खड्ग ग्रहण करके युद्ध किया और बलख पर चढ़ाई करके उसे नष्ट कर उसकी भूमि को जीत लिया था। तब सुल्तान ने उसका सम्मान करने के लिए जालौरगढ़ का पट्टा उसे दिया था।

जिसने शत्रुओं के दलों को खण्ड-खण्ड किया था और लाखों हाथी और शासन-पत्र दान में दिये थे। उस कमधज ने स्वर्णगिरि (जालौर) का राज्य करके और इस प्रकार कीर्ति का वरण करके स्वर्ग-यात्रा की।

उस महेश का पुत्र रतन उस पाट का उत्तराधिकारी हुआ जिस पर अदम्य मालदेव शोभित हो चुका था। वह रतन अत्यधिक तप और तेज का समूह धारण करने वाला था और शाहजहाँ उसकी श्रेष्ठ भुजाओं का आदर करता था ॥५॥

४. रढ रांण=रावण जैसा दुर्धर्ष; भारथ=अर्जुन। नीर=आब; ग्रहवंत=दृढ; ग्यानि गहीर=गंभीर ज्ञानवाला; ससमत्थ=सुसमर्थ। सकज्ज=सुकार्य-(कारी)। पक्ख=कुल (पक्ष); सक्ख=शाखा।

५. समापि=समर्पित किया; जेमि=जिससे। विड्ढि=लड़कर। छलि=हेतु,' टेस्सितोरी के अनुसार युद्ध; तणं=के; छरा=तलवार। धुंसी=ध्वंस की; लीध=ली। सई=तब; जई=जब; केवियाँ=शत्रुओं के; तण्डल=छिन्न अंग; जेणि=जिस (पुं०) ने; दन=दान; सासण=दान-पत्र। कणगिरि=जालौर; अेणि=इससे। तणै=तनय; घण=बहुत; थाट=ठाट। जगि=जगह; आपमला=स्वच्छंद; पूजै=आदर करता है।

दूहा—जीवत म्रित हुइ साहिजहाँ दिल्लीवै सुरताण ।
राति दीह अन्दर रहै नह मंडै दीवाण ॥६॥

धुन्ध हुवै सारी धुरा सहर दिली पड़ि सोर ।
मुहिम हुँता त्याँ मंडियौ ज्याँ साहिजादाँ जोर ॥७॥

गुज्जर धरा मुराद ग्रहि बिजड़ौ तोलि दुबाह ।
माथै छत्र मँडाड़ियौ हुइ बैठौ पतिसाह ॥८॥

धर पूरब सुज्जो धणी दखिणी खरौ दुगाम ।
साहिजहाँ दारासुकर त्याँ सिर कोपे ताम ॥९॥

हिंदू ताम हकारिया सिंघ जसौ जैसिंघ ।
किया विदा कूरम कमँधु अे बेवै अरडिंग ॥१०॥

दिया वधारा देस दे हैँवर द्रब्ब हसत्ति ।
पतिसाही थाँ उप्पराँ यूँ कहियौ असपत्ति ॥११॥

सुज्जा दिसि जैसिंघ सझि दुज्जौ माँन दुबाह ।
पोतो साथै परठियौ पूरब धर पतिसाह ॥१२॥

साहिजादाँ बिहुँ साँमुहौ अेक जसौ अणभंग ।
माँडण असपति माँडियौ जोध कळोधर जंग ॥१३॥

६. साहजाह (च); सुरिताण (ख) (घ) (ङ) (ज); अंदिर (ग) (छ), इंदर (घ) (च); नवि (घ)।

७. छंद (ग), धंध (घ) (च), दुन्दु (छ); पड्यो (क), पड़े (घ); सोय [त्यां] (क), हां (ग); युं (च), सुझोर (क)।

८. मंडावियो (क) (ग), मंडाडिनै (छ)।

९. दाराश्रुकर (ग); साहिजादा दारासाह कोप्यो त्यांसिताम (घ), साहिजादो (छ); नाम [ताम] (ङ)।

१०. जाम (ख) (ग) (छ), जेम (घ); सिंह जसोजेसिंह (क), सिंह जिलो जेसिंह(ग); कीध (ङ); विदारा (घ); एवै (ख); वेई (ङ); अरिमंड (ख), अरिंडग (ग), अरडाम (घ)।

११. हैमर (च); ऊपरै (छ); इयुं (ग)।

१२. सूजै (क) (ग), सूजा (ख) (ज); सझे (छ); दुजडो (क) (छ) (ज); दिस [धर] (च)।

१३. बे [बिहूँ] (ख); मंडण (क); मंडियो (क)।

दिल्ली का सुल्तान शाहजहाँ जीवित अवस्था में ही मृत के तुल्य हो गया था। वह दिन रात अन्दर ही रहता था और राज-सभा नहीं करता था ॥६॥

सारी पृथ्वी पर धुन्ध छा गयी। दिल्ली शहर में शोर पड़ गया। जहाँ जिस शाहजादे का जोर था वहीं उसने मोर्चा बाँध लिया ॥७॥

खड्ग को तौल कर और वीरों को सम्हाल कर मुराद ने गुजरात की भूमि को हड़प लिया और वह मस्तक पर छत्र मंडित कर बादशाह बन बैठा ॥८॥

पूर्व की भूमि का स्वामी शुजा बन गया और दक्षिण का खरा और दुर्गम (औरंगज़ेब)। तब उनके सिर पर शाहजहाँ और दारा-शिकोह कुपित हुए ॥९॥

तब उन्होंने हिन्दू नरेश जसवन्तसिंह और जयसिंह को बुलाया और उन्हें (युद्धार्थ) विदा किया। वे दोनों—राठौड़ और कछवाहा—शत्रुओं का दमन करने में समर्थ थे ॥१०॥

बादशाह ने उनसे कहा—"मैंने समग्र देश के घोड़े, द्रव्य और हस्ती तुम्हें सौंप दिये हैं और बादशाही भी तुम्हारे ही ऊपर आश्रित है" ॥११॥

बादशाह ने पूर्व में शुजा की तरफ एक तो सज्जित जयसिंह को भेजा और दूसरा उसके साथ अपना पोता वीर सुलेमान ॥१२॥

परन्तु दोनों शाहजादों (मुराद और औरंगज़ेब) के सम्मुख युद्ध करने बादशाह ने केवल जोधा के वंशज अजेय जसवंतसिंह को भेजा॥१३॥

६. दिल्लीवै=दिल्लीपति; दीह=दिन; मण्डै दीवाण=दरबार करता है।
७. धुंध=अंधकार; मुहिम=मोर्चा, हमला; त्याँ=वहाँ; ज्याँ=जहाँ।
८. बिजड़ौ=तलवार; तोलि=तौल कर; दुबाह=दुधारी (तलवार)।
९. दुगाम=दुर्गम; सुकर=शिकोह, सुगम।
१०. ताम=तब; हकारिया=बुलवाये; बेवै=दोनों; अरडिंग=शत्रुजयी।
११. वधारा=समग्र; हैंवर=घोड़े; असपत्ति=बादशाह।
१२. दुज्जौ=दूसरा; माँन=सुलेमान शिकोह; दुबाह=दुर्धर्ष; परठियौ=भेजा।
१३. बिहुँ=दोनों; अणभंग=अजेय; मांडियौ=मंडित किया; कलोधर=कुलोद्धारक।

दळ बादळ ताबीन दे हिंदू मुस्सळमाण ।
चगथै जसौ चलावियौ जुध मंडण जमराण ।।१४।।

छंद भुजंगी—
जसौ हालियौ आगरा हुंत ज्याराँ ।
लियाँ साहिरा उम्बराँ स्रब्ब लाराँ । [१]
कमंधाँ बड़ाँ कूरिमाँ साथि कीधाँ ।
लजाथंभ सीसोदियाँ संगि लीधाँ । [२]
हाड़ा गोड़ जादव्व झाला हठाला ।
वळे वंस छत्रीस साथै वडाला । [३]
गाडी नाळि गोळा चलै फौज गज्जं ।
धरा व्योम आधोफरै उड्डि धज्जं । [४]
अराबाँ निबाबाँ किया थट्ट अग्गै ।
पबै गाहिजै घाट औघाट पग्गै । [५]
हलीलाँ हिलै संप फौजाँ हसत्ती ।
प्रथी संगि लग्गा केई देसपत्ती । [६]
वहंती इसी पंथि ओप्पै वहीरं ।
नदी हेम थी ले चली जाँणि नीरं । [७]
कतारं कठट्ठे चले जुंग काळा ।
वहै बादळा जाँणि भाद्रव्व वाळा । [८]
फटौ आभ कै जाँणि सामंद्र फट्टं ।
प्रिथंमी गिरं थुंब किज्जै पहट्टं । [९]

१४. चकथै (क) (ङ), चगते (घ), चखथै (छ); मांडण (ग); जिमाण (छ) ।
१५. [१] चालिग्रौ [हालिग्रौ] (ङ); हूँति (घ) (ज); जारां (ग); सर्व (ग), स्रीव (च)।
[२] साथ [साथि] (ङ); लारि [संगि] (घ) (ज) ।
[३] जादम्म (ख) (ग); चले [वळे] (छ) ।
[४] गुड़े [गाडी] (ङ) (छ); वोम (घ) (ज) ।
[५] साथि [थट्ट] (क) (छ); पग्रे (ङ); थाट उथाट (ङ) ।
[६] त्रिभ [संगि] (च); सांम्हालग्गा [संगिलग्गा] (ङ) ।
[७] ग्रोपे (ख), उपइ (ग); ती [थी] (ग), ता (ङ); नाले [थी] (च) ।
[८] कसारा (छ), कतारां (ज); युग (ग); वधै (छ); वाहला (घ) ।
[९] को [कै] (घ) (ङ) (च); सामद्र (ख); फटु (च); गिरां (ज) ।

हिन्दू मुसलमानों का दल-बादल अधीनता में देकर चगत्ता-वंशी बादशाह ने यमतुल्य जसवन्तसिंह को युद्धार्थ भेजा ॥१४॥

तब जसवन्तसिंह आगरे से चला। वह बादशाह के सब उमरावों को अपने साथ लिये हुए था।

बड़े कछवाहे और राठौड़ वीर उसके साथ थे और लज्जा के स्तंभ सीसोदिये उसके पीछे थे।

इनके अतिरिक्त हाड़ा, गौड़, यादव, हठवाले झाला तथा छत्तीस क्षत्रिय वंशों के वीर भी उसके साथ थे।

गाड़ी, नाल (बन्दूक), गोलियाँ और फौजें गर्जना के साथ चल रही थीं। भूमि और आकाश के मध्य ध्वजायें उड़ रही थीं।

तोपों और नवाबों के समूह आगे-आगे थे। पैरों से पर्वत और घाटादिक कुचले जा रहे थे।

हाथियों की एकत्र सेना से पृथ्वी के साथ-साथ अनेक राजा लोग थर-थर काँप रहे थे।

इस प्रकार मार्ग में चलती हुई वह सेना ऐसी लग रही थी मानो स्वर्ण के पर्वत—सुमेरु—से जल लेकर नदी चली हो।

काले ऊँटों की कतारें भी सन्नद्ध होकर ऐसे चलीं मानो भाद्रपद के बादल बहने लगे हों।

आकाश फट रहा था अथवा मानो समुद्र भी फट रहा था। पृथ्वी, तरु और पर्वत टूट कर समतल हो रहे थे।

१४. तार्बीन=अधीन; चग्यै=मुगल; चलावियो=भेजा।

१५. हालियौ=चला; हुंत=से; ज्यारां=जब; उम्बरां=उमराव; लारां=पीछे। कीधां=किये हुए; लजाथंभ=लज्जा के रक्षक (स्तंभ); लीधां=लिये हुए। हठाला=हठ वाले; वहै=चले; वडाला=बड़े। वाघोदरै=बीच में। आराबां=तोपें; थट्ट=समूह; पवै=पर्वत; पग्गै=पैरों से। हलोलां=लहरें; संघ=समूह। पंथि=मार्ग में; वहीरं=भीड़; थी=से। कठ्ठे=समूह; जुंग=ऊँट। जाँणि=मानो। आभ=अभ्र; थुंब=स्तम्भ; पहट्टै=समतल, पहाड़।

१७७५ विहै उप्पटं थट्ट राठौड़वाळा ।
नदी सोखिजै नीर निव्वाण नाळा । [१०]
वहंतां तुरां पाय पायाळ वाया ।
छिलै रज्ज रैणां उडै व्योम छाया । [११]
[धरा सेस धूजै डिगै धू धडक्कं ।
चढै लंक चक्कं डरै च्यार चक्कं ।] [१२]
चलंता इसा मीर तीरां चलावै ।
पँखी जीवता म्रिग्ग जाणै न पावै । [१३]
मग्थै साहिजादां बिहां राव मारू ।
सझै चालियौ ग्रेम उज्जेणि सारू ।। [१४] ।।१५।।

दूहा—खेड़ेचौ दरकूच खडि आयौ गढ उज्जेण ।
पतिसाहाँ सूँ पाधरै लोह जरीका लेण ।।१६।।
बंधव रतन बुलावियौ जसै रचण रिण जंग ।
साह हुकम छळि साह रै आयौ खड़े अभंग ।।१७।।
गढपति मिळे उजेणि गढि राजा जसौ रतंन ।
राम लखम्मण राठवड़ किरि दुज्जोण करंन ।।१८।।
हसतिमार भेळौ हुवौ काळौ दळां किंवाड़ ।
भागां पडिगाहण भड़ां पिडि अणभंग पहाड़ ।।१९।।

[१०] चहइ [वहै] (घ); ऊपटांथटां (क), उप्पटां थट्ट (ज) ।
[११] वहंताइसा (छ), वहंते (च); पाताल (ग); वाइ (घ), वायो (च); रेणी (ग) (छ), छायो (ङ) ।
[१२] (R. S.) के अतिरिक्त सभी में लुप्त ।
[१३] इसी (च); डीर (ख), तीरं (ज); जाव (च), जाणं (ज) ।
[१४] बिहुं (क) (घ) (च); बिन्हां (ज) ।
१६. खेडेचै (ख), खेडिचै (घ); पाधरौ (क); जरका (छ) ।
१७. रयण [रतन] (च); बल [छलि] (ख) ।
१८. लक्खमण (ज); दुरजोध (क) (ख) छ) (ज) ।
१९. हसम [हसति] (छ); मर [मार] [घ]; पणि (ङ) ।

राठौड़ों की सेना वेला-विहीन होकर चल रही थी जिससे नदियों और नीचे नालों का जल सूख रहा था।

बहते हुए घोड़ों के पैरों में पायलें बज रही थीं। रज के रेणु उड़ कर व्योम को आच्छन्न कर रहे थे।

[पृथ्वी और शेष (अथवा मेरु) काँप उठे। ध्रुव काँपता हुआ चलायमान हो गया। लंका चक्कर चढ़ गयी। चारों दिशायें डर गयीं।]

मार्ग में चलते हुए मीर ऐसे तीर चला रहे थे कि पशु-पक्षी उनसे बचकर जीवित नहीं जा सकते।

यों सजकर दोनों शाहजादों पर आक्रमण करने मारवाड़-नरेश उज्जैन की ओर चला ॥१५॥

वह खेड़ेचा (राठौड़) वीर सैन्य-प्रयाण करके शाहजादों से सीधा लोहा लेने उज्जैन दुर्ग आया ॥१६॥

जसवन्तसिंह ने युद्ध करने के लिए अपने दृढ़ बांधव रतन को बुलाया जो हुकम के साथ ही बादशाह के हेतु युद्ध करने आ खड़ा हुआ ॥१७॥

उज्जैन गढ़ में दोनों गढ़पति—राजा जसवन्तसिंह और रतन—ऐसे मिले मानो वे दोनों राठौड़ राम और लक्ष्मण हों अथवा दुर्योधन और कर्ण हों ॥१८॥

वह रतन मिला जो गजों का हंता (कहरकोह का मारने वाला) था; सैन्य के कपाट के तुल्य था और काले रंग का था। वह भागने वाले योद्धाओं का रक्षक था और शत्रुओं के लिए अजेय पर्वत के तुल्य था ॥१९॥

१५. उप्पटं = उमड़कर; निव्वाण = नीची भूमिवाले; तुरां = घोड़ों के; पायल् = पदाभूषण; वाया = वजे; छिलै = भर गया; चक्कं = चक्र; चक्कं = दिशाएँ; सारू = की ओर।

१६. खेड़ेचो = राठोड़; पाधरे = सीधा; लोह जरीका = लोहा।

१८. किरि = अथवा; दुज्जोण = दुर्योधन।

१९. काळो = काले रंग का रतनसिंह; पडिगाहण = रक्षक; पिडि = युद्ध में।

काळै अजुवाळो कियो आवि दळाँ अवियट्ट ।
चारण भाट चगाहटाँ गुणियण थट्ट गरट्ट ॥२०॥
पति दिल्ली जोधाँणपति धजवड़ ग्रहे सधीर ।
करण भीर भारथ करण वीर मिळै वर वीर ॥२१॥

दूहा बड़ा—बे भाई बिरदाळ औरँगसाह मुराद इम ।
हेवै पति भेळा हुवा जुध मंडण जमजाळ ॥२२॥
कटकाँ हुय बिहुँ कूँच गड़गड़ त्रंबाळ गुड़ै ।
हड़बड़ भड़ हुय हैँवराँ चढ़िया पोरिस चूँच ॥२३॥
बहरहि हिळै बहीर पायक ओठक पड़तळाँ
मिळिवा किर चाली महण नवसै नदि ले नीर ॥२४॥
डाकी जमडाढाळ बे बे तरकस बंधिया ।
तुरकी रहवाळाँ तुरक चढ़िया चामरियाळ ॥२५॥
गुज्जर तणा गरूर ताइ मिळे दिखणी तणा ।
सेन उजेणी सामुहा सालुळिया दळ सूर ॥२६॥
रचि फौजाँ रौद्राळ हैँवर नर वहता हसति ।
माँडण इंद्र झड़ माँडियो बादळ किर वरसाळ ॥२७॥

२०. उजवाली (क) (च) (छ); जगुवि [आवि] (च); अविट्ट (घ); चगाहतां (च); साघट्ट [थट्ट] (ख) ।
२१. धडवड़ (छ); भारमारथ (ख) ।
२२. बि [बे] (घ), बे [इम] (छ); हेवर (छ) ।
२३. बिन्ह (ङ); दुइ (ग); तंबालु (ख) (घ); हुहुइ (घ); पुरस (घ); परिसरा (छ) ।
२४. चले (ख); उठाक (ख), उठक (घ); पाटतलां (ख); चालीया (ख) (ग) ।
२५. यम (ख) (ग); छढालां (ख); दोइदोइ (छ); चामाराल (ख) ।
२६. गरूहरां (ख); तायमां (ख); मिलि (ग), दिक्षणी (ग); सालुलिया (क) (ख) (ग) (घ), सलसलिया (च) ।
२७. रवि (ङ); रज (छ); नरहैमर (क); हेमरतन (ख); हँसता [वहता] (ङ); मोडण (च); झड इन्द्र (क) (ख) (ग) (घ); किरबादल (क) (छ) ।

उस श्याम वर्ण वाले रतन ने गायन करते हुए चारण, भाट और गुणीजनों के विशाल समूह सहित आकर (काला होते हुए भी) प्रकाश कर दिया ॥२०॥

दिल्लीपति (शाहजादों) और जोधाणपति ने धैर्यपूर्वक खड्ग ग्रहण की और वीरों से वीरवर ऐसे मिले मानो युद्धार्थ कर्ण और अर्जुन भिड़े हों ॥२१॥

यवन सेना के स्वामी औरंगजेब और मुराद दोनों भाई इकट्ठे हुए जिनका बड़ा विरुद है और जो यम के तुल्य युद्ध करने वाले हैं ॥२२॥

दोनों कटकों ने कूच किया और गड़ागड़ नगाड़े बजे और पौरुष के मद में मत्त भट हड़बड़ाहट के साथ घोड़ों पर चढ़े ॥२३॥

खुर वाले घोड़ों, ऊँटों और पैदल सैनिकों की भीड़ बह रही थी मानो एक साथ नौ सौ नदियाँ जल लेकर समुद्र से मिलने चली हों ॥२४॥

यम की सी दंष्ट्राओं वाले और दानवोपम तुर्की के रहने वाले चामरिआल तुर्क दो-दो तर्कस बाँधकर चढ़ाई पर चले ॥२५॥

गरूर वाले गुजरात के और दक्षिण के दानवोपम वीर मिले और दल-शूरों की वह सेना उज्जैन की तरफ आगे बढ़ी ॥२६॥

वे रौद्र यवन हाथियों, घोड़ों और नरों की बहती हुई सेना रचाये हुए थे मानो वर्षाऋतु में बादलों से इन्द्र ने झड़ी लगा दी हो ॥२७॥

२०. अजुवाळो = प्रकाश; अवियट्ट = समूह; चगाहटां = चर्चा-रत; गरट् = विशाल, गरिष्ठ ।
२१. धजवड़ = खड्ग ।
२२. विरदाळ = बड़े विरुदवाले । हैवै पति = (हैवे >हयवड >हयपति) = अश्वपति, राजा; जमजाळ = यम समूह ।
२३. पौरिस चूँच = पौरुष मत्त ।
२४. हिळे = चलती है; पायक = पैदल; ओठक = ऊँट; पडतलां = खुरोंवाले घोड़े; महण = महार्णव ।
२५. जमडाढाळ = यमदंष्ट्राओंवाले; चामरियाळ = चमरवाले यवन ।
२६. ताइ = आततायी; सामुहा = सम्मुख; साळुळिया = अभियान किया ।
२७. वरसाळ = वर्षा ऋतु ।

बागाँ करे बणाव सिर परि धरि मूँछाँ सुकर।
जुमदढ खग कसिपति जवन जगमग नग्ग जडाव ॥२८॥
आया बाहिर अेम बैसि गजाँ मेघाँडँबर।
चगथा बे ढुळता चमर हीर जड़ित छत्र हेम ॥२९॥
रुळि काहुळि त्रंबाळ तूरहि भेरि नफेरि त्रहि।
आरोहे अैराकियाँ भिळिया पंथ भुलाळ ॥३०॥
गजराजाँ आग्राज गाज हुवै त्रंबागळां।
फौजाँधज नेजाँ फररि वहताँ हीँ जरि वाज ॥३१॥
पड़ताळाँ पाताळ बहताँ तुरी बजाड़ियौ।
उड़ी रजी छायौ अरस किय भाँखो किरणाळ ॥३२॥
धूवाँ रव दव धोम खेहारव डंबर खरा।
ऋमतै रौद्रायण कियौ व्योम विचाळै व्योम ॥३३॥
जुदा हुवै जिँद जीव म्रिग खग आमुज्भै मरै।
मारगि वहतै माँडियौ दाणव प्रळै दईव ॥३४॥
धर सारी पड़ि धाक पुर तर गिर कीजै पहट।
हैकँप उर नागेंद्र हुव चक च्यारूँ चढ़ि चाकाँ ॥३५॥

२८. कमंग कसिपति (घ); जुवां (क); ज्यवन (ग); झिगम्रिग (घ)।
२९. गज (ङ), चकथा (क); बहु (च); ढुलते (क), ढालता (ङ); जड़ (ङ)।
३०. काहुलि काहुलि (घ); तूर (क) (घ) (छ), तूहरि (ख); त्रंबाल [नफेरि] (ग); आरोहे प्रसि (क) (ख) (ग) (घ) (ङ) (च) (छ); भालिया (ङ)।
३१. त्रंवाला (क), त्रंबागाळी (च); फौजा नेजा धजा फरहरे वहता ईज (घ)।
३२. पड़ताले पायाल (ङ); वहते (च); तुरा (ख), तुरे (च); वजाडियै (छ); रज (घ); कियौ (ग) (च); छांखो (घ); किरमाल (छ)।
३३. दख (ख) (घ); खेहाडंबर खरपरा (ख), खहाडवर रव खरा (घ), खेहाडंबर बिरखरा (छ)।
३४. आमूभी (ग), आरुभे (छ); वहतां (च); [प्रलै दईव] (घ) में लुप्त, प्रळी (च) (छ)।
३५. (घ) में पहले तीन चरण लुप्त; तुरत (ङ), हुवौ (ख) (ग) (च) (छ); च्यारे (च)।

यवनपति कटारी और खड्ग धारण किये हुए, वागे का बनाव किये हुए, मूँछों पर हाथ धरे हुए और शिर के ऊपर जगमगाते जड़ाऊ नग धारण किये हुए थे ॥२८॥

यों वे दोनों मुगल शाहजादे चँवर ढुलवाते हुए और रत्न-जटित हेमछत्र धारण किये हुए मेघाडंबर के समान हाथियों पर बैठ कर बाहर आये ॥२९॥

काहल व त्रंबाल वजवाकर और तुरही, भेरी तथा नफेरी की आवाज करवा कर सैनिक आकर्षक भूलों वाले हाथियों और ईराकी घोड़ों पर सवार हुए ॥३०॥

गजराज गर्जना करने लगे, त्रंबागल गरजने लगे। सेनाएँ ध्वजा और नेजे फहराने लगीं और चलते हुए घोड़े हींसने लगे ॥३१॥

चलते हुए घोड़ों के खुर पाताल तक वजने लगे। धूल उड़ कर आकाश में छा गयी और उसने सूर्य को आच्छन्न कर लिया ॥३२॥

अग्नि और धुएँ के तथा रेत के वादलों से आकाश को भर कर आक्रमण करते हुए यवनों ने आकाश के बीच में एक अन्य आकाश की सृष्टि कर दी ॥३३॥

पशु-पक्षी दम घुटने से मर गये और उनके प्राण शरीर से पृथक् हो गये। इस प्रकार दैव के समान दानवों ने मार्ग चलते हुए प्रलय मचा दी ॥३४॥

सेना के चारों दिशाओं में चलने से समग्र पृथ्वी में धाक पड़ गयी। पुर, तरु और पर्वत टूट कर समतल हो गये। नागेंद्र शेष के हृदय में कँपकँपी होने लगी ॥३५॥

२८. जमदड्ढ = कटारी, यमदंष्ट्रा।

२९. श्रेम = यों; बैसि = बैठ कर।

३०. वल्हि = बजा कर; झिल्हिया = झिलमिल प्रकाशित हुए; झुलाळ = झूलों वाले।

३१. आग्राज = गर्जना; त्रंबागळां = वाद्य विशेष; हींसरि = हींसते हुए।

३२. पड़ताळ = खुड़ताल; रजी = रेत; अरस = आकाश; भाँखो = मंद; किरणाळ = सूर्य।

३३. दव = दावाग्नि। खेहारव = रेत; डंबर = मेघघटा; क्रमतै = आक्रमण करते हुए; रोद्रायण = यवन; विचाळै = मध्य।

३४. आमुज्झै = रुद्धश्वास होते हैं।

३५. हैकँप = कँपकँपी; चक = दिशाएँ; चाक = चक्र।

सेन इसा सुरिताणि चगथै चढै चलाविया ।
उल्लटिया इळ ऊपरै जलनिधि सुरै चैत्र जाणि ॥३६॥
गूंडळियौ रज गैण हैकँप धर डेरा हुवा ।
साहजादा दर कूच सूँ आया खड़े उजैण ॥३७॥

गाहा चौसर—दळ दिखणाधि उतर देठाळै ।
डेरा दुहूँ दिया देठाळै ॥
दुहुँ बाजार झँडा देठाळै ।
दामणि गर्जां धजाँ देठाळै ॥३८॥
निपट बिन्है दळ आया नैड़ा ।
नराँ सुराँ अति आया नैड़ा ॥
नौबति सोर धड़ड़ि धुबि नैड़ा ।
नाळि निहावि गाजिया नैड़ा ॥३९॥

दूहा—औरँगसाह मुराद इम सिळि लिक्खै फुरमाण ।
राजा राह म रोकि तूँ साह लगै दे जाण ॥४०॥
राड़ि म करि इक तरफ रहि आगै पीछै आव ।
जोइ दिली फिरि जाइस्याँ परसि असप्पति पाव ॥४१॥
जसवँत सुणे जबाब जब आगा कहियौ अेमि ।
मौ थाँ आडौ मेल्हियौ कहौ जाण द्यूँ केमि ॥४२॥

कवित्त—सुणि जबाब जसराज तेड़ि सत्ताब महाभड़ । [१]
सूर बलू सारिखा जिसा गोवरधन अनड़ ॥ [२]

३६. ऊपरवे (क); इसी सुलताण (घ) (ङ); चकथै (क) (ख) (छ); चड़ि (ख) (ग); चलाडीया (च) ।

३७. गुघलियो (क) (घ), रुघिलियो (ख) (ग), धूंघलियौ (छ); तीसरे चरण के स्थान पर, खुंडालाभले खरहहा (घ), गुंदालम ले खरहडा (च); आयौ (च) ।

३८. (घ) और (ङ) प्रतियों में छंद सं० ३८ और ३९ का क्रम उलटा है; दऊ (ग); विहुँ (घ) (ङ); झंडी (च) ।

३९. दुऊ (क), छोइ (ख), दो (ग), विहुँ (घ) (ङ), दुये (छ); सुरां (छ) में लुप्त; नौव (क); धड़धडवि (छ) ।

४०. मिळे (ख) (घ) (ङ) (ज); लिख्यौ (क) ।

४१. आगलि (ख), आगलि पाछलि (ग); जावस्यां (च); फरस (ग), परसे (ख) (च) (ज) ।

४२. आपे [आगा] (ङ); मो आडो था (ग), थां आडोमो (छ); जाणद्यां (ख), जावा द्यूं (घ), जावाचूं (ङ), द्यांजावण (च) ।

मुगल शाहजादों ने ऐसी सेना चलायी मानो सातों समुद्र पृथ्वी पर उलट पड़े हों ॥३६॥

जब शाहजादों की सेना कूच कर उज्जैन में आकर खड़ी हो गयी और डेरे करने लगी तो आकाश धूल से ढक गया और पृथ्वी काँपने लगी ॥३७॥

दक्षिणियों के दल उत्तर में दिखायी पड़े। दोनों सेनाओं के डेरे दिखायी पड़े। दोनों के बाजार और झंडे दिखायी पड़े। हाथियों पर ध्वजाएँ ऐसी दिखायी पड़ीं मानो बिजली हो ॥३८॥

दोनों दल बिलकुल निकट आ गये। नरों और सुरों की मृत्यु निकट आ गयी। नौबत का शोर निकट ही धड़ाधड़ होने लगा। तोपें भी निकट ही गर्जना करने लगीं ॥३९॥

तब औरंगजेब और मुराद ने मिल कर यों फर्मान लिखा—"हे राजन्, तुम मार्ग न रोको। हमें बादशाह के पास जाने दो ॥४०॥

"तुम युद्ध न करो। एक तरफ होकर आगे अथवा पीछे आओ। हम तो दिल्ली देख कर और बादशाह के पैर छूकर वापस चले जायेंगे।" ॥४१॥

जसवन्तसिंह ने जब यह समाचार सुना तो उसने आगाह करके यों कहा—"मुझे तो तुम्हारा मार्ग रोकने भेजा है फिर बतलाओ कैसे जाने दूँ।" ॥४२॥

समाचार सुनते ही जसवंतसिंह ने तत्काल वल्लू जैसे महाभट शूरों को और पर्वतोपम गोवर्धन जैसे वीरों को बुलाया।

३६. इळ=पृथ्वी, इला; मुर चत्र=तीन और चार अर्थात् सात।

३७. गूँडलियो=आच्छन्न हुआ; दर कूच=मंजिल।

३८. देठाले=दिखाई दिये।

३९. निपट=बिलकुल; नैड़ा=निकट; ग्रति=मृत्यु; घड़ड़ि=घड़घड़ ध्वनि करके; घुवि=ध्वनि करके; निहादि=प्रज्वलित होकर।

४०. फुरमाण=फर्मान, पत्र; म=मत; लगै=पास।

४१. परसि=छूकर; पाव=पैर।

४२. आगा=आगाह करके; मेल्हियो=भेजा; केमि=कैसे।

४३. तेड़ि=बुलाकर; सताब=शीघ्र; भड़=भट; सारिखा=सदृश; अंनड=पर्वत।

बींद घड़ा बानैत तेड़ि माहेस तियारां। [३]
पीथल क्रन्न उदिल्ल जिसा मधुकर झूम्भारां ।। [४]
जगराज रुघा गिरधर जिसा पूछि जसै मोटा पहां। [५]
उम्बरां नरां असपत्ति सूं कहौ जाब कासूं कहां ।। [६] ।।४३।।
इम अक्खै उँबराव राज जितरी कुण जाणै। [१]
मती वखत तप तेज राज सूरज हिंदुवाणै ।। [२]
तुम सहि जोधां छात जोध सारा इम जप्पै। [३]
तुम सिरहर दुइ राह साह सोबै करि थप्पै ।। [४]
कमधजां आज माहेस कौ कहियौ यां दुज्जौ करन। [५]
जुधबंध खत्री ध्रम जाणगर राजा बळि बुज्झौ रतन ।। [६] ।।४४।।

छन्द बिअक्खरी—राजा जसवँतसिंघ रचण रण।
ताम रयण तेडियौ त्रिभै तण ।। [१]
बेठा बे आलोच वहादर।
सूं पतिसाहां सूत्रण समहर ।। [२]
सूरिजमल गँग बाघ सलक्खां।
पाटोधर चाढण जळ पक्खां ।। [३]
मुहरै अणी किया रिणमल्लां।
चांपां कूंपां जैत अचल्लां ।। [४]

४३. [३] घरणा (घ), खड़ा (ङ)।
[४] कर [क्रन्न] (ङ)।
[५] रुघा गिरवर (ख); जिहां (क) (ख) (ग), जइ (घ); पूछौ (ख)।
[६] करां [कहां] (ङ)।

४४. [१] जब [इम] (क), इसो (ख), इवुं (ग), अेयुं (घ)।
[५] माहे को (घ); रो [को] (क) (ग); कहियो जो (ग), कहिजै जग दुलो (घ)।
[६] जाराजग (ङ), जगिं (च); वलं (ख) (ग) (घ) (ङ) (ज)।

४५. [१] [रण] (क) में लुप्त; चण रणजंग (घ), रचर (ङ); रयण ताम (क), रतन (ङ)।
[२] सूत्र (ख) (ग) (घ), सूतांणों (ङ); संमर (क) (घ) (च)।
[३] गंगव (घ), गंगेव (ङ)।
[४] महरा (घ); कुंप (च); अटल्लां (क)।

तभी बानैतों की सैना के स्वामी माहेश को बुलाया और पीथल, कर्ण, उदयसिंह तथा मधुकर जैसे योद्धाओं को बुलाया। जगराज, रघुनाथ और गिरिधर जैसे बड़े उमरावों और नरों को बुला कर उनसे पूछा कि शाहजादों को क्या उत्तर दें ॥४३॥

उमराव यों बोले—"आप जितना कौन जानता है? आप बुद्धि, भाग्य, तप और तेज में हिन्दुओं के सूर्य हैं। सब जोधा यही कहते हैं कि आप सब जोधाओं के छत्र हैं। आपको ही बादशाह ने सूबा देकर दोनों धर्म वाले सैनिकों—हिन्दुओं और मुसलमानों—के शिर पर स्थापित किया है। परन्तु यदि आप चाहें तो भले ही रतनसिंह से सम्मति पूछ लें क्योंकि इस समय वह महेशपुत्र कमधजों में द्वितीय कर्ण के समान है और युद्ध-व्यूह तथा क्षात्र-धर्म का जानकार है।" ॥४४॥

तब राजा जसवंतसिंह ने युद्ध की व्यूह-रचना के लिए निर्भय राजा (रतन) को बुलाया और आलोचना (मंत्रणा) में निपुण वे दोनों वीर शाहजादों से समर करने के लिए व्यूह-व्यवस्था करने बैठे।

उन्होंने सूरजमल, गाँगा, बाघा और सलखा के राज्यासन पर जलाभिषिक्त होने वाले वीरों तथा रणमल, चांपा, कूँपा और जैता के अचल वंशजों को सेना के अग्रभाग में किया।

४३. वींद = स्वामी; घड़ा = सेना; तियारां = तब। झूझारां = योद्धा, जूझार। मोटा पहां = बड़े प्रभु। कासूं = क्या।

४४. अक्खै = कहते है; राज = आप। मती = बुद्धि; वखत = भाग्य। छात = छत्र; जप्पै = कहते हैं। सिरहर = शिरोमणि; राह = धर्म; सोबै = सूबेदार, अतः सेनापति; थप्पै = स्थापित किया। जुधवंध = व्यूह; जाणगर = जानकार; बलि = चाहें तो; बुज्झौ = पूछो।

४५. ताम = तब; रयण = रतनसिंह। आलोच = मंत्रणा; सूत्रण = रचने को; समहर = समर। पाटोधर = सिंहासन-धारी; पक्खां = वंश, पक्ष। मुहरै = मुखाग्र; अणी = सेना।

धुरि गोदौ वीठल क्रन धूहड़ ।
आडा साहि मंडिया अन्नड़ ॥ [५]
बलू दलाउत सहितौ बेटाँ ।
हर ऊदल अविनासी हेटाँ ॥ [६]
जोधा हरौ रूप जेतारण ।
रिणमालाँ जोड़ै धरियो रण ॥ [७]
क्रमा हरौ गिरवर रिण काळौ ।
पीथलिया जाँवलि प्री चाळौ ॥ [८]
ऊदौ जगौ किया बे आगै ।
जोड़ करन जेता छळ जागै ॥ [९]
धरिया मुँहरि अणी गिरधारी ।
हेवै दळ हेडवण हजारी ॥ [१०]
तिजडा हथ सूजौ केहरि तण ।
किलँबाँ घड़ा करण रण कणकण ॥ [११]
[बंधव रासौ बेळ महाबळ ।
खागाँ मुहि पाडणौ बड़ाँ खळ ॥] [१२]
बिरदाँ तणौ मोड़ सिरि वाधौ ।
मारण मरण करण रिण माधौ ॥ [१३]
अखाहरौ चाढण जळ अक्खाँ ।
सोनगिरौ आगळि सळक्खाँ ॥ [१४]

४५. [५] मंडियौ (ङ); (च) के अतिरिक्त सभी में [११] वाँ चरण इसके बाद ।
[६] सरसह (ख) (ग), सरिसौ (छ) ।
[७] रिणमाला रूप जोड़े (ङ); धरिये (ग); इसके बाद (ख) में [१२] वाँ चरण ।
[८] प्रचाला (ङ) (च) ।
[९] आजागै जोडै क्रन (छ) ।
[१०] धरिअणियाँ (ख) (ग), धर अणियामाह (ङ); मुहब (ग) ।
[११] करे (क) (ख) (घ); [रण] (क) में लुप्त; यह चरण (च) के अतिरिक्त सभी में [५] के बाद ।
[१२] यह चरण (क) (ख) (ग) (घ) (ङ) (छ) (ज) में लुप्त ।
[१३] [तणौ] (छ) में लुप्त ।
[१४] छल [जळ] (च); निगरो (क), सोनिगिरे (ग), सोनीगरो (घ); अमली (घ) ।

गोवर्धन, वीठल और कर्ण धूहड़ (राठौड़) आदि पर्वतोपम वीरों को केन्द्र में शाहजादों का सामना करने के लिए रखा।

अविनाशी ऊदल के वंशज दलाउत वल्लू और उसके पुत्रों तथा जैतारण के जोधावतों और रणमल के वंशजों (कूँपावतों एवं चाँपावतों) की जोड़ी एकत्र स्थित हुई।

करमसी के वंशज विकट योद्धा गिरवर और विशाल पहुँचे वाले पीथल की जोड़ी वनी और ऊदा तथा जग्गा दोनों की जोड़ी युद्ध करने के लिए रणक्षेत्र में आगे की गयी।

सेना के मुखाग्र में हय-सेना को हाँक देने वाले हजारी गिरधारी और केहरी-तनय सूजा को हाथ में तलवार लेकर यवन-समूह को खंड-खंड करने के लिए रखा।

[वहीं उसका बांधव महावली रायसिंह रखा गया जो खड्ग से वड़े-वड़े दुष्टों को भूमि पर गिराने वाला था।]

विरुदों का मुकुट सिर पर वाँधने वाला और युद्ध में मारण-मरण करने वाला माधो भी वहाँ रखा गया।

जल का अक्षय अभिषेक करने वाले सोनगरे अखेराज का यह वंशज सलख वंशियों के अग्रभाग में था।

४५. धुरि = केन्द्र में; धूहड़ = धूहड़ का वंशज, राठौड़। हेटाँ = साथ। जोड़ै = साथ। जाँवलि = युग्मबद्ध; प्रौंचाली = वड़े पहुँचे वाला। छल = युद्ध। हेडवण = हाँकदेनेवाले, विनाशक; हजारी = एक हजारी मनसव वाले। तिजड़ा = खड्ग; किलँवाँ = यवनों को। रासौ = रायसिंह; वेल = वेला; खागाँ = खड्ग से; मुहि = मही पर; पाडणौ = गिरानेवाला। मोड़ = मुकुट। अखौ = अक्षय।

"[केसवदास तणौ गज केहरि।
आयौ मान झालियाँ असमरि ।।] [१५]
भाटी सुरताणोत भुजाळौ।
छिलतै मछरि रुघौ छत्राळौ ।। [१६]
[ऊहड़ मेघ झालियाँ असमर।
आधारै डिगतौ भुजि अंबर ।।] [१७]
बीजा या साथे दळ सब्बळ।
भाई बंध भतीज भुजागळ ।। [१८]
महि लोहड़ौ खुरसाण मँडोवर।
अड़ियौ बड़ा सरस ग्रहि असमर ।। [१९]
डेरा पूठि चँदोल दिवारे।
सझियौ गोल विचै सिरदारे ।। [२०]
त्याँ माहे जसराज गजणतण।
जोधाहरौ माँण दुज्जोयण ।। [२१]
सूजावत गोढै मधकर सझि।
कमधज राव तणाँ जतनाँ कजि ।। [२२]
बे भाई ग्रहि खग्ग बहस्से।
इम अंबर लग्गा ऊसस्से ।। [२३]
रण रामायण जिसौ रचावाँ।
लड़े मराँ चँद नाम लिखावाँ ।।" [२४]

४५. [१५] केवल (ग) में।
[१७] केवल (ग) में।
[१८] इयां (ख) (ग), इयूं (घ), लियाँ (छ); बत्तीस [भतीज]।
[१९] अम्मर (क), सरग्रह अन्नंड (ङ)।
[२०] दिवारी; कभी उझाल विधी सरदारी (घ)।
[२१] गर्जसिंह तणा (ग), गण तणै (ङ); दुज्जोधण (क), दुरजोवण (ख), मतिवंत दुजोधण (घ), दुरजोधन (ज)।
[२३] जेम (क), यूं (ख) (ग) (घ) (ङ) (ज)।
[२४] रचावण (छ); लिखावण (छ)।

[केशवदास का पुत्र (माधोसिंह) तलवार लेकर गर्व-सहित ऐसा आया मानो हाथी पर सिंह झपटा हो ।]

बड़ी भुजाओं वाला सुरताण-पुत्र भाटी सरदार और युद्धोत्साह से परिपूर्ण रुघा भाटी भी वहीं थे ।

[वे उद्भट तलवार-रूपी मेघ को पकड़ कर गिरते हुए आकाश को भुजाओं के सहारे रोक लेते थे ।]

इन दोनों के साथ सबल दल और विशाल भुजाओं वाले भाई, भतीजे, बाँधव आदि भी थे ।

बीच में मंडोवर का छोटा खान था जो युद्ध में उत्साहपूर्वक खड्ग लेकर अड़ा हुआ था ।

पीछे चंदोल की दीवार के साथ डेरे लगाये और बीच में सरदारों ने गोल बनाया ।

उसमें गजसिंह का पुत्र जोधावत जसवंतसिंह था जो मान में दुर्योधन के तुल्य था ।

सूजावत महेशदास कमधजराज (जसवंतसिंह) के कार्य के लिए उसके पास ही सज कर तैयार था ।

(जसवंतसिंह बोला) "वे दोनों भाई (शाहजादे) खड्ग लेकर ललकारने लगे हैं और उत्साह के साथ आकाश को छूने लगे हैं ।

अतः हम भी रामायण जैसा युद्ध करेंगे और चन्द्रमा रहे तब तक के लिए अमरों में नाम लिखा देंगे ।"

४५. खुरसाण = शासक, खान; असमरि = खड्ग । पूठि = पीछे; चँदोल = सेना का पृष्ठ भाग; गोल = सेना का मध्य भाग । गजणतण = गजसिंह-तनय । गोढै = निकट; जतनाँ कजि = यत्नार्थ । ग्रहि = लेकर; बहस्से = परस्पर ललकारना; ऊसस्से = उत्साहित हुए ।

जसवँत अेम बोलियौ ज्याराँ ।
तण माहेस अरज की त्याराँ ।। [२५]
जोधाँ धणी घणा दिन जीवौ ।
दळ सिणगार बंस घर दीवौ ।। [२६]
दे सोबौ पतिसाह मूझ दळ ।
सवळी लाज मरण छळ सब्बळ ।। [२७]
मरण तणौ सोबौ दे मोनूँ ।
टीलौ राज धरा छळ तोनूँ ।। [२८]
सारी धर भोगवि गढ साजा ।
रिण आवगो मूझ दे राजा ।। [२९]
रिण मो रहियाँ राज रहेसी ।
कमँधाँ कोइ न बुरो कहेसी ।। [३०]
ऋन मरतै दुज्जौन गयौ ऋमि ।
स्रीकम काळजवन आगै तिमि ।। [३१]
राजा किसन दाव करि रहियौ ।
दाणव तिकौ पछे फिरि दहियौ ।। [३२]
हार जीप वाताँ हरि हाथे ।
बिहुँ पतिसाह सरिस हूँ बाथे ।। [३३]
साहतणा गंजूँ दळ सारे ।
धड़ म्हारौ भंजूँ खग धारे ।। [३४]

४५. [२५] जिहारां, तिहारां (ख) ।
[२६] चौ [घर] (ख) (ग) (छ) (ज), रौ (घ) (ङ) ।
[२७] मूझल (ख), मनुं (घ), मोनुं (च) ।
[२८] मोनै (छ); तोनै (छ); टीला (घ), टीकौ (ङ); बल (ड) ।
[२९] भोगवे (ङ); मनुदहे दीधो रहे श्रो राजा [मूझ दे राजा] (घ) ।
[३०] कमंधो (छ); कोइ न कहेसी बुरो (क), बुरो कोई न कहेसी (छ) ।
[३१] दुरजोध (क) (ग), दुजायेण (ङ); भोकम (घ); आगल (ङ); भीम (घ) ।
[३२] द्राव (च); पछैतिकौ (क); करिफिरि (ङ) ।
[३३] पतिसाहा (क), पुरिसाह (च); सरिस हुसी (घ), सुहुस्यूं (ङ) ।
[३४] तणौ (क); गंजां (घ) (छ); सारा (ङ), हारौ (च); भांजूम्हारौ (ङ); खग-धारे (घ), खगधारा (ङ), कापधारा (च) ।

यह सुन महेश-पुत्र रतन ने निवेदन किया :—

"हे जोधों के स्वामी ! आप बहुत दिन जीवित रहें। आप सेना के शृंगार और वंश के दीपक हैं।

"शाही दल का सूबा और प्रबल युद्ध में मरने की सम्पूर्ण लज्जा आप मुझे सौंप दें।

"युद्ध में मृत्यु का सूबा मुझे देकर आप राज्य की भूमि में चले जायें तथा समग्र भूमि और सुसज्जित गढ़ भोगें। हे राजा ! इस रण का आयोग मुझे दे दें।

"यदि मैं युद्ध में रह जाऊँगा तो हमारा राज्य रह जायेगा। मेरे रहने पर कमधजों को कोई बुरा न कहेगा।

कर्ण के मरते ही दुर्योधन भाग गया था और वैसे ही काल यवन के आगे श्रीकृष्ण।

"राजा कृष्ण भी दाव करके वापस मुड़ गये थे और इस प्रकार दानव को जलवा दिया था। (अर्थात् भाग जाने की नीति निंद्य नहीं है)।

हार जीत तो भगवान् के हाथ है पर युद्ध में तो मैं दोनों बादशाहों से बराबरी ही करता रहूँगा।

"मैं शाहजादों के सारे दल का गंजन कर दूंगा और खड्ग-धारा से अपने धड़ का खण्ड-खण्ड भी कर लूँगा।

४५. घणा = वहुत। सबली = सवल। टीलौ = शोभित हों। आवगो = आयोग, भार। गयौ क्रमि = भाग गया; त्रीकम = कृष्ण, त्रिविक्रम। दहियौ = जलाया। सरिस = सदृश, वराबरी। गंजूँ = नष्ट करूँ।

औरँगसाह दिसी आखौ इम।
जुध करिस्याँ कैरव पांडव जिम ॥ [३५]
आहवि वाहि वहाड़ि असिम्मर।
महाराज ले जाज्यौ मधुकर ॥ [३६]
मतौ दिढाइ मिले रा'व मारू।
सीख रतन कीधी स्रगि सारू ॥ [३७]
तोम जुहार कियौ खग तोले।
बीजे भवि मिलिस्याँ हसि बोले ॥ [३८]
जीवै तिके भलाँ घरि जावौ।
आवै स्रगि मो साथे आवौ ॥ [३९]
कालै मरण मनोरथ कीधा।
लाज मरण भारथ भुजि लीधा ॥ [४०]
आप तणै डेरे फिरि आयौ।
जोध जड़ागि मलैगिरि जायौ ॥ [४१]
करि अँगपान सनान महाक्रित।
बड़ तीरथ मझि विप्र दिया वित ॥ [४२]
सपत धात चौरँग लिखमी सह।
व्रगसे असि रैणा सुरही बह ॥ [४३]
देवाँ दरसि फरसि जाइ द्वारे।
पूजा करि डेरे पाधारे ॥ [४४]

४५. [३५] दाखौ (ङ)।
[३६] आहिवहाड़ि (घ), आहिव (ङ); महाराजा (क)।
[३७] द्रिढाव (ङ)।
[३९] सरगसाथे मो (क), आवि स्रगां मो साथे (ख), स्रगसारू सो मो साथे (ग)।
[४०] लाजवडा जसआवघ (ङ), लाजवड़ो (घ)।
[४१] जिडंग मिल्यागर (ङ), गांमतेगिर (छ)।
[४२] पात (च); वलि [वड़] (छ); दिया विप्रां (क), विप्रादिया (च); लियावित (छ)।
[४३] चीरंग लिखमी.... (ग); रेतणा [रैणां] (घ); सुरसी (छ)।
[४४] दुरसइम दुवारे (ख); धारे (घ)।

"अतः औरंगजेब के पास यह कहलवा दीजिए कि कौरव-पांडवों के तुल्य युद्ध करेंगे।

"हे महाराज ! आप युद्ध में खड्ग चलाने और चलवाने वाले मधुकर को साथ ले जाइए।"

तब मत निश्चित करके मारू राव जसवंतसिंह ने रतन को स्वर्ग के लिए (लड़ कर मरने के लिए) विदा दे दी।

तब रतन ने खड्ग तोल कर जुहार किया और हँस कर कहा कि अगले जन्म में मिलेंगे।

फिर सैनिकों से कहा कि जिन्हें जीवित रहना हो अपने घर चले जायें और जिन्हें स्वर्ग जाना हो वे मेरे साथ आयें।

तब रतन ने दूसरे दिन मरने का मनोरथ किया और युद्ध में मरने की लज्जा अपनी भुजाओं पर धारण की।

फिर अपने डेरे आया। वह रतन जोधों के वंश का दीपक और महेश का पुत्र था।

उसने स्नान और पवित्र कृत्य करके बड़े तीर्थ में हाथ में जल लेकर विप्रों को धन दान दिया।

सप्त धातु और चतुरंग लक्ष्मी के साथ घोड़े, हाथी और बहुत-सी सुरभियाँ बख्शीश में दीं।

देवों का दर्शन, देवद्वार का स्पर्श और पूजन करके वह डेरे लौटा।

४५. दिसौ=की ओर। आहवि=युद्ध में; वाहि वहाडि=चलाने चलवाने वाला। मतौ=मत; दिढाइ=दृढ करना। ताम=तब; जुहार=नमस्कार; भवि=जन्म में। कालै=कल। जोध दड़ागि=जोधों के वंशजों में दीपक तुल्य; मलैगिरि=महेशदास। सपत धात=सप्त धातु; चौरँग=चार रंग के पदार्थ; बगसे=दिये, बख्शे; असि=अश्व; रेणा=आरण्यक हाथी; सुरही=गायें; बह=बहुत से। पाधारे=आये।

होम कराड़ि भणाँडि विप्राँ हद ।
जंपि आवाहन सुर ईसट जद ।। [४५]
करि भुंजाई चाढि कड़ाला ।
विधि विधि सहि भोजन्न वडाला ।। [४६]
पाँति रची चौंसर प्रौंचाळै ।
कवि रजपूत पोखिया काळै ।। [४७] ।।४५।।

दोहा—जुजिठल वाळा ज्याग जिम अन घ्रित छिलै अपार ।।
दिल धाई आसीस दै कवि जंपै जैंकार ।।४६।।

गाहा—गाजै द्वारि गयन्दो बाजै नीसाण जैतसिर बाजा ।
सारिख इन्द समंदो म्हाराजा राज काइम्मो ।।४७।।

आसीस वचनिका—कायम कमंध । व्रिद धजाबंध ।।
मौजाँ समंद । आचार यंद ।। [१]
दुरजोण माण । अरजणह बाण ।।
भुजबळी भीम । सूराति सीम ।। [२]
खट भाख जाण । तपतेज भाण ।।
विप्र गऊ पाळ । लीला भुवाळ ।। [३]
वीराधिवीर । हेळाँ हमीर ।।
मधकर सुतंन । करतब्बि क्रंन ।। [४] ।।४८।।

वचनिका — बासठि हजार फौजाँ रा भाँजणहार । [१] छ खण्ड खुरसाण रा विधूँसणहार । [२] मैमंत हाथियाँ रा मारणहार ।

४५. [४५] अस्ट [ईसट] (छ) ।
[४६] दीधदीध (घ); सहस (ग) ।
[४७] चौंसा चौसर (च); प्रचालइ (ग), पुंछाले (घ), पुंचाने (च) ।
४६. जुजिष्ठल (ग) (छ), युधठल (घ), ज्युधिष्टर (ङ); जित (च), जेम (ङ) (चं); बोल्या (क); जीमइ (घ), जीमै (च) ।
४७. गाजौ (च); द्वारौ (च); वाजौ (ग) (च); काइम (ग); यह गाहा (ङ) में लुप्त है ।
४८. [२] दुर्योधन (ङ); अंजन (ङ), अरिजन (च); भुजगली (घ); सुरताण (छ) ।
[३] विप्रांगुवाल (क), विप्रगोपाल (घ) (ङ) ।
[४] वीराति (क); करन (ग) ।
४९. [२] (च) में लुप्त ।

वहाँ तब उसने होम करवाया और अनेकानेक ब्राह्मणों से पाठ करवा कर इष्ट देवों का जप और आह्वान करवाया।

फिर कड़ाइयाँ चढ़वा कर अनेक विशिष्ट पकवान तैयार करवाये और कवियों को चारों ओर पंक्ति में बैठा कर भोजन करवाया। इस प्रकार उस विशाल पहुँचे वाले काले राजपूत ने कवियों को तृप्त किया ॥४५॥

युधिष्ठिर के यज्ञ के समान वहाँ अपार अन्न और घृत भरा पड़ा था। उससे हृदय में तुष्ट होकर कवि लोग आशीश देकर यों जयजयकार बोल रहे थे ॥४६॥

आपके द्वार पर गजराज गर्जना करें। विजयश्री के बाजे और नगाड़े बजें। और महाराजा का राज्य इन्द्र और समुद्र के समान कायम रहे ॥४७॥

वह कमधज चिरंजीवी हो जिसका विरुद ध्वजाओं के तुल्य ऊँचा है, जिसके आनन्द की लहरें समुद्र की सी हैं और जिसका आचरण इन्द्र का सा है। मान दुर्योधन का सा, बाण अर्जुन का सा, भुजाओं का बल भीम का सा है और जो शूरवीरता की सीमा है। षड् भाषाओं का ज्ञाता है, तप-तेज में सूर्य जैसा है, गो-विप्रों का पालक है, और लीलाकारी भूप है। वीराधिवीर है, हमीर जैसा तरंगी है, ऐसा मधुकर-पुत्र कर्ण के से कर्तव्यों वाला है ॥४८॥

बासठ हजार फौजों का भंजन करने वाला, छह खण्ड और खुरासान के यवनों का विध्वंस करने वाला, मदमत्त हाथियों को

४५. कराड़ि=करवाकर; भणाड़ि=पाठ करवा कर; ईसट=इष्ट। भुंजाई=भोजन करवा कर; कड़ाला=कड़ाइयाँ; वडाला=वड़े। चौसर=चतुर्दिक। पोखिया=तुष्ट किये।

४६. जुजिठल=युधिष्ठिर; छिलै=भरपूर हुआ; ध्राई=तुष्ट होकर।

४७. जैतसिर=जयश्री; सारिख=सदृश।

४८. व्रिद=विरुद; यंद=इन्द्र। सूराति=शूरता। भुवाल=भूपाल। हेलाँ=तरंग, गौरव।

[३] पातिसाहाँ रा विभाडणहार। [४] पातिसाहाँ रा पड़िगाहण। [५] गजराजाँ राजान के गजवाग। [६] अरिसाल। [७] विजाई माल। [८] लखदीयण। [६] जसलीयण। [१०] राजान कै राजा। [११] तपै महाराजा रयण। [१२] तिणि वेळा कपूर वोड़ा भाइयाँ उँबरावाँ कवीसुराँ कूँ दिया। [१३] दीवाण किया। [१४] सभा रूप कैसा। [१५] अैसा जैसा छत्तीस वंस वणाव करि बैठा राजेसुर। [१६] साहिब खाँन भगवान अमर सारिखा। [१७] अमर गांगावत गिरधर सारिखा। [१८] बारहठ जसराज जैसा कवेसर। [१६] तिजारा की बाड़ी फूल फगर। [२०] जळ कमळ हंस का बणाव। [२१] जाणै मानसरोवर सौरंभ की लहरि आवै। [२२] जवाधिजळहर गुणीजण गाया। [२३] रंग राग सुणाया। [२४] राजा महेसदास का जाया। [२५] इन्द्र सा निजरि आया। [२६] ॥४६॥

चांद्रायणौ—अैसा वंस छतीस दरग्गह उम्बरा।
सामँद चन्द दडिन्दक आरिख इन्दरा।
जोधाँरा बिच जोध बिराजै ज्यारका।
परिहाँ खागीबंध कमंध मधावत मार का ॥५०॥

४६. [५] पतगाहरा (ङ)। [६] गजराजा के गजवाग (क) (ग), गज-राजाराजान के गज-राज (घ), गजराज की गजवाग (च), गजवागाँ के गजवाग (छ)। [८] विभाई (ङ)। [१२] प्रतिपै (क); रैणसाह (क) (च), रयणसाह (ग) (ङ), रणसाह (घ)। [१३] भायां (क) (ग), भाया नै (ङ), भाइ (च), भायानुं (छ); कवीसुरानुं (ङ), कवेसुरीनुं (च), कवेसुराकुं (छ)। [१५] छभा (च), स···(छ); कैसी (ङ)। [१६] [जैसा] (क) (ख) (ग) (घ) (ङ) (ज) में लुप्त। [१७-१८] साहिबखांन भगवान अमर (क) (घ), साहिबखान अमर बोलिआ बहादर (ख) (ज), साहिबाखान भगवान अमर बोलिआ वहादर (ग), साहिबखान भगवान सारिखा अमर गांगावत सारिखा गिरधर (घ) (च), भगवान सरीखा अमर सरीखा गिरधरदास गांगावत सरीखा (ङ)। [१६] बारहठ जसराज सरीखा (ङ), जसराज सरजेहा कवेसर (घ)। [२५] महेसजाया (ख), महेसदासजाया (ग), महेसरा जाया (घ), महेसदास जाय (च)। [२६] सोजाणे (ग)।

५०. दडिन्दह (क), दण्ड आरखे (ग); जरका (ग); [परिहाँ] (क) में लुप्त।

मारने वाला, (शत्रु) बादशाहों का दलन करने वाला, बादशाहों का शरणदाता, गजराजों और राजाओं को बाँधने वाला, शत्रुओं को शालने वाला, विजय की माला वाला, लाखों का देने वाला, यश का लेने वाला, राजाओं का राजा, महाराजा रतन सप्रताप विद्यमान रहे। उसने उस समय कपूर-युक्त पान के बीड़े अपने बंधुओं, उमरावों और कवीश्वरों को दिये और दरबार किया। उस दरबार का रूप कैसा था ? ऐसा कि छत्तीस वंशों के क्षत्रियों से सज्जित होकर वह राजेश्वर बैठा। उसके पास साहिबखान, भगवान और अमर जैसे बहादुर। अमर गाँगावत गिरधर जैसे भी। बारहठ जसराज जैसे कवीश्वर भी। ऐसा लग रहा था मानो पोस्त की बाड़ी में फूल बिखरे हैं। अथवा जल, कमल और हंस एक साथ शोभित हैं। अथवा मानो मानसरोवर में सुगन्ध की लहर आ रही है। अथवा मानो जवाधि का बादल है। ऐसा गुणिजनों ने प्रशस्ति गायन किया। और रंगराग भी सुनाये। उस समय राजा महेशदास का पुत्र रतन इन्द्र जैसा दृष्टिगोचर हुआ ॥४६॥

छत्तीस वंशों के उमराव दरबार में ऐसे लगते थे मानो इन्द्र के यहाँ समुद्र, चन्द्र और सूर्य हों। जोधों के बीच में शत्रुहंता मधुकर-पुत्र (रतन) के कमंध (राठौड़) जोधा (योद्धा) ऐसे विराजमान थे, मानो कामदेव के सहायक वसंत आदि खड्ग बाँधे हुए हों। ॥५०॥

४६. विभाडणहर = दलन करने वाला। पडिगाहण = शरणदाता। गजवाग = हाथियों का मुँह बाँधने वाला। दीवाण = सभा, दरबार। कवेसर = कवीश्वर। तिजारा = पोस्त; फूल फगर = प्रफुल्लित। सौरंभ = सुगन्ध। जवाधि = जवासा; जलहर = बादल।

५०. दरगाह = दरगाह, दरबार। दडिन्दक = सूर्य; आरिख = सदृश। ज्यारका = जैसा। खागी-बंध = खड्ग धारी।

वचनिका — तिण वेळा दातार भूझार राजा रतन। [१] मूँछाँ करि घाति बोलै। [२] तरवार तोलै। [३] आगै लंका कुरखेत महाभारथ हुवा। [४] देव दाणव लड़ि मुवा। [५] च्यारि जुग कथा रही। [६] वेदव्यास वालमीक कही। [७] औ तीसरौ महाभारत आगम कहताँ उजेणि खेत [८] अगनि सोर गाजसी। [९] पवन बाजसी। [१०] गजबंध छत्रबंध गजराज गुड़सी। [११] हिंदू असुरायण लड़सी। [१२] तिका तो बात आय साकाबंध सिरै चढ़ी। [१३] दुइ राह पातिसाहाँ री फौजाँ अड़ी। [१४] दिली रा भर भारथ भुजे दिया। [१५] कमधज मुदै किया। [१६] वेद सासत्र बताया। [१७] सु अवसाण आया। [१८] उजेणि खेत। [१९] धारा तीरथ। [२०] धणी रो काम। [२१] खित्री रो धरम साचवीजै। [२२] लोहाँ रा बोह सेलाँ रा धमंका लीजै न दीजै। [२३] खाँडा री खटाखड़ि झटाझड़ि डंडाहड़ि खेलीजै। [२४] पातिसाँहा री गजघड़ा झड़ा ओझड़ाँ मारि ठेलीजै। [२५] पातिसाहाँ रे छत्र घाव कीजै। [२६] पुरजा पुरजा हुई पड़ीजै। [२७] तौ वैकुंठ चढीजै। [२८] क्यूँ बारहठ जसराज। [२९] हाँ महाराज। [३०] महाराज रा मनोरथ श्री महाराज पूरै। [३१] अखियात ऊबरै। [३२] महाराज रा मुँहडा आगै लडाँ। [३३] टूक टूक होय पड़ाँ। [३४] अतरा माहै साचौरा मछरीक। [३५] गाहिड़ रा गाड़ा। [३६] फौजाँ रा लाडा। [३७] काल्ही रा कळस। [३८] सती रा नाळेर।

५१. [१] वार [वेला] (च)। [२] मुंघाधी (च), मुंझा (च); घालि (क) (छ)। [३] के स्थान पर (छ) में कहाजु, (ग) में 'कहयौऊ' तथा [३] भी। [८] सुओ (ग); आगे [आगम] (क), आयो आगम (घ)। [९] जागसी (ख) (घ); आगम सोरंभ गजसी (च)। [११] पड़सी [गुड़सी] (ख); छत्रबंध गजबंध गजराज गुडसी (च)। [१२] साका बंधभी आय (क), तिकावात अहि साकाबंधवाह आवू (ख), वात साका बंधीवात (घ)। [२१] रा (च)। [२२] रा (ग) (च), साचदीजै (ख) (ग); [२३] [दीजै] (ख) में लुप्त; लीजै दीजइ (घ)। [२४] डंडेहडि (च) [२५] गज घड़ाभाजा-ऊझड़ा (घ), घड़ाभीड़ा औझड़ा (ङ); [झड़ा] (च) में लुप्त। [२९] क्यूँ कहो (ग), वारट (छ)। [३२] ऊगरै (क)। [३३] मुँह (च)। [३५] इतरै माहै साचौरौ (छ)। [३६] गाहिड रौ गाड़ौ (छ)। [३७] कुँआरी घडा रा गाडा (च), कुँआरी रो

उस समय दातार और योद्धा राजा रतन ने मूँछों पर हाथ रख कर और तलवार तोल कर कहा, "पहले लंका में और कुरुक्षेत्र में महायुद्ध हुए थे और देव-दानव भी लड़ कर मरे थे। उन की कथाएँ चार युगों तक रहीं और उन का वर्णन वेदव्यास तथा वाल्मीकि ने किया। और अब तीसरा महाभारत उज्जैन क्षेत्र में होने वाला है। तोपों में बारूद गर्जना करेगी। वायु तीव्रता से चलेगी। हाथियों और छत्रों वाले वीर तथा गजराज युद्ध में गिरेंगे। हिन्दू और यवन लड़ेंगे। यह तो शाका-बंध वार्त्ता शिर पर आ गयी है। दोनों धर्मों की बादशाही फौजें अड़ गयी हैं। दिल्ली का भार और संग्राम कमधजों की भुजाओं को सौंपा गया है। वेद-शास्त्रों ने जो अवसर बताया है वह आ गया है। उज्जैन क्षेत्र में खड्ग-धारा-रूपी तीर्थ में स्वामी के काम आना क्षत्रिय का धर्म है, यह सत्य सिद्ध करना है। तलवारों के प्रहार और सेलों के धमाके लेना और देना है। खाँडों की खटाखट-झटाझट से दण्डारास खेलना है। बादशाहों की गज-घटा की झड़ी को तलवारों के सीधे प्रहार से मार कर ठेल देना है। बादशाहों के छत्र पर घाव करना है। टुकड़े-टुकड़े हो कर गिर पड़ना है। तब वैकुंठ चढ़ना है। क्यों बारहठ जसराज ?" (उत्तर) "हाँ महाराज। आप के मनोरथ भगवान् पूरे करें। हमारी केवल कथा शेष रहे। हम लोग आप के सम्मुख लड़ें। टुकड़े-टुकड़े हो कर गिर पड़ें।" इतने में युद्धोत्साही सांचोरे वीर, अभिमान के समूह, फौजों के स्वामी, काली के कलश, सती के नारियल,

५१. घाति = रख कर। मुवा = मरे। सोर = शोरा, बारूद। गुड़सी = गिरेंगे। तिका = वह। पाँतिसाहाँ = बादशाहों, शाहजादों—औरंगजेब और मुराद। मुर्दे = सुपुर्द। साचवीजै = सच्चा सिद्ध करना है। वोह = प्रहार। झड़ा = झड़ी; ओझड़ाँ = सीधा वार। अखियात = कहानी (मात्र); ऊबरे = शेष रहे। मछरीक = युद्धोत्साही। गाहिड़ = अभिमान। लाडा = प्रिय स्वामी। काल्ही = काली।

[३९] सादूळरा सादूळ। [४०] भगवान अमर बोलिया बहादर। [४१] [अै तौ कहै] गोळाँ सर बाणाँ री मारि लोपि हाथियाँ रा कुंभाथळाँ खग छरा वजाड़ाँ। [४२] गज ढाल पाड़ाँ। [४३] पातिसाहाँ रा खासाँ झंडाँ जाडाँ थंडाँ आडाँ खंडाँ जायस्याँ। [४४] रूक पियाला पीयस्याँ पायस्याँ। [४५] चाचरि विहँडस्याँ विहँडायस्याँ। [४६] रिणखेत रै विखै रंगियै वाणासि मतवाळा ज्यूँ घूमताँ थकाँ हाथियाँ सूँ टल्ला खायस्याँ। [४७] महारुद्र नै सिर पेस कराँ। [४८] अपछरा वराँ। [४९] देवता स्याबास कहिसी। [५०] च्यार जुग बात रहिसी। [५१] इतरा माहै बोलियौ गिरधर गाँगावत। [५२] रावताँ पति रावत। [५३] पातिसाहाँ रा नर हैंवर कुंजर घड़ा पछाड़ाँ। [५४] चंद जसनामौ चाडाँ। [५५] इतरा माहै बोलियौ साहिबौ कुंभाणी। [५६] मुरधरा रौ अणी पाणी। [५७] [औ तौ कहै] माहरै तो भगवानदास बाघौत कहता। [५८] ॥५१॥

गाहा—अवसाण मरण खग धारा सामि कामि भंजियै देहा।
सोचित चित नित नित्तं पाइज्जै पुन्न रेहा ॥५२॥

वचनिका — अस औ तौ वड़ौ अवसाण आयौ। [१] ऊँडै द्रहि किलकिला ज्यूँ फूलधारा विचै उडि पड़ाँ। [२] पातिसाहाँ री फौजाँ सूँ लड़ाँ। [३] महाभारथ करि मराँ। [४] बगड़ी जोधाण ऊजळा कराँ। [५] इतरा माहै बोलियौ रासौ कुँवर। [६] दूसरौ मधुकर।

५१. लाडो (छ)। [४२] बाण गोलियां सरांरी (छ); (ग) प्रति में [४२] के 'खग....' के बाद से [४९] तक के स्थान पर यह पाठ है—'खग छला रा वजाडिस्यां। बिहंडाइस्यां। महारुद्रनूं सिर पेसी करां। अपछराँ वरां।' [४४] [झंडां] (ग) में लुप्त। [४५] रुक पाइस्या पीयस्याँ (क), रूक प्यालो पीवसनि प्याइस्यां (ग), रूक पियाला पीव पाइस्यां (च)। [४७] (क) में लुप्त। [४८] करस्यां। [४९] वरस्याँ। [५१] [च्यार जुग] (च) (ज) में लुप्त। [५२] इतरै बात करतां (क); (च) में [५२] से [५५] तक लुप्त। [५५] चंदनामो (क)। [५७] को [रो] (क) (छ)। [५८] कहतो (ग), कहै (च)।

५२. रेहाई (ग) (ज)।

५३. [१] उ अ (क), सुओ (ग) (ज), सो तो (घ)। [२] द्रह ज्युं (क)। [६] इतरै बात (क), इतरै मैं बात (ग)।

शार्दूल के सिंह-जैसे पुत्र बहादुर अमर और भगवान बोले—[वे तो कहते हैं] "गोलों, बाणों, शरों की मार की उपेक्षा करके हाथियों के कुंभस्थलों पर खड्गधारा बजायेंगे। हाथियों की ढाल गिरायेंगे। शाहजादों के प्रमुख झंडों की ओर विकट समूह को चीर कर जायेंगे और खंड-खंड होंगे। खड्ग के प्याले पीयेंगे और पिलायेंगे। शिर काटेंगे और कटायेंगे। रणक्षेत्र में बाणों और असियों के रंग में रँगे हुए मतवाले-से घूमते हुए हाथियों से भिड़ंत करेंगे। महारुद्र को शिर भेंट करेंगे। अप्सराओं को वरेंगे। देवता शाबाश कहेंगे। चार युग तक हमारी बात (कहानी) प्रसिद्ध रहेगी।" इतने में रावतपति रावत गिरधर गाँगावत बोला "बादशाह के नरों, कुंजरों, हयवरों के समूहों को पछाड़ेंगे और यावच्चन्द्र यशनामे में उल्लिखित रहेंगे।" इतने में साहिबखाँ कुंभाणी बोला, जो मुरुधरा की सेना की आब है। [वह तो कहता है] हमारे तो भगवानदास बाघौत यों कहा करता था ॥५१॥

"मरने का अवसर आने पर स्वामिकार्य के हेतु खड्गधारा से शरीर का भंजन करवा लेना चाहिए और नित्यप्रति इसी विषय का चिन्तन करते हुए इसे ही प्रमाणित रूप से पुण्य-रेखा मानना चाहिए ॥५२॥"

"इस लिए यह बड़ा अवसर आ गया है। गहरे दह में किलकिला पक्षी के समान हम भी फूलों की धारा जैसे युद्ध में उड़ पड़ें। शाहजादों की सेनाओं से लड़ें। महाभारत कर के मरें। (जोधपुर के अन्तर्गत) बगड़ी स्थान के राठौडों का नाम उज्ज्वल करें।" इतने में कुँवर रायसिंह बोला, जो दूसरे मधुकर के ही तुल्य था।

५१. जाडाँ = गहरे विकट; थंडाँ = समूह; रूक = तलवार। चाचरि = खोपड़ी; विहंडस्याँ = काटेंगे। विखै = प्रसंग, में। अणी पाणी = सेना की आब।

५२. पाइज्जै = पाइए, समझिए; रेहा = रेखा।

५३. ऊँडै = गहरे; किलकिला = पक्षी विशेष।

[७] [श्रौ तौ कहे] जळाबोळ रिण समंद माहे श्रसि जिहाज धरां। [८] किलंबां घड़ां मारि पारि करां। [९] मरां तौ अपछरां वरां। [१०] नहों तौ जीवित सिंभ हुइ ऊबरां। [११] बारहठ कहै बाप हो बाप [१२] बाप रै जोडै अतुळो बळ। [१३] भलो श्राड़ियौ बाळ धमळ। [१४] महाराज विमाह रै श्रागम मंगळ धवळ खंभाइची कीजै। [१५] पिण श्रौ महाभारथ रौ श्रागम। [१६] अेक वार सूरां पूरां रा अवसाणसिद्ध खित्रियां रा वडा राग माहे वडा दूहा गवाड़ौ। [१७] ज्यूं सूरां पूरां रा चाचरां रा केस चणणाइ नै ऊभा हुवै। [१८] पोरिस चढ़ै। [१९] सींग ब्रह्मण्ड अड़ै। [२०] कायरां रा धड़ा पड़ै। [२१] विहाणैं श्रात लोक तैं स्त्रग लोक जायस्यां। [२२] सूरां पूरां खित्रियां री बात सुणौ। [२३] श्रापणी ही केइ अेक सुणसी। [२४] वाह वाह बारहठजी भली कही। [२५] मन री लही। [२६] हुकम किया। [२७] जाँगडियै वडा राग माहै दूहा दिया। [२८] परिजाऊ दूहा। [२९] वेगडै सांड धवळ रा दूहा। [३०] अेकळगिड़ वाराह रा दूहा। [३१] मुञ्ज मारवणी रा दूहा। [३२] राव रिणमल रा दूहा। [३३] राव अमर रा दूहा। [३४] कल्याणमल रायमलोत रा दूहा। [३५] करण रामौत रा दूहा। [३६] तेजसी डूंगरसीयौत रा दूहा। [३७] जैमल पत्ता रा दूहा। [३८] जैता कूंपा रा दूहा। [३९] प्रिथीराज जैतावत रा दूहा। [४०] गांगा डूंगरौत रा दूहा। [४१] अखैराज सोनिगरा रा दूहा। [४२] नगै भारमलौत रा दूहा। [४३] अमरै धरमावत रा दूहा। [४४] ईसर जीवावत रा दूहा। [४५] सोभा साचौरा वीकमसी रा दूहा। [४६] अवर ही छत्तीस वंस अवसाणसिद्ध खित्रियां रा दूहा गाया अर सुणाया। [४७] ॥५३॥

५३. [१२] वारटक काहियौ (घ); वाप वाप (क), वाप (ग) (च), वाप रो वाप (च)। [१४] धवल (घ)। [१५] विवाहरू (घ); खंभाइती (क)। [१६] (क) में लुप्त। [१७] अेक अेक सो अवसारण (च); वड़ा वड़ा (च)। [१८] चरचरा (क); चणचणाइन (ग)। [१९] पोर (क)। [२१] थी [तैं] (ज)। [२२] [लोक] (च) में लुप्त। [२५-२६] बारहठजी नुं मनरी जही भली कही (ग), मनरी लही कही। [२७] हुकंक (च), कियौ (क)। [२८] जांगडियै नै (क) (छ)। [२९] परजीऊ (ग)। [३१] वारा रा (घ) (छ)। [३२] गजनमारवण (च)। [३५] कल्याणदास (क) (ग) (छ), कल्याण (च)। [३६] रामवाण (च)। [४१-४२] (च) में लुप्त। [४५] (क) (छ) में लुप्त। [४६] सांचोरा नै (छ) [४७] गाया सुणाया (च)।

[वह तो कहता है] "जल से परिपूर्ण रण-समुद्र में तलवार रूपी जहाज डाल दें। यवन-सैन्य को मार कर पार करें। यदि मारे जायें तो अप्सराओं का वरण करें। नहीं तो जीवित शंभु (क्षत-विक्षत) होकर निकलें।" तब बारहठ बोला "बाप रे बाप! पिता के तुल्य अतुल बलशाली स्वामि-पुत्र अच्छा उत्साहित हुआ। हे महा-राजा! विवाह का सा धवल मंगल हो रहा है अतः खम्माच राग का गान तो करवाइए ही। परन्तु यह महाभारत का आगम भी है अतः एक बार अपूर्व शूर-वीर अवसान-सिद्ध क्षत्रियों के बड़े दूहों का बड़े रागों में गान करवाइए, जिससे अपूर्व शूर वीरों के मस्तक आवेश में आकर ऊँचे हो जायें, पौरुष चढ़े, और सींग (शिखा) ब्रह्माण्ड में जा लगें। कायरों के बड़ गिर जायें। कल तो मृत्यु लोक से स्वर्ग लोक जायेंगे ही इस लिए अब अपूर्व शूर-वीर क्षत्रियों की बातें सुनें। क्योंकि बहुत से हमारी भी सुनेंगे।" (महाराज ने कहा) "वाह-वाह बारहठ जी! आपने मन के अनुकूल बहुत अच्छी बात कही।" (तब महाराज ने) हुक्म दिया। तो जांगड़ियों ने बड़े राग में दूहे कहे जो वीरोत्साह-जनक थे। वेगड़े सांड धवल के, एकलगिड़ वाराह के, मुञ्ज मारवणी के, राव रिणमल के, राव अमर के, कल्याणमल रायमलोत के, करण रामौत के, तेजसी डूंगरसिहोत के, जयमल पत्ता के, जैता कूंपा के, पृथ्वीराज जैतावत के, गांगा डूंगरोत के, अखैराज सोनिगरा के, नगा भारमलोत के, अमर वरमावत के, ईसर जीवावत के, चोभा सांचोरा वीकमसी के तथा अन्य छत्तीस वंशों के अवसान-सिद्ध क्षत्रियों के दूहे गाये और सुनाये ॥५३॥

५३. समुंदां=समुद्रों । चाढ़ियौ=उत्साहित हुआ; धनूं=स्वामी । विमाह=विवाह; [illegible]=उन्माद-राग । [illegible]=आंदोलित होकर । विहाणै=प्रातःकाल, कल । [illegible]=विदारक, जोश चढ़ाने वाले ।

दूहा—मारू भड़ चढिया मछरि करवा भारथ कत्थ ।
राग वडाळा वज्जियाँ सको संचाळा सत्थ ॥५४॥
जसवँत ग्रौरँग साह जब वेद कतेब वचाड़ि ।
बे छत्रपत्ति बहस्सिया रचि बीये दिन राड़ि ॥५५॥
सिलहाँ खानाँ ऊघड़ै बह भड़ कछै दुबाह ।
कटकाँ बिहुँ हूँकळ कळळ हुवै सनाह सनाह ॥५६॥
दळ सिणगार विरोळ दळ दावानळ दंताळ ।
दिया जसै ग्रौरँग दुवा छोडौ गज छंछाळ ॥५७॥

॥ अथ हाथियाँ रा बखाण ॥

छंद भुजंगी—उरं ग्रौंद्रके सास ग्रभ्यास ग्राणे ।
वडा जूह पूँतारिया पीलवाणे ॥ [१]
गँडा मारि वेसारिया नीठि गज्जं ।
रुग्रामाल फेरै करै झाडि रज्जं ॥ [२]
तियाँ चोपड़ै तेल सिन्दूर तन्नं ।
वयंडा वणावै घणूँ स्याम व्रन्नं ॥ [३]
नग्ड़ी भीड़ियाँ ग्रंग लग्गा निहंगं ।
जटा जूट संनाह जे कोड जंगं ॥ [४]
कसे पाखराँ चामराँ जूह काळा ।
वणे जाणि पाहाड़ हेमंग वाळा ॥ [५]
धजाँ फाबि नेजाँ गजाँ सीस ढल्लं ।
मग्थै उड्डिया जाणि गुड्डी महल्लं ॥ [६]

५४. मचरी (ग); कछ (क) (छ); सहुकोवाल्या (ग); वडाला [सचाळा] (च); सच्छ (क) ।
५५. वेसिया (ग); रवि (क) ।
५६. बहभड़ वह वइ (ग); कये (क); हुग्रैसग्रा (ग) ।
५७. हुग्रा [दुवा] (च) ।
५८. [१] उरंग (क) (ग), ग्रारंग (घ) ।
[२] बेसारिण्या (क); गज्जां (ग); रज्जां (ग) ।
[३] वयाड (ग) ।
[५] कालं (घ); वालं (घ) ।
[६] ढल्लां (ग); महल्लां (ग) ।

तब मारवाड़ के भटों को महाभारत के कृत्य करने के लिए उत्साह चढ़ा और बड़े राग के बजने पर समस्त दल चल पड़े ॥५४॥

तब जसवन्तसिंह और औरंगजेब ने क्रमशः वेद और किताब (कुरान) का पाठ करवाया और दूसरे दिन युद्ध के लिए दोनों छत्र-पतियों ने चुनौती दे दी ॥५५॥

सिलहखाने खोल दिये गये और भट तलवार कस कर चले। दोनों सेनाओं के सन्नाह-सन्नद्ध होने से कल-कल निनाद हुआ ॥५६॥

जसवंतसिंह और औरंगजेब दोनों ने दल के शृंगार, दलों को रौंदने वाले और विशाल दाँतों वाले दावानल तुल्य हाथी युद्धार्थ छोड़ दिये ॥५७॥

गज-वर्णन

फीलवानों ने काँपते हुए हृदय से श्वास को रोक कर हाथियों को पुचकारा।

फिर अंकुश मार कर तथा रूमाल फेर कर उनके कपोलों पर से धूल झाड़ते हुए बड़ी कठिनाई से उन्हें बैठाया।

फिर उनके शरीर पर सिन्दूर और तेल चुपड़ कर उन्हें घन-श्याम वर्ण बना दिया।

रस्सियाँ कसे हुए, कवचों से अत्यधिक सजे हुए और युद्ध-प्रिय वे हाथी आकाश को छू रहे थे।

पाखर कसे हुए चमर सहित हाथियों के काले यूथ ऐसे लगते थे मानो स्वर्ण के पहाड़ बने हों।

हाथियों के शीश पर नेजे, ध्वजाएँ और ढालें ऐसी फब रही थीं मानो महल के मस्तक पर पतंगें उड़ रही हों।

५४. सको = सब; सचाळा = चल पड़े।

५५. वचाड़ि = पढ़वा कर; बीये = दूसरे।

५६. सिलहाँ खानाँ = कवचागार; कछै = कसना; दुबाह = दुर्वह खड्ग।

५७. विरोळ = रौंदने वाले; दुवा = आज्ञा; छंछाळ = हाथी।

५८. औद्रकै = धड़कता है; पूंतारिया = पुचकारे; पीलवाणे = महावत। गँडा = अंकुश; वेसारिया = बैठाये; नीठि = कठिनाई से। वयंडा = हाथी। नाडी = रस्सी; भीड़ियाँ = कसी हुई; निहंग = आकाश; कोड = कामना। फाबि = सजी; गुड्डी = पतंग।

पटे ऊपटे मद्द धारा पटाळं ।
खळक्के गिरा मेर ते नीर खाळं ॥ [७]
प्रळै काळ छंछाळ छूटा पटाळं ।
क्रमै डारणा कारणा भूत काळं ॥ [८]
लुड़ै छाकिया काळ ज्यूँ डाण लग्गे ।
पखे पार ताणै जिके लोह पग्गे ॥ [९]
सझै झाड़ि उप्पाड़ि अैसा सनड्ढं ।
गढाँ पाड़ि वेछाड़ि औछाड़ि गड्ढं ॥ [१०]
कुलं अट्ठ चल्लै गिरं गज्ज काळा ।
मँडै इन्द्र जाणै घटा मेघमाळा ॥ [११]
फबै बग्ग पंती अगा दंत फौज्जं ।
गजाँ वाज वीजाँ खिँवै सीस गज्जं ॥ [१२]
कपोलं गजं चोल सिन्दूर केसं ।
ओपै इन्द्र धानंख जैसा अरेसं ॥ [१३]
तियाँ माँहि ऊभी वणै रेख तासं ।
पबै उप्परै जाणि फूले पलासं ॥ [१४]
दळाँ रोळ दन्ताळ अैसा दुगम्मं ।
जमं चालिया सामुहाँ जाणि जम्मं ॥ [१५]
रजी ऊमडै व्योम नूँ रोस रत्ता ।
धुवाँ धार चारक्खियाँ धत्तधत्ता ॥ [१६]

५८. [७] पटाला (क); मेरवीजाणि (क), मेरथी नीर (ग) ।
[८] क्रमी दासहा कारुहा (घ); काला (ग) ।
[९] जुझै [लुड़ै] (छ); डाल (क); तंगा (ग); लूग (घ); लाहपंग (छ),पगां (ग) ।
[१०] मझे (ग); ईसा (क), ईसी (छ); ऊछाडिवेछाड़ि (ग) ।
[११] कुलो (छ); ज [गज्ज] (ग); जूह (छ); मिले इन्द्रचाले (ग) ।
[१२] पंखी (ग), पंखा (छ); फौजां (क) ।
[१३] कंस (च); अरसं (च) ।
[१४] खवै (ग); फूली (क) (ग) ।
[१५] मेंस (ग) ।
[१६] रजीऊपड़ी (क), राजीव मंडे (ग), रजीउमरइ (घ); गोमान रोस (ग); व्येदुमं (छ); धारे (घ) ।

हाथियों की मदधारा उन के कपोलों से ऐसी उमड़ रही थी मानो मेरु गिरि से जल के नाले खलल-खलल करते हुए बह रहे हों।

ये मद झरते हुए हाथी ऐसे विचरण कर रहे थे मानो प्रलय-काल के दारुण कारण-भूत साक्षात् काल भगवान हों।

मद की धारा लगे हुए वे हाथी मत्त हो कर तलवार के रस में पागे हुए अपार छके हुए काल के समान झूम रहे थे।

वे वृक्षों को उपाड़ कर सन्नद्ध होते हुए ऐसे लग रहे थे मानो गढ़ों को उपाड़ कर और उठा कर गड्ढे में डाल रहे हों।

काले हाथी ऐसे चले मानो पर्वतों के आठों कुल चले हों अथवा मानो इन्द्र ने मेघमाला सजायी हो।

आगे गज-सैन्य के दन्त ऐसे फब रहे थे मानो बक-पंक्ति हो। उन के शीशों पर गर्जना कर के प्रहार करते हुए घोड़े ऐसे लग रहे थे मानो बिजली चमक रही हो।

हाथियों के कपोलों पर लाल सिन्दूर ऐसा शोभित हो रहा था मानो इन्द्र-धनुष हो।

उसके बीच में रेखा ऐसी बनी थी मानो पर्वत पर पलाश फूला हो।

ऐसे दुर्गम दाँतों वाले हाथी दलों को रौंदते हुए यों चले मानो यम के सम्मुख यम ही चले हों।

रोष के कारण वे आकाश में धुआँधार रेत उड़ा रहे थे और उनके महावत 'धत्तधत्ता' कह कर उन्हें हाँक रहे थे।

५८. पटालं = कपोल; खलवकं = बहते हैं। डारणा = दारुण। लुडै = झूमना; छाकिया = पूर्ण तृप्त, मत्त; पखे = पगे हुए। सनड्ढं = सन्नद्ध। अगा = आगे; बीजाँ = बिजली; खिंवै = चमकती हैं। चोल = लाल। तियाँ = उन। दुगम्मं = दुर्गम। रोसरत्ता = रोषाविष्ट; चारखियाँ = महावत।

रजी धोम सूँ वीँटिया गज्ज राजै ।
वडे अन्नडे जाणि रीँछी विराजै ।। [१७]
भयाणंक भैभीत सोभंत भारं ।
क्रमै जाणि आधी निसा अंधकारं ।। [१८]
इसा गज्ज घंटाळ घंटा अपारं ।
त्रिण्हे लोक कौतिक्क देखंत त्यारं ।। [१९]
दुवै फौज फब्बै गिरं गज्ज डाणै ।
उभै जाणि आडावळा खेत आणै ।। [२०]

।। अथ घोड़ाँ रा बखाण ।।

अेराकी वडा खैँगरू गात अेहा ।
बणावै कवी कत्थ श्रीहत्थ वेहा ।। [२१]
नळी जंत्र मै जासु वाखाण नक्खं ।
उलट्टा कटोरा वणे चत्र अक्खं ।। [२२]
उरं ढाल सारीख चौड़ा अलल्ला ।
भिड़ज्जाँ बाहु जंघ बे पक्ख भल्ला ।। [२३]
पुड़च्छी जियाँ तोछ पै कंध पूरा ।
सँग्रामं विखै हाम पूरन्त सूरा ।। [२४]
जळं अंजळं मुक्ख पीवंत जब्बं ।
उभै जोड़ि राजीव नासा उअब्बं ।। [२५]
सागळिग्राम चक्खैत अक्खै सरोसं ।
गिणै कान बे सारिखा सीहगोसं ।। [२६]

५८. [१७] सैं आवीटिया (क), वीटिराजराजै (ग), वांटिया (छ); जोणि (घ); वीछी (ग)।
[१८] वैभीत (च), सैभीत (छ); क्रमी (क)।
[२२] नखां (ग); ठलट्टा (क); अखां (ग)।
[२३] भेला (छ)।
[२५] जलाँ अंजली (क) (ग) (ज), जली अंजली (छ)।
[२६] सीहकोसं।

रज के धूम से वेष्टित हाथी ऐसे शोभित हो रहे थे मानो बड़े पर्वत पर रीछ विराजमान हों।

अथवा मानो भयानक आधी रात में भयभीत अन्धकार भाग रहा हो।

गजघंट और अन्य अपार घंटे ऐसे बज रहे थे कि तीनों लोक उन का कौतुक देखने लगे।

दोनों फौजों के मदमत्त पर्वत तुल्य हाथी ऐसे फब रहे थे मानो दोनों सेनायें रणक्षेत्र में आरावली पर्वत को ले आयी हों।

वाजि-वर्णन

विशाल-काय ऐराकी घोड़े थे जिन्हें विधाता ने अपने श्री-हस्त से बनाया था। ऐसा कविजन वर्णन करते हैं।

उनके नख ऐसे थे मानो बन्दूक के यन्त्रों से युक्त उलटे कटोरे हों।

उन घोड़ों के विशाल वक्ष ढाल सरीखे थे और उनकी दोनों ओर की (आगे तथा पीछे की) बाहु और जँघायें सुन्दर थीं।

उनके पूरे कन्धे और पृष्ठ भाग युद्ध के समय शूरों को सन्तुष्ट करने वाले और उनकी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले थे।

वे जब जल की अंजलि मुख से पीते थे तो उनकी दोनों नासिकाओं की जोड़ी अद्भुत लगती थी।

उनके सरोप नेत्र शालिग्राम से लगते थे और दोनों कान स्याहगोश के से गिने जा सकते थे।

५८. वींटिया = वेष्टित; अन्नड = पर्वत पर। डाण = दान, मद; आडावला = आरावली पर्वत। खैगरु = घोड़े; वेहा = विधाता। वाखाण = बखाने जाते हैं। अलल्ला = घोड़े; भिड़ज्जां = घोड़े। पुडच्छी = पीठ। अंजलं = अंजलि; राजीव = राजि; उअब्बं = अद्भुत। चक्खैत = आँखें; सीहगोसं = पशु विशेष।

विडंगाँ वणी द्रूमची केस वाळी ।
भड़ाँ भूप राजी हुवै रूप भाळी ।। [२७]
जॅगम्मं पसम्मं मुखंमल्ल जेही ।
दिपै जाणि आरीस सारीस देही ।। [२८]
विणा रेह तेजाळ बंका विडंगं ।
कवाणं गुणं डाणि झल्लै कुरंगं ।। [२९]
झिलै राग वागाँ मुठी वाउ झल्लै ।
चतुर्वाह रा रत्थ ज्यूँ पत्थ चल्लै ।। [३०]
धणी उप्परै लूण वारंत धज्जं ।
गिरावै जिके आठुवाँ पाणि गज्जं ।। [३१]
अपा औंद्रकै अप्प छाया अपारं ।
धसै धोम साम्हा जिके फूल धारं ।। [३२]
सुणी हाक साम्हाँ गजाँ दंत सेलै ।
खगाँ झाट थाटाँ विचै डाणि खेलै ।। [३३]
करावै हुवाँ टूक पै घाव कत्ती ।
छिके अंत्र पाड़ै गजाँ चाढ़ि छत्ती ।। [३४]

॥ अथ सूराँ पूराँ सिरदाराँ रा वखाण ॥

तुरी त्यारि कीया कसे जीण तंगं ।
बणावे सिरी पाखराँ सार वंगं ।। [३५]
सभै वंस छत्तीस हिंदू समत्थं ।
करेवा महासूर भारत्थ कत्थं ।। [३६]

५८. [२७] वरणे (ग); घुमता [द्रूमची] (च) ।
[२८] जास आरास (च) ।
[२९] रहे (क) ।
[३०] यह चरण (छ) में लुप्त; [पत्थ] (ग) में लुप्त ।
[३१] उवारंति (ग); आरुवाँ (छ) ।
[३३] थाटै (क) ।
[३४] काकियाँ छिपाडै (ग) ।
[३५] उहे [कसे] (च) ।
[३६] समच्छं (ग); कच्छं (ग) ।

घोड़ों की केश वाली द्रुमची ऐसी बनी थी कि उसके रूप को देखकर राजा लोग तथा भट लोग प्रसन्न हो जाते थे।

उस की मखमल और ऊन ऐसी जगमगाती थी मानो दीपक प्रकाशित हों।

(रेखायें बने हुए) अनुपम तेजस्वी और बाँके घोड़े ऐसे लगते थे मानो धनुष की डोरी से पकड़े हुए हरिण हों।

उनकी रागवागों को मुट्ठी में पकड़े हुए वीर ऐसे लगते थे मानो श्रीकृष्ण के रथ में अर्जुन हों।

घोड़ों के स्वामी अपने घोड़ों पर ध्वजायें लिये हुए नमक वार रहे थे और गर्जना करते हुए अपने घोड़ों के अग्र भाग पर डाल रहे थे।

घोड़े अपने आप ही अपनी ही छाया को देख कर विचलित हो रहे थे और फूल-धारा के समान धुएँ के सम्मुख युद्ध-भूमि में धँस रहे थे।

वे हाक सुन कर गजदन्तों, सेलों, खड्गों आदि के समूह के बीच घुस कर दाँव खेल रहे थे।

टुकड़े हो-हो कर अनेक घाव करवा रहे थे और मत्त से हो कर हाथियों की छाती पर चढ़ कर उसे चीर-फाड़ कर उन की अँतड़ियाँ निकाल रहे थे।

वीर-वर्णन

घोड़ों को तैयार किये हुए, जीन और तंग कसे हुए, लोहे और राँगे के पाखर सजाये हुए, पुनः महाभारत की सी कथा करने के लिए छत्तीस वंशों के हिन्दू क्षत्रिय सजे हुए थे।

५८. विडंग = घोड़ा; भाली = देखकर। जंगम्मं = जगमगाती है; पसम्मं = ऊन; मुखंमल्ल = मखमल। विरण = बिना; तेजाल = तेजस्वी; झल्लै = पकड़े। वाउ = वायु। आठुवाँ = घोड़े का अग्रभाग। कत्ती = कितने ही, अनेक; छत्ती = वक्ष। जीरण = जीन; तंग = जीन कसने का पट्टा; पाखरां = झूल; सार = लोहा; बंगं = राँगा। कत्थं = कथा।

ध्रुवाँ धारणा चित्त अैसा सधीरं ।
वडाळा बहै व्रिद्द वीराधिवीरं ।। [३७]
पड़ै अग्गि माँ उड्डि जेहा पतंगं ।
अाफाळै अणी उप्परा धारि अंगं ।। [३८]
जग्ते काळ नूँ चाळ सूँ झाळि जुट्टै ।
तरूवार ज्याँ तेज रा ताप तुट्टै ।। [३९]
मरेवा करै कोड भारत्थि मन्नं ।
त्रिणे मेल्हिया प्रज्जळै झाळि तन्नं ।। [४०]
पडंताँ दियै अब्भ थंभा प्रचंडं ।
खळाँ मारि खंगे करै खंड खंडं ।। [४१]
मरंता न धारै महाजुद्ध माया ।
करै काच सीसी जिसी टूक काया ।। [४२]
सदाई लगै खाग नै त्याग सूरा ।
पखै जे प्रिथीनाथ भूपाळ पूरा ।। [४३]
पर त्री न भेटै गऊ विप्र पाळै ।
चलै गत्ति वेदो खित्री ध्रम्म चाळै ।। [४४]
इन्द्री पंच जीपै महा सूर अेहा ।
जगज्जेठ जोधा हणूमान जेहा ।। [४५]
न भाखै अली जीह नाकार नाणै ।
जुड़ेवा खित्री ध्रम्म आचार जाणै ।। [४६]

५८. [३७] धुए (क), धुवा (ग), ध्रू (छ); भारणी (ग) ।
[३८] जेही [जेठा] (च); आगडे (छ); आफलै (छ) ।
[३९] संभालि (क); ताव (क), ताराषि (ग) ।
[४०] (क) (ग) (छ) में लुप्त; प्राजलै (च) ।
[४१] (क) (च) में लुप्त ।
[४२] जिही (क) (च) (छ) ।
[४४] ध्रम [विप्र] (क), वलै (छ) ।
[४५] पीव [पंच] (च) ।

उन की ध्रुव धारणा थी और उन के चित्त में अति धैर्य था। वे वीराधि वीरों के वड़े विरुद वहन करते थे।

वे अग्नि में पतंग के समान सेना के ऊपर गिर पड़ते थे और अंगों में जोश धारण किये हुए थे।

वे जाते हुए काल के सम्मुख चल कर उसे पकड़ लेते थे और लड़ने को जुट जाते थे। तलवारें उन के तेज के प्रताप से टूट जाती थीं।

वे युद्ध में मरने की कामना करते थे। वे अपने शरीर को प्रज्वलित अग्नि की ज्वालाओं में डाल देते थे।

वे प्रचंड आकाश को गिरने से रोके हुए थे। दुष्टों को खड्गों से मार कर खंड-खंड कर रहे थे।

महायुद्ध में लड़ कर मरते हुए वे माया धारण नहीं करते थे और शरीर को काच की शीशी के समान टुकड़े-टुकड़े कर देते थे।

वे सदा खड्ग से प्यार करते थे और त्याग में शूर थे। ऐसे अपूर्व वीर पृथ्वीनाथ भूपाल के पक्ष में थे।

वे पर-स्त्री-गमन नहीं करते थे। गो-विप्रों के पालक थे। वेद-मार्ग पर चलते थे और क्षात्र-धर्म मानते थे।

वे ऐसे महाशूर थे कि पाँचों इन्द्रियां को भी जीत लेते थे। वे हनुमान जैसे संसार के वड़े योद्धाओं में थे।

वे असत्य जीभ पर भी नहीं लाते थे और 'न' करना तो जानते ही नहीं थे। क्षत्रिय-धर्म का आचरण करना अर्थात् भिड़ना ही जानते थे।

५८. आफालै=आवेश में आते। जुट्टै=भिड़ते। कोड=कामना; मेल्हिया=डाले; प्रज्जलै=प्रज्वलित अग्नि। पखै=पक्ष में। पर त्री=परस्त्री। जीपै=जीतते हैं; जगज्जेठ=संसार में वड़े। नाणै=नहीं लाते।

समत्था इसा ऊँडळा आभ साहै ।
गजाँ दंत तोड़ै रिमाँ थाट गाहै ।। [४७]
पचारे ग्रहे वाघ रैणा पछाड़ै ।
भिड़ंताँ गजाँ भीम जेही भमाड़ै ।। [४८]
न भागे जिके जुद्ध भागाँ न मारै ।
सरीराँ हुवाँ खंड पिंडाण सारै ।। [४९]

।। अथ मुगलाँ रा वखाण ।।

बळट्ठं दुअट्ठं हठाळं बँगाळं ।
चकत्था इसा चालिया काळ चाळं ।। [५०]
भयाणंक चीबा जिके रोम भूरा ।
पखे पार बीबा हिलै थट्ट पूरा ।। [५१]
प्रळंबा मुखी रुक्ख चक्खी परक्खी ।
भुजाँ जम्म जेहा वळी स्रब्ब भक्खी ।। [५२]
मरोड़ै गजाँ कंध तोड़ै मरद्दं ।
रहच्चै जिसा सिंघ मुक्की रवद्दं ।। [५३]
कसीसै गुणं त्रीस टंकी कबाणं ।
बळी भीम बत्थं कळी पत्थ बाणं ।। [५४]
छरा दुच्छरा मेच्छ ले मद्द छक्कं ।
हजाराँ मुहाँ बाथि ह्वै वीर हक्कं ।। [५५]
गिरं कंध अंधा ह्रिदै अग्गियाणं ।
मरै मारि जाणै जिके अब्भिमाणं ।। [५६]

५८. [४८] जेहा (ग) ।
[४९] भावे (च), भाजै (छ) ।
[५०] दुचट्ठां (ग) ।
[५१] जकां (क), लंका (छ) ।
[५२] मुख मुख चखं (च), मुखी सुख (छ) ।
[५३] त्रोडै (च); रहच्चो (च) ।
[५४] कोसीस (ग) ।
[५५] मुखं वाथ हुवै (ग), मुहे वाघ ह्वै (च) ।
[५६] गिड़ अदा (च); रिदै (क) (ग), रचै (च); जिकू (क) ।

ऐसे आकाश को उलट देने वाले गहरे समर्थ वीर शोभित थे जो गज-दन्तों को तोड़ देते थे और शत्रु-समूह का मर्दन कर रहे थे।

उत्तेजित होने पर घोड़ों की बाग पकड़ कर राजाओं को पछाड़ देते थे तथा भिड़ते हुए हाथियों को भीम के समान घुमा देते थे।

वे स्वयं भागते नहीं थे और युद्ध से भागते हुओं को मारते नहीं थे। उनके समग्र शरीर खंड-खंड हो रहे थे।

मुगल-वर्णन

बलिष्ठ, दुष्ट और हठीले बंगाल जाति के चग़ताई यवन ऐसे चले मानो काल चला हो।

वे यवन भयानक और चित्र-विचित्र भूरे बालों वाले थे और उनके पक्ष के पूरे-के-पूरे समूह हिल रहे थे।

उनके मुख लम्बे थे और नेत्र देखते ही खा जाने वाले थे। भुजाएँ यम की सी थीं और वे सर्वभक्षी थे।

वे यवन मत्त गजों को मरोड़ देने वाले और उनके कन्धे तोड़ देने वाले थे। सिंहों को वे मुक्के से मार डालते थे।

वे तीस टंकार वाले धनुष की डोरी को कसते थे और बाण चलाने में कलियुग के अर्जुन और भुजबल में भीम थे।

वे मदमत्त म्लेच्छ एक-धारी और दुधारी तलवारें लिये हुए थे और हजारों मुखों से वीर हाक कर रहे थे।

उनके कन्धे और हृदय अज्ञान और अंधकार से आच्छन्न होकर ऐसे गिर रहे थे मानो विजित होकर अभिमान मर रहा हो।

५८. ऊँडला = गहरे; रिमाँ = शत्रु। पचारे = उत्तेजित होने पर; भगाड़ै = घुमाते हैं। पिंडाण = शरीर के अंग। बलट्ठं = बलिष्ठ; दुअट्ठं = दुष्ट; बँगाल = यवन विशेष; चीबा = चित्र-विचित्र; बीवा = यवन। चक्खी = चक्षु वाले; परगली = भक्षक। रहच्चै = मारते। गुणं = प्रत्यंचा।

उंधे पाघड़े काळ रूपी असल्ली ।
बोले पारसी अेरसी गल्ल बल्ली ।। [५७]
करै पंच निव्वाज वाचै कुराणं ।
कुळा ध्रम्म रत्ता कसंता कबाणं । [५८]
खुराकाँ त्रबाकाँ तग्तं माल खावै ।
भली चीज प्रित्थी जिकी मंन भावै ।। [५९]
जरी बाफ नीलंक जामा जुड़ावै ।
वपे अंन अंनेक धाराँ बणावै ।। [६०]
प्रिथी रा लियै भोग अैसा प्रचंडं ।
खगाँ मारि डंडे जिके नव्व खंडं ।। [६१]
हजारी सदी पंच सद्दी वि सद्दी ।
जगज्जेठ जोधा मिळे नामजद्दी । [६२]
परं भोम धुंसे जिके आप प्राणं ।
वडा जुद्ध रा बंध जाणै विनाणं ।। [६३]
हणै मारि पाड़ै पंखी वोम हूंता ।
साँहे चाळि सूँ जागवै काळ सूता ।। [६४]
जळै आपरै रोस अैसा जुअंनं ।
त्रिणा मात्र जाणै धणी कामि तंनं ।। [६५]
सबद्दाँ जिके वेध धानंख साधी ।
बळट्ठं हणै बंगडी बाळ बाँधी ।। [६६]

५८. [५८] कुरां (छ); कसीसै (च), कसंती (छ) ।
[५९] तबांक (ग); जिक्यूं (च) ।
[६०] जरब्बाफ (क) (छ) ।
[६१] नत्र (च) ।
[६२] से [६५] तक (ग) प्रति में नहीं है पर हाशिये पर बाद में लिखा हुआ पाठ है जिसके पाठांतर यहाँ [ ] में दिये गये है ।
[६२] दसंपंच सद्दी (च); [त्रिसद्दी (ग)] ।
[६३] परब्भूम (क); जोधरी (क) ।
[६४] पीडै (क), [बाणपाडै (ग)]; साही (क) ।
[६६] जकूं (छ); खानंख (ग); कव्वड़ी [वंगडी] (क) ।

वे उलटी पगड़ियाँ बाँधे हुए थे और असली कालरूप थे। वे गलवल करते हुए-से पारसी बोल रहे थे।

वे पाँच नमाज और कुरान पढ़ते थे। धनुप खींचते हुए कुल-धर्म में रत रहा करते थे।

पृथ्वी में जो भी मनभायी अच्छी चीज मिलती उसी को वे भोजन-भट्टों की तरह अपनी खुराक बनाते थे।

वे शरीर पर जरी, वाफ, नीलंक आदि के जामे पहनते थे जिनमें अनेक धानी रंग की धारियाँ होती थीं।

पृथ्वी भर के भोग उनके पास थे और वे ऐसे प्रचण्ड थे कि उन्होंने नवों खण्डों को तलवार की मार से दण्डित कर दिया था।

वे नामधारी संसार के बड़े योद्धा हजारी, सदी, पंच सदी और दो सदी अधिकार पाये हुए थे।

वे अपने प्राणों को त्याग कर भी शत्रु की भूमि में धँस जाते थे, और बड़े-बड़े युद्धों के बंधों और व्यूहों को जानते थे।

वे आकाश से भी पक्षियों को मार कर गिरा देते थे और जब सम्मुख चलते थे तो मानो सोया हुआ काल जग जाता था।

वे ऐसे जवान थे कि अपने ही जोश की ऊष्णता से जले जा रहे थे। स्वामी के कार्यार्थ शरीर त्यागना मात्र जानते थे।

वे शब्द-वेधी धनुप की साधना जानते थे, और वे बलिष्ठ वीर बाल से बँधी बँगड़ी का भी निशाना मार सकते थे।

५८. पावड़ै=पगड़ियाँ; गल्ल-वल्ली=गलगल ध्वनि में बातचीत। रत्ता=अनुरक्त। अवाकां=भोजन-भट्ट; तातं=ऊष्ण। जरी, वाफ, नीलंक=वस्त्र विशेष; वपे=शरीर; अंन=वान। डंडे=दंडित करते हैं। नामजद्दी=नामधारी। विनाणं=व्यूह विधान। साँहे=सम्मुख। जुअंनं=युवा। बंगडी=चूड़ी, छल्ला।

कसै हाथळाँ टोप मोजा झगल्लं ।
जमद्दाढ वामै जिकै खग्ग ढल्लं ।। [६७]
गुपत्ती कती संगि गद्दा गुरज्जं ।
कसै आवधं त्रीस छै जुज्झ कज्जं ।। [६८]
भुथाणं जुवाणं कबाणं सभल्लं ।
मिळै मीरजादा इसा जुज्झ मल्लं ।। [६९]
बिन्हे फौज फौजाँ धणी चत्रवाहं ।
सझै सार आवद्ध लीधाँ सनाहं ।। [७०]
बिन्हे साह राजा बिन्हे नेत बाँधै ।
वणी फौज देखे घणी सोह वाधै ।। [७१]
जैं जै कार जीहा हरे राम जप्पै ।
असव्वार हूवा मुछाँ पाणि अप्पै ।। [७२]
दियाँ हाथ दाढी दिढं गाढ दक्खै ।
इलल्ला इलल्ला इलल्लाह अक्खै ।। [७३]
उजेणी महासूर है थाट आणे ।
जुड़ेवा चढ़े देव दाणव्व जाणे ।। [७४]
चकत्थाँ कमंधाँ रचे वीर चाळा ।
वणे जाणि भारत्थ पारत्थ वाळा ।। [७५] ।।५८।।

दूहा—कैरव जिम आया कमँध पाँडव जिम पतिसाह ।
याँ हरि नाम उचारियौ वाँ रहिमान अलाह ।।५९।।
अकबर हर जुजिठळ अजन कमँध दुजोण करंन ।
औरंगसाह मुराद वे राजा जसौ रतंन ।।६०।।

५८. [६८] छत्रिसे (क), झुझ छत्रिस (ग), कवसे छत्रिसे (छ) ।
[६९] कबाणं जुवाणं (ग) (छ) ।
[७१] साहजाद (क) ।
[७२] जीजीकार (ग); हरी (ग) (छ) ।
[७३] दाढां व्राढां गज्जं (क), चढे गढ़ (ग) (छ); अलाह अलाह अलाह (ग), इललाह इललाह (च)
[७४] उव्रेणी (क); भारच्छ पारच्छ (क) ।
५९. पींडव (क); राम (क) (छ); उवां (क) (ग) (छ) ।
६०. जुधिठल (क), युजिष्टल (ग); दुरजोध (ग), दुजोअण (छ); उवै (ग); रिधि (छ) ।

वे दस्ताने, टोप, मोजे और अस्थि-कवच कसे हुए थे और चलाने के लिए जमदाढ, खड्ग तथा ढाल लिए हुए थे।

गुप्ती, कर्तरी, साँग, गदा, गुरज आदि छत्तीस आयुधों को वे युद्धार्थ कसे हुए थे।

तरकस, कबाण तथा भालों वाले ऐसे युद्धमल्ल जवान मीरजादे भिड़ गये।

दोनों फौजों के चतुर स्वामी तलवारों और आयुधों को लेकर सन्नाह से सज्जित हुए।

दोनों ओर शाहजादों के और राजा के दोनों झंडे बँधे हुए थे। सज्जित चतुरंगिणी सेनायें बहुत अधिक शोभित दिखायी पड़ रही थीं।

सवार अपनी मूँछों पर हाथ रख कर जीभ से जय-जय-कार बोल रहे थे।

दाढ़ी पर दृढ़ता से हाथ रखे दिखायी देने वाले वे वीर इलल्ला इलल्लाह बोल रहे थे।

उज्जैन में महाशूरों और घोड़ों के समूह ऐसे आये मानो देव दानव युद्धार्थ चढ़े हों।

मुगलों और राठौड़ों ने वीर चर्चा (युद्ध) रची मानो अर्जुन वाला महाभारत ही हो ॥५८॥

कौरवों के समान कमधज आये और पांडवों के समान शाहजादे। इन्होंने 'हरि' नाम का उच्चारण किया और उन्होंने 'रहमान' और 'अल्लाह' का ॥५९॥

अकबर के वंशज—औरंगजेब और मुराद—युधिष्ठिर और अर्जुन जैसे थे तो कमधज—जसवन्तसिंह और रतनसिंह—दुर्योधन तथा कर्ण जैसे ॥६०॥

६०. क्रगल्लं = अस्थि-कवच; वामै = चलाते। त्रीस छै = छत्तीस। चन्नवाहं = चतुरंगिणी। नेत = झंडा; सोह = शोभा। दक्खै = दिखते हैं; अक्खै = कहते हैं। है थाट = हय-सेना; जुड़ेवा = भिड़ने।

कवित्त—हिंदुवाण तुरकाण करण घमसाण कड़क्खै । [१]
सझि कबाण गुण बाण दळाँ प्रारँभ बळ दक्खै । [२]
भड़ भिडज्जं गज धज्ज घड़ा चतुरंग कसस्सै । [३]
सिंधुव सद्द रवद्द नद्द नीसाण निहस्सै । [४]
चत्रवाह साह दोय राह चढ़ि सझि फौजाँ दोवै समथ। [५]
विचि झंड थंड मंडे वडा करिवा भारथ अेम कथ । [६] ।।६१।।

साख साख मिळि भाख लाख लाखीक लसक्कर । [१]
च्यारि चक्क नव खण्ड हिलै फौजाँ गज डंबर ।। [२]
कसमस्सै कौरम्म सेस नागेन्द्र सळस्सळि । [३]
सात समँद गिरि आठ ताम धर मेर टळट्टळि ।। [४]
करि कोप दळाँ प्रारँभ कहर धेंधिगर आगै धरै । [५]
माँडियौ मुगल्लै मारुवै रिण औरँग जसराज रै ।। [६] ।।६२।।

वचनिका—इणि भाँति रा घोड़ा असवार आगि व्रजागि माहै ऊडि पड़ै । [१] सिर पड़ियै लड़ै । [२] हाथियाँ रै दाँत चढै । [३] हिंदू मुसळमाण । [४] नर समंद खुरसाण । [५] च्यारि चक्क नव खंड प्रिथी रा जगजेठ जोधार जमदूत राजेन्द्र जोगेन्द्र रूप करि उजेणि खेत नर हैवर धेंधिगर चौदंत हुवा । [६] चतुरंग फौजाँ बौहरंग वानाँ किणि भाँति सूँ व्रिराजमान दीसै । [७] जाणे अढार भार व्रनसपति फूलि फूलि रही । [८] दीठाँ ही ज वनि आवै । पिणि न जाय कही । [९] हो भाई भाई अेकणि रित रा कासूँ । [१०] अेकणि दिहाड़ै छह रित नवरस निजर आवै । [११] कहि दिखावै किणि

६१. [१] करुण (ग) ।
[२] घबाण (च); दक्खी (ग) (छ) ।
[३] भीड़ युद्ध रोचल कसस्से (ग) ।
[६] कच्छ (ग) ।

६२. [२] हल्ल (ग), हिलि (छ) ।
[५] करियां दलां (च); धंधेकर (ग) ।

६३. [१] ऊमड़ि (ग) । [३] हाथी रै (ग) (च) (छ); (च) में [२] [३] का क्रम विपरीत । [६] घेधंकार (ग) । [८] झिलि (ग) । [१०] रौ (ग) । [११] दिन मैं (ग), दिन (च); रति (क); नदरि (क), नदिर (छ) ।

हिन्दू और तुर्क घमासान युद्ध करने के लिए दाँत पीसने लगे। कबाण, प्रत्यंचा और बाणों से सज कर सेना के बल-प्रदर्शन का प्रारम्भ करने लगे। भटों, घोड़ों, गजों और ध्वजों की चतुरंगिणी सेना कसमसाने लगी। यवनों के नगाड़ों से सैंधवी रागिनी में शब्द और नाद होने लगा। दोनों धर्मों के चतुर राजा और शाहजादे—दोनों ही—समर्थ चतुरंगिणी सेनाएँ सजाने लगे। उनके बीच में झण्डों के बड़े समूह शोभित हुए। ये सब महाभारत की सी कथा करना चाहते थे ॥६१॥

लाखों अमूल्य घोड़ों वाले भिन्न-भिन्न शाखा के वीरों की सेना एकत्र भासित हुई। चारों दिशाएँ और नवों खण्ड फौजों और गजों की घटा से काँपने लगे। कूर्म कसमसाने लगा। नागराज शेष थरथराने लगा। सातों समुद्र और आठ पर्वत-कुल तथा मेरु सभी धरा पर टूट कर गिरने लगे। सेनाओं ने क्रुद्ध होकर कहर आरम्भ कर दिया जिसमें हाथियों की सेनाओं को आगे रखा। इस प्रकार मुगल औरंगजेब और मारवाड़ के जसवन्तसिंह ने युद्ध छेड़ा ॥६२॥

इस प्रकार के घुड़सवार वज्राग्नि और अग्नि में उड़-उड़ कर गिरते हैं। शिर गिरने पर्यन्त लड़ते हैं। हाथियों के दाँतों पर चढ़ जाते हैं। नर-समुद्र खुरासान तक के हिन्दू और मुसलमान, चारों दिशाओं और नवों खण्डों के पृथ्वी भर के महान योद्धा लोग यमदूतों के समान राजेन्द्र और योगीन्द्र रूप धारण करके आये हैं और उज्जैन क्षेत्र में नरों, गजों और अश्वों का रूप धारण कर भिड़ गये हैं। चतुरंगिणी फौजें अनेक रंग के बानों से सजी कैसी विराजमान दीखती हैं। मानो अष्टादश वन की वनस्पतियाँ वसन्त ऋतु पाकर फूल गयी हों। केवल देखने से ही बात समझ में आ सकती है। कही नहीं जा सकती। अरे भाई एक ऋतु ही कैसे है। एक ही दिन में नव रस और षड्

६१. कड़वखै = दाँत पीसते हैं। सद्द = शब्द। करिवा = करने को।

६२. भाख = कहते हैं; लाखीक = लक्ष मूल्यधारी; लसक्कर = सैनिक। टलट्टलि = टूटना। कहर = महाकोप; पेंधिगर = हाथी।

६३. व्रजागि = वज्राग्नि। चौदंत = चार दाँतों वाले। दीठां = देखने। पिरिए = पर। दिहाडै = दिन।

भाँति। [१२] आराबाँ आतस झाळ। [१३] ऊन्हाळा प्रळै काळ। [१४] सर कायर सूका। [१५] सूर धीर निवाणे जळ ढूका। [१६] कहि दिखाई उगति। [१७] आ तो ग्रीखम रित। [१८] मद धाराँ वरसताँ थकाँ गज डंबर नीसाण गाजै। [१९] वीजळी आँकुस विराजै। [२०] ग्रिध चात्रिग वीर घंट दादुर बोलै। [२१] मुगल लाल ममोळा सा दिखावै। [२२] वरिखा रित वरणी। [२३] सरद रित कहणी। [२४] रिण समंद माहै सूर कमळ विकसि विराजमान हुवा। [२५] चंदा जेही चंदवदनी अपछरा सोळह कळा सुधा नेह संपूरण उदित हुई। [२६] कैसी। [२७] आसोज की पूनिम सरद रित जैसी। [२८] ऊजळी फौजाँ ऊपराँ ऊजळाँ भालाँ रा डम्बर भळळाट करि जगा जोति जागी। [२९] जाणै बरफ रा टूंक हेमाचळ पहाड़ माथै विराजमान हुवा। [३०] हेमंत रित लागी। [३१] सिसिर रित जागी। [३२] रूक रहिळ वागी। [३३] कायराँ नूँ ठंड लागी। [३४] हाथ पग धूजै धड़धड़। [३५] उर दंत हाड गोडा खड़खड़। [३६] इणि भाँति सूँ वचनिका कही। [३७] छ रित सही। [३८] नव रस कहि दिखाइ सरस। [३९] वीरे वीर रस किया। [४०] रौद्रे रौद्र रस किया। [४१] अपछरा सिंगार रस किया। [४२] नारदे हास रस किया। [४३] कायरे भैरस वीभछ रस किया। [४४] सूरे सान्त रस अद्‌भुत रस किया। [४५] दूणियाँ करुणा रस किया। [४६] वैकुंठ सूँ लिखमी सहित आप विसन गुरड चढि आया। [४७] कैलास सूँ सिंघवाहिणी चंडी सहित ईसर

६३. [१२] केण (ग)। [१४] ऊन्हालौ (छ)। [१७] तोइ उकति (ग)। [१८] औतौ (च), यातौ (छ); रति (क)। [२०] वीजलीयांकस (च)। [२२] (क) में [सा] लुप्त, लाल से (च), लासा (छ)। [२६] सुधा सनेह (क), सिंगार सूधानिहस (च); [उदित] (ग) में लुप्त; हुई छइ (ग)। (२८) जैसी आसोई (ग); री [की] (च)। [२९] (क) में [ऊजळाँ] लुप्त; जगी ज्योति लागी (छ); जाकी (ग)। [३०] विराज हुवा (ग)। [३४] थंढ (क)। [३५] घडड (क), घड़ (च), घड़हड़ (ग)। [३७] इण विध तौ छह रित (च)। [३९] तौ करि दिखाइ (च)। [४१] (छ) में [४१-४६] लुप्त। [४४] भैरस किया (च)। [४५] सूरिजास्वांत अदबुद रस (च)। [४७] विष्णु (क) (ग)।

ऋतु द्रष्टव्य हैं। कैसे ? सो कह कर बताते हैं। तोपों की अग्नि-ज्वालाएँ मानो प्रलय-काल की ग्रीष्म ऋतु है। कायर-रूपी सरोवर सूख गये हैं। गम्भीर धैर्यवान् शूर रूपी निम्न भूमियों में ही जल (आब) एकत्र हो गया है। इस प्रकार उक्ति कह कर दिखा दी है। यह तो हुई ग्रीष्म ऋतु। मद-धारा बरसाते हुए गज समूह रूपी मेघ नगाड़े रूपी गर्जन कर रहे हैं। अंकुश रूपी बिजली विराजमान है। वीर घण्टे गीध, चातक और मेंढकों की आवाज हैं। मुगल लाल इन्द्रवधुओं जैसे दिखायी पड़ते हैं। यह वर्षा ऋतु का वर्णन किया गया है। अब शरद ऋतु का करना है। रण रूपी समुद्र में शूर रूपी कमल विकसित होकर विराजमान हुए। चन्द्र जैसी चन्द्रवदनी अप्सरायें सोलह कलाओं सहित और स्नेह से पूर्ण उदित हुई। कैसी ? शरद में आश्विन की पूर्णिमा जैसी। फौजों के ऊपर उज्ज्वल भालों के समूह की चमचमाती उज्ज्वल ज्योति जगी। मानो बर्फ के टुकड़े हिम के पहाड़ पर विराजमान हुए। हेमन्त ऋतु प्रारम्भ हुई। शिशिर ऋतु जागृत हुई। तलवार रूपी शीतल समीर बहने लगी। कायरों को ठंड लगने लगी। उनके हाथ-पैर धड़धड़ धूजने लगे। हृदय, दाँत, हड्डियाँ और पैर खड़ाखड़ काँपने लगे। इस प्रकार छह ऋतु की वचनिका कही, वह तो सही है। सरस नव रस भी कह दिखाते हैं। वीरभद्र ने वीर रस किया। रुद्र ने रौद्र रस किया। अप्सराओं ने शृङ्गार रस किया। नारद ने हास्य रस किया। कायरों ने भय रस और वीभत्स रस किये। सुरों ने शान्त और और अद्भुत रस किये। पीड़ितों ने करुणा रस किया। वैकुण्ठ से लक्ष्मी सहित स्वयं विष्णु गरुड़ पर चढ़ कर आये। कैलाश से सिंह-वाहिनी चण्डी सहित ईश्वर वृषभ पर चढ़ कर आये।

१३. आतश = अग्नि। ऊन्हाळा = ऊष्ण काल, ग्रीष्म। निवाणे = नीची भूमि; ढूका = पहुँचा। चाथिग = चातक। मनोळा = वीर बहूटी। रूक = तलवार; रहिळ = शीतल वायु। गोडा = पैर। दूणियाँ = पीड़ितों ने।

व्रिखभ चढ़ि आया। [४८] इन्द्रलोक सूँ तेतीस कोड़ि देवता सहित इन्द्राणी अपछरां रै झूलरै इन्द्र अैरापति चढि आया। [४९] नव नाथ चौरासी सिद्ध अनेक पंखी पळचर ग्रिद्ध। [५०] चौसठि जोगणी बावन वीर वैताळणि गंध्रप जिक्ख किन्नर सहित रिख नारद आया। [५१] वीरे डाक वाया। [५२] विमाणे व्योम छाया। [५३] साकणी डाकणी मिळि मंगळ गाया। [५४] नौबति नीसाण रिणतूर वागा। [५५] देवासुर देखवा लागा। [५६] ॥६३॥

दूहौ — सझि आराबाँ समसमा समा समा सझि सूर।
समा समा दळ सालुळै त्रहै त्रँबाळा तूर ॥६४॥

दूहा वड़ा — बह गोळा सर बाण आम्हो साम्हाँ ऊछळै।
ऊडन्ते ऊड़ाड़ियौ आराबे असमाण ॥६५॥
नर सुर दानव नाग थर हर मुर भुवणे थिया।
विढताँ लागौ वरसवा गोळा सर गैणाग ॥६६॥
जागि प्रळै रिण जंग ऊडै सर साम्हाँ अगनि।
गड़ा सवाया गणणिया नाखत जाणि निहंग ॥६७॥
चमराळा हुय चूर वेगाळा तेजी वडा।
पड़ताँ धर भेळा पड़ै सर गोळा नर सूर ॥६८॥
खुंदालिम करि खोध वसुधा उप्परि वाजिया।
लागि गड़ा सिर लोटिया जाणि कबूतर जोध ॥६९॥

६३. [४९] इन्द्राणी अपछरां साथे श्री इन्द्र (ग)। [५१] वीर जाख किन्नरी गुण गंधव सहित (क) (ग)। [५२] वजाया (क) (ग) (छ)। [५६] देखवै (छ)।

६४. सालुली (क) (छ); त्रंबालू (क) (ग) (छ)।

६५. सामुव (च); ऊडेते (च)।

६६. मानव [दानव] (क) (ग) (छ); सुर तीने भुवन (क), सुरभूषण किया (ग), सुरत्रीणे (छ)।

६७. गोला [साम्हां] (ग); नागिभ्रमाल (च)।

६८. वेगागल (च)।

६९. गलै [गड़ा] (छ)।

इन्द्र-लोक से तेतीस कोटि देवताओं सहित और इन्द्राणी तथा अप्सराओं की मंडली सहित इन्द्र ऐरावत पर चढ़ कर आये। नव नाथ, चौरासी सिद्ध, अनेक मांसाहारी गिद्धादि पक्षी, चौसठ योगिनियाँ, बावन वीर, यक्ष, किन्नर गण, गन्धर्व आदि सहित ऋषि नारद आये। वीर हाक मारने लगे। विमानों में और आकाश में छा गये। शाकिनियों और डाकिनियों ने मिल कर मंगल गायन किया। नौबत, निशान, रणतूर बजे। देवासुर देखने लगे ॥६३॥

शूर वीर बन्दूकों से आमने-सामने सम्यक्तया सजे और त्रंबाल तथा तुरही बजाते हुए दल आमने-सामने भिड़ गये ॥६४॥

गोले, शर और बाण चलने और आमने-सामने उछलने लगे। उड़ती हुई गोलियों ने आकाश को उड़ा दिया। ॥६५॥

युद्ध प्रारम्भ होने पर आकाश गोले और बाण बरसाने लगा। तब नर, सुर, दानव और नाग तीनों लोकों में थरथराने लगे ॥६६॥

रणभूमि में प्रलयाग्नि जल उठी और अग्नि बाण आमने-सामने उड़ने लगे। आकाश में नक्षत्र-माला से सवा गुने गोले गनगनाने लगे ॥६७॥

वेगवान् चमरों वाले यवन चूर-चूर होकर अत्यन्त तेजी से शरों, गोलों और नर-शूरों के साथ ही पृथ्वी पर गिर रहे थे ॥६८॥

यवन क्रुद्ध होकर पृथ्वी पर युद्धरत थे, जिससे गोले लगे हुए जोधा राठोड़ों के शिर कबूतर की तरह भूमि पर लोटने लगे थे ॥६९॥

६३. झूलरै = समूह। डाक वाया = हुंकार की ध्वनि की। वागा = बजे।
६४. समसमा = सम्यक् तया; समा समा = आमने-सामने; त्रहै = ध्वनि की।
६५. ऊडाड़ियौ = उड़ा दिया।
६६. मुर = तीन; थिया = हुए; विढतां = लड़ते समय; गैणाग = गगनांगन।
६७. सवाया = सवा गुने; निहंग = आकाश।
६८. चमराळा = चमर वाले यवन; वेगाळा = वेग वाले; भेळा = एकत्र।
६९. खुंदालिम = यवन; खोध = क्रोध; गड़ा = गोले।

लड़ै पड़ै अणपार अड़ै चडै साम्हा अणी ।
कमँधे काबलिये कियौ आहिव घोर अँधार ।।७०।।
झीक अणी खग झाट सिर उर माथै सूरिमा ।
वहती की दळ वाहतां वैकुंठ वाळी वाट ।।७१।।
नरवर सूर निगेम भारथ मझि रीती भरी ।
आवै जावै अपछरा जगि अरहट घडि जेम ।।७२।।
औरँग जसौ अगाहि जूटा सूरिज राहु जिम ।
गहण अँधारौ गै गहण मेछ कियौ रिण माहि ।।७३।।

वचनिका — इणि भाँति सूँ तीन पौहर दळ जूटा । [१] खेंग नर हाथी खूटा । [२] चौथा पौहर लागा । [३] जूझाऊ वागा । [४] औरँगसाह पातसाह रा तपतेज अपर बळ । [५] दइव रा अवतार [६] जिण आगै जमराणौ विमुहा खडै । [७] तिण सूँ तोन पौहर हाथूके महाराजा जसराज ही लड़ै । [८] तिणि वेळा उजेणि वीर खेत रा झूझार राव राठौड़ जोधा रिणमल बोलिया । [९] ठाकुरौ सतरंज रौ ख्याल मंडियौ । [१०] राजा राखौ । [११] राजा राखियै बाजी रहै । [१२] आपै तौ अणी वाँटि हरवल किया तठै बंधेज कियौ ही ज छै । [१४] साहजहाँ जीवतौ ही मूवौ । [१५] औरँगसाह पातिसाह हूवौ । [१६] सामि सूँ संग्राम करणा । [१७] मारणा नै मरणा । [१८] ओछी वाढौ । [१९] जसराज काढौ । [२०] वागाँ झालि जसराज वळिया । [२१] भारथ रा भर भार रतनागिर भळिया । [२२] ।।७४।।

७०. अपार (क); काबलियौ (ग), कमंधा काबलिया (छ) ।
७१. झोक (च); मांझलि [माथै] (च); कादल (क); वाद (क) ।
७२. जाइ (च) ।
७३. म्लेच्छ (क) (ग) (च) (छ); दियौ (छ) ।
७४. [१] पहर (छ) । [६] जोरावर दइव (ग) । [७] जिण [जम] (छ); राणहे (च) । [९] रावत (क); राठौड़ झूझार (छ) । (१०) ज ठाकुरे (च), ठाकुरे (क) (ग) (छ); मांडयौ (क) । [१४] वांधे (ग) । [१५] साहजहान (छ) । [१७] करणौ (च) । [१८] मारणौ ने मरणौ (च) । [१९] छोटी (ग) । [२२] [भार] (छ) में लुप्त; मिलिया (क), भेलिया (ग) ।

जब कमधज और यवन ने घोर अन्धकार वाला युद्ध किया तो अपार सैनिक लड़े, मर कर गिर पड़े, युद्ध में अड़े और विपरीत सेना पर चढ़ाई करने लगे ॥७०॥

खड्ग की नोक के प्रहार और घाव जब शूरों के उर, शिर और ललाट पर पड़ते थे तो मानो वे सेनाओं को वैकुण्ठ वाले मार्ग पर हाँक देते थे ॥७१॥

अप्सरायें अरहट की घड़ी की तरह इस पृथ्वी पर रणभूमि में रीती आती थीं और निष्पाप नरवरों से भर कर चली जाती थीं ॥७२॥

औरंगजेब और जसवन्तसिंह सूर्य और राहु के समान अगाध युद्ध में भिड़ गये और हाथियों को पकड़ लेने वाले उस म्लेच्छ ने युद्ध भूमि में ग्रहण का सा अँधेरा कर दिया ॥७३॥

इस प्रकार तीन पहर तक दल भिड़ते रहे। खड्ग, नर और हाथी समाप्त हो गये। चौथा प्रहर लगा। जुझाऊ बाजे बजे। औरंगजेब बादशाह का तप, तेज और बल अपार है। वह देव का अवतार है। यमराज भी जिसके सम्मुख पीठ मोड़ लेता है। उससे तीन प्रहर पर्यन्त युद्ध करने का बल महाराज जसवंतसिंह की ही भुजाओं में था। उस समय (चौथे प्रहर) वीर क्षेत्र उज्जैन के जुझार राव राठौड़ जोधा रिणमल के वंशज बोले, "ठाकुरो ! शतरंज का खेल चल रहा है। राजा की रक्षा करो। राजा की रक्षा से ही बाजी रहेगी। हमने तो सेना को विभक्त करके हरौल बना कर वहाँ व्यूह रचना कर रखी है। पर शाहजहाँ जीवित ही मृत के समान है। औरंगजेब बादशाह हो ही गया समझो। अतः अब युद्ध करना स्वामी से लड़ना है। मारना और मरना है। अतः अब ओछापन स्वीकार करो। जसवंतसिंह को निकालो।" तब घोड़े की बाग पकड़ कर जसवंतसिंह चला गया और रतनसिंह ने युद्ध का भार सँभाला ॥७४॥

७०. अणपार=अपार; काबलियं=काबुली मुगल।
७१. नोक=खड्ग; वाट=मार्ग।
७२. निगेन=निष्पाप, निश्छल।
७३. अगाहि=अगाध; गै गहण=हाथियों को पकड़ने वाला।
७४. झूझाऊ=युद्ध के बाजे। विमुहा=विमुख। हरवल=सेना का अग्रभाग, हरौल। ओछी=हीनता; वाहौ=स्वीकार करो। वलिया=चले गये। मलिया=प्राप्त किये।

दूहौ — कियौ उजेणी कमधजे धन जीवत म्रित धाड़ि ।
जुड़ि मुरड़े वळियौ जसौ रहे रतन मझि राड़ि ।।७५।।

वचनिका — तिणि वेळा नौवत नीसाण तोग झंडा सामि ध्रम सोबा हिन्दुस्तान री सरम भुजे आई । [१] तिणि वेळा रा आंइयौ काळा पहाड़ सोभा वरणी न जाई । [२] महाभारथ रै बिखै क्रंन कहीजै । [३] किना लंका प्रबि कुंभेण कहीजै । [४] ऊजळा बारह आदीत मुख कमळ ऊगा । [५] मनोरथ पूगा । [६] म्रिति लाज रा मौड़ बाधा । [७] अवसाण लाधा । [८] ।।७६।।

कवित्त — करि प्रणाम रवि ताम ध्यान ग्यानह मन धारे । [१]
धसण धोम विचि धार वसण वैकुंठ विचारे ।। [२]
तजे मोह चढि सोह लोह बोहाँ जुध लिज्जण । [३]
ताणि मूँछ ऊससे जाणि पांडव्व अरज्जण ।। [४]
उल्हसै रोम पोरस्स अति ग्रहे पछाडण गैवराँ । [५]
रूठौ सरीर उप्परि रतन तूठौ सीस पळच्चराँ । [६]।।७७।।

दूहा वडा — मसतकि बाँधे मौड़ धारे भुज हिन्दू धरम ।
मेछ घड़ा दिसि मल्हपियौ रतनागिर राठौड़ ।।७८।।
जोधा रिणमल जान सीसोद्या हाडा सको ।
अजमेरा झाला अभँग राव राजा राजान ।।७९।।

७५. जिसौ (ग) ।
७६. [१] वार [वेला] (च); तोक (क); सोहा (ग) । [२] री (क) । [४] कै (ग); पति (क) (ग) (छ) (ज) । [५] आदीत ऊगा (क) ।
७७. [१] हिये हरि धारी (क) (छ), धारी (ख) (ग) (घ) ।
[२] विचारी (ख) (ग) (घ) ।
[४] मूंझ (ग); अरजनह (च) ।
[५] पछाडे (च); गौंवरा (क) ।
७८. घटा (ग) ।
७९. जांण (छ); सीसोदिया (ग) ।

वह कमधज धन्य है जिसने जीवित रहते हुए और मर कर भी उज्जैन में युद्ध किया। युद्ध में भिड़ कर जसवंतसिंह तो वापस लौट गया पर रतनसिंह वहाँ युद्ध में ही रहा ॥७५॥

उस समय नौबत, नगाड़े, तोग, झंडे स्वामिभक्ति सूचक सूवा और भारत की लज्जा सभी रतन की भुजाओं पर आश्रित हो गये। अद्भुत काले पहाड़ रतन की उस समय की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। वह मानो महाभारत में कर्ण हो अथवा कहिए लंका पर्व का कुम्भकर्ण हो। उसका मुख-कमल ऐसा प्रकाशित हुआ मानो बारह सूर्य उदित हुए हों। उसके मनोरथ पूर्ण हुए। उसने मृत्यु की लज्जा का मुकुट बाँधा। उसे शुभ अवसर प्राप्त हुआ ॥७६॥

तब उसने सूर्य को प्रणाम करके, मन में ज्ञान और ध्यान को धारण करके वैकुण्ठ में बसने के विचार से युद्ध के धुएँ में प्रवेश किया। उसने मोह छोड़ दिया और युद्ध में अत्यधिक लोहा बजाने की उसे इच्छा उत्पन्न हुई। वह मूँछें तान कर उत्साहित हुआ मानो पाण्डु-पुत्र अर्जुन हो। उसके रोम पौरुष से अत्यन्त उल्लसित हो उठे और उसने पछाड़ने के लिए गजराजों को पकड़ लिया। इस प्रकार जब रतन अपने शरीर पर रुष्ट हो गया है तो मांस-भक्षी जीव अब मुण्डों से सन्तुष्ट हो जायें (अर्थात् अब वह बहुत वीरों को मारेगा) ॥७७॥

मस्तक पर मुकुट बाँध कर और भुजाओं पर हिन्दू धर्म को धारण करके राठौड़ रतनसिंह म्लेच्छ सेना की ओर झपटा ॥७८॥

सीसोदिया, हाड़ा, चौहान (अजमेरा), झाला आदि सभी अजेय राव राजा आदि उस जोधा रिणमलोत के बराती बने ॥७९॥

७५. इरके=वापस; राड़ि=युद्ध में।

७६. तोग=एक खास प्रकार का झण्डा। प्रबि=पर्व में; कुंभेण=कुम्भकर्ण। बाधा=बाँधा; भाधा=मिला।

७७. बसण=बैसना। तुठो=तुष्ट हों; पळच्चरां=मांसभक्षी पक्षी।

७८. मछरियौ=झपटा।

बेली सहि बिरदैत जेठी गोवरधन जिसा ।
करनाजळ अणवर कन्है बड जानी वानैत ॥८०॥
बेटो जाँवळि बाप रासौ रैणायर तणौ ।
गज केहरि रिण गाजियौ तोड़ेवा खळ ताप ॥८१॥
अमरौ भूप अगाह वीठलियाँ जाँवळि वळे ।
वधिया साचौरा विढण मुहरि धणी रिण माहि ॥८२॥
खिति पुड़ि साहिबखान हणवँत जिम जैता हरौ ।
उणि वेळा लागौ अरसि वंस वधारण वान ॥८३॥
करण मरण पह काज राँण रमण रिण रूक रस ।
ब्रहमँडि लागौ वैणउत जिम ईसर जसराज ॥८४॥
दुल्लह रयण दुझाल सूरा पूरा जान सहि ।
हैवै घड़ दुलहणि हुई धज तोरण गज ढाल ॥८५॥
छिळतै मछरि छडाळ वाहे तोरण वाँदतौ ।
गौ काळौ कुंभाथळाँ काळ गजाँ सिर काळ ॥८६॥
अेकणि चोट अताग बूडो सूँ अंबर बहसि ।
बेधै साबळ वाहतौ नर हैँवर धर नाग ॥८७॥
जूटा सह को जोध नर मारू जिम नाहराँ ।
वहताँ सिर वाहै वधे खग हाथळाँ सखोध ॥८८॥

८०. बोली (क), बोल्या (ग); सोह बैरदैत (ग) ।
८१. जांमति (क) (छ), जामिलि (ग); केसरि (च); खताप (क) ।
८२. जैमल (क) ।
८३. खुड (क); बंध [वंस] (छ) ।
८४. पौह (च); रामारहण (ग) ।
८५. रमण (क); खग [गज] (छ) ।
८६. छत्राल (ग) ।
८७. बूडी हूँ (क), बूडा हूँ (ग), छूडी हूँ (छ); कुंजर (च); धंनाग (ग) ।
८८. जूटो (क); ज्यं [जिम] (क), ज्यूँ (ग); नाहरी (छ); वाधै वधै (छ) ।

वड़े विरुद वाले गोवर्धन जैसे उसके साथी और कर्ण जैसे अनन्य वीर वाणधारी उसके साथ वड़े वराती वने ॥८०॥

रतनसिंह का पुत्र रायसिंह भी अपने पिता के साथ हुआ और वह दुष्टों का ताप शमन करने के लिए इस तरह गर्जन करने लगा मानो हाथी के साथ युद्ध में सिंह गर्जन कर रहा हो ॥८१॥

अगाध साँचौरा वीर अमरदास और वीठल साथ-साथ लड़ने के लिए स्वामी के सम्मुख युद्ध-भूमि में वढ़े ॥८२॥

जैतावत साहिव खाँ उस समय युद्ध-भूमि में ऐसा लगा मानो वंश का नाम वड़ा करने वाला हनुमान हो ॥८३॥

कवि जसराज वेणीदासोत प्रभु के लिए मर जाने को युद्ध में तलवार का रसपान करने के लिए रमण करने लगा और शंकर के समान वचन वोलता हुआ ब्रह्माण्ड में जा लगा ॥८४॥

अजेय रतन दूल्हा वना और सारे शूर वीर वराती वने। घोड़ों की घटा दुलहिन वनी और गज-ढालों तथा ध्वजाओं का तोरण वना ॥८५॥

उत्साह से भरा हुआ, भाले से तोरण मारता हुआ काला रतन-सिंह काले हाथियों के कुम्भस्थल पर काल के समान झपटा ॥८६॥

भाले की नोक से अम्वारी पर हमला कर के एक ही अथाह चोट में वह नर, घोड़े और हाथी तीनों को भाले से वेध रहा था ॥८७॥

मारवाड़ के सभी योद्धा लोग भिड़ पड़े मानो सिंह भिड़ गये हों। वे सक्रोध जव अपने भुजदण्डों से तलवार चलाते थे तो (शत्रुओं के) शिर कट कर गिर पड़ते थे ॥८८॥

८०. वेली = साथी; अणवर = अनन्य।
८१. जांवळि = साथ।
८२. वधिया = आगे वढ़े; मुहरि = सम्मुख।
८३. खिति = पृथ्वी।
८५. दुझाल = अजेय।
८६. छडाळ = भाला; वांदतो = मारता।
८७. अताग = अथाह; वूडी = नोक; सावळ = भाला।
८८. नाहरां = सिंह; सखोध = सक्रोध।

गावै जोगणि गीत ऊडै सर साम्हाँ अखत ।
वेद भणै नारद ब्रहम पुंखै अछर प्रवीत ॥८६॥
घण वाजित घण घाव घमघम अछराँ घूघरा ।
वागा वीरा रस तणा नाराजियाँ निहाव ॥६०॥
ढालाँ सिरि धाराळ वागा वरियामाँ तणा ।
गळती निस गाजै गजर घण घाये घड़ियाळ ॥६१॥
वाजै इसै विनाणि खग ढालाँ सिर खांट खड़ि ।
रमै महा रिण रूक रस जोध डँडाहड़ि जाणि ॥६२॥
खहणि करे रिण खीज वाहै करि हाकाँ विहद ।
गड़दाना गाजै गुरज वाजै भुरजाँ वीज ॥६३॥
[जगजेठी जमराँण बेजड़ हथ बापा हरौ ।
गह पुर तर लागै गयौ साराँ धार सुजाण ॥ (१)
रहचै मैंगळ रौद राखै जगनामौ रिधू ।
सूजौ सूरजमाल रौ स्रग पुहतौ सीसौद ॥ (२)
जुड़ भाँजण खळ जोर हाडा पँच पंडव हुवा ।
मोहण अनै झुझारमल कानौ मुकन किसोर ॥ (३)
सामँत सूर सहोद मधकर का आखाड़ मल ।
जुड़ ऊपड़ै किसोर जुध जोध मिले चंत्र जोध ॥ (४)

८६. रार गोला अर्खनि (च); सिरसा [साम्हाँ] (घ); अपछर (छ) ।
६०. नारीजियां (ग), नाराजिहां (च) ।
६१. तणी (क), वरियामी तणा (च), [वागाँ वरियामाँ तणाँ] (छ) में लुप्त; गणता (छ) ।
६२. इसी (क); डंडेहड़ (च) ।
६३. खोहर (क); करि (च); भुरजै (च) ।
(१-६) केवल (R) और (S) में ।
(३) जोच (S) ।

योगिनियाँ मंगल-गीत गा रही थीं, शिर-रूपी अक्षत सम्मुख उड़ रहे थे, नारद और ब्रह्मदेव पाठ कर रहे थे। पवित्र अप्सराएँ वरों का स्वागत कर रही थीं ॥८९॥

अनेक वाजे घनघन कर रहे थे। अप्सराएँ घुँघरू घमका रही थीं। नाराचों की चोट की आवाज वीर रस के वाजे-जैसी हो रही थी ॥९०॥

श्रेष्ठ वीरों के शिरों और ढालों पर जव धार वाले शस्त्र लगते थे तो उनसे ऐसी आवाज होती थी मानो रात्रि वीतते समय घड़ियाल पर गजर के डंके लग रहे हों ॥९१॥

शीशों और ढालों पर खड्गें ऐसे खटाखट वज रही थीं मानो योद्धा लोग महायुद्ध में तलवारों से 'डाँडिया रास' खेल रहे हों ॥९२॥

वीर सक्रोध युद्ध कर रहे थे और हाक मार कर शस्त्र चला रहे थे। वुरजों पर ओले वाले वादलों की गर्जना हो रही थी और विजलियाँ कड़क रही थीं ॥९३॥

[यमराज के वड़े भाई जैसा वापा का वंशज शाहपुरा का (गुहिलोत) सुजानसिंह हाथ में तलवार ले कर तलवारों की धारा में तैरने लग गया। (१)

वह सूरजमल का पुत्र सीसोदिया सूजा (सुजानसिंह) यवनों की गज सेना को मार कर संसार में नाम अमर करके स्वर्ग पहुँचा।(२)

पाँचों पाण्डवों के समान पाँच हाडा वीर—मोहन, झूझारमल, काना, मुकुन्द और किशोर—भिड़ कर दुष्ट योद्धाओं के भंजक वने। (३)

इन शूर सामन्तों में सवसे छोटा और मधकर का पुत्र किशोर अखाड़े का मल्ल था। वह चार योद्धाओं से युद्ध में भिड़ पड़ा। (४)

८९. अखत = अक्षत; पुंखे = स्वागत करते हैं; प्रवीत = पवित्र।
९०. वाजित = वाद्ययन्त्र; नाराजियाँ = नाराच; निहाव = प्रहार।
९१. वरियाम = श्रेष्ठ।
९२. डँडाहड़ि = दंडा रास।
९३. खहणि = युद्ध; गड़दाना = ओले वरसाने वाले वादल; गुरज = वुरज।
(२) पुहतो = पहुँचा।
(४) सहोद = सहोदर; चत्र = चार।

प्रसणाँ घड़ा पछाड़ नर हर कै वाहे त्रिजड़ ।
दे सत उजवाळी दळे झालै झालावाड़ ।। (५)
रहचे खल रिम राह सुत वीठल अवसाण सिध ।
अणभँग स्रग-पुहतौ अजण गौड़ करै गज गाह ।। (६)]
करनाजळ रिण काळ जैत कळोधर जैत जिम ।
सारां पहलौ सूज उत पड़ियौ लड़ि प्रौँचाळ ।।९४।।
पाड़ै पिसुण अपार ऊभौ अवखाड़ै अनड़ ।
गोवरधन साथे गहण धामांजागर धार ।।९५।।
पळ खूटा पतिसाह कर आवध वाहै किलँब ।
मारि हथे मरि मारियौ रिण गोदौ रिम राह ।।९६।।
झूलाळां खग झाड़ि बेटाँ बिहुँ सहितौ बलू ।
खिति पड़ियौ मोटौ खित्री आधौ दळ ऊडाड़ि ।।९७।।
ढाहेवा गज ढाल जसवँत छळि मातै जुड़णि ।
पाटोधर पड़ि ऊपड़ै समहरि रायाँसाल ।।९८।।
भवसि घड़ा बळि भाळि वांमणि जिम वीठल वधै ।
उतवँग जाइ ब्रह्मँड अड़ै पग सातमै पयाळि ।।९९।।

(५) घणा (S), नजड (R) ।
(६) पोहतौ (R) (S) ।
९४. ज्युं (क) (छ), ज्यइं (ग); प्रूंचाल (ग) (छ), पुंछाल (च) ।
९५. पडे (ग); परि [साथे] (च); धोमाजागर (क) (छ) ।
९६. किलंग (च) ।
९७. पूरौ [मोटो] च ।
९८. ठातै [मातै] (घ); (च) में यह दोहा लुप्त ।
९९. छल [वळि] (छ); ज्युं (क) (च) (ज) ।

नरहर का पुत्र झालावाड़ का दला (दयालदास) झाला तलवारें चला कर शत्रु सेना को पछाड़ने लगा और उन्हें मृत्यु का दान देने लगा। (५)

अखमानसिंह और अजेय वीठल का पुत्र अर्जुन गौड़ दुष्ट शत्रुओं को मार कर और हाथियों को कुचल कर स्वर्ग पहुँचा। (६)]

रण में काल के समान करण जैतावत अपने वंश का वर्धक था और जयन्त-जैसा लग रहा था। पर सबसे पहले युद्ध में लड़ कर विशाल पौंहचे वाला सूजावत गिरा ॥९४॥

अखाड़े में खड़ा हुआ अजेय गोवर्धन युद्ध में तलवार उठा कर उसके मस्तक पर प्रहार करता हुआ अपार शत्रुओं को गिरा रहा था ॥९५॥

शाहजादों की सेना के यवन हाथों से शस्त्र चलाते-चलाते हिम्मत हार गये। शत्रुओं के लिए राहु के समान और शत्रु के विनाशक हाथों वाला गोवर्धन रण में अनेकों को मार कर मर गया ॥९६॥

बड़ा क्षत्रिय बल्लू अपने दो पुत्रों सहित झूल वाले हाथियों पर खड्ग प्रहार करता हुआ और आधे दल को विनष्ट करता हुआ भूमि पर गिर पड़ा ॥९७॥

जसवंतसिंह के लिए हाथियों की ढालों को नष्ट करने के लिए युद्ध में लड़ता हुआ राजकुमार रायसिंह गिर और उठ रहा था ॥९८॥

शत्रु-घटा-रूपी बलि राजा को देख कर वीठल वामन के समान बढ़ा। उसका मस्तक ब्रह्माण्ड से जा लगा और पैर सातवें पाताल में ॥९९॥

(५) रत्तां=शत्रु।
(६) गज गाह=गज-मर्दन।
९४. सारै=सबसे।
९५. वागौजागर=युद्ध।
९६. रुज=साहस; तूटा=समाप्त हुए।
९७. ऊबाड़ि=उठा कर।
९८. नारै=मस्तक।
९९. सवलि=शत्रु; मालि=मसल कर; उत्तंग=उत्तमांग, शीश; पयालि=पाताल।

वह मुगलाँ विरदैत खागे खाँडरतौ खळाँ ।
खासाँ खुंदालिम तणा वाने गौ वानैत ॥१००॥
घण ग्रहिरण घण घाव साम्हे चाचरि सात्रवाँ ।
वाहै साहै वीठलौ खाँडौ खाँडेराव ॥१०१॥
जिम रावण भूँझार कमधज रामायण करै ।
पाळ तणौ बाहाँ प्रलँब पड़ियौ विरद पगार ॥१०२॥
ग्राहवि म्रित दिनि ईम पाल हरै जाँमळि पिता ।
भिड़तै गजाँ भमाड़िया भीम तणो परि भीम ॥१०३॥
गोकळ जगौ गरीठ करि बिहुँ बाजू केस उत ।
माल हरै जुध मंडियौ रूके ग्राकारीठ ॥१०४॥
बाळै मधौ बँगाळ खेळा दळ खाँडा खहणि ।
धीर हरौ रिण धड़हड़ै जिम होळी खग झाळ ॥१०५॥
ग्राहवि मधौ ग्रगाहि पडियाळग वागै प्रवँग ।
जाणि खँडीवन जाळिवा भटकी कटकाँ भाहि ॥१०६॥
वीरति खाग वजाय वन ग्ररितर बाळे वडा ।
गौ मधुकर कणियागरौ सूरिज जोति समाय ॥१०७॥

१००. खलां [तणां] (क) (छ); गोवानै (ग) (छ), गौवीना (च) ।
१०१. जिम [घण] (च); सूरमां [सात्रवाँ] (च) ।
१०२. रांमण (च); घमधज (ग); खडियो विरद खगार (क) ।
१०३. माल [पाल] (क); विभाडियौ (छ) ।
१०४. [हरै] (छ) में लुप्त; ग्राकारूठ (च) ।
१०५. वोवलै (क); ····हणि (ग) ।
१०६. धोम [मधौ] (ग); पवनि (च); खंडावन (च) ।
१०७. ग्ररितन वलि (च) ।

खड्ग चला कर वह वारौत वीठल दुष्ट मुगलों को खण्ड-खण्ड कर रहा था और उन यवनों के बाने और झण्डे छीन रहा था ॥१००॥

वह खड्गपति वीठल शत्रुओं के भाल-पट्ट पर खाँडे का प्रहार ऐसे कर रहा था मानो घन का अहिरण पर प्रहार हो रहा हो ॥१०१॥

प्रलम्ब की सी लम्बी भुजाओं वाला गोपाल का पुत्र वीठल कमधज रामायण के युद्ध के रावण के समान लड़ रहा था और अपना विरुद फैला कर वह खेत रहा ॥१०२॥

अपने पिता के साथ ही गोपाल के पौत्र भीम ने मृत्यु के दिन रणक्षेत्र में भिड़ कर हाथियों को ऐसे घुमाया जैसे महाभारत में भीम ने घुमाया था ॥१०३॥

माल(-देव) के वंशज केसोदासोत (माधोसिंह) ने बड़े (योद्धा) गोकल और जगा को दोनों ओर रख कर तलवार से घोर युद्ध किया ॥१०४॥

(रण-)धीर का वंशज माधोदास (सोनगरा) यवन-सेना को खण्डित कर उसकी होली खाँडे से जला रहा था। उसके खड्ग की लपटें धड़हड़ निकल रही थीं ॥१०५॥

वह माधोदास जब घोड़ों पर खड्ग चलाता था तो ऐसा लगता था मानो खांडव वन को जलाने वाली अग्नि भटक कर वहाँ आ गयी थी ॥१०६॥

उस सोनगरा माधोदास ने अत्यन्त वीरता से तलवार बजा कर शत्रु रूपी वृक्षों वाले बड़े-बड़े वनों को जला दिया और वह स्वयं सूर्य की ज्योति में समा गया ॥१०७॥

१००. खाँडरतो = खंड खंड करता; खासाँ = विशेष झण्डे।
१०२. पाळ = गोपाल; पगार = फैला कर।
१०४. गरीठ = गरिष्ठ, बड़ा; बाजू = ओर; आकारीठ = भीषण (युद्ध)।
१०५. खेळा = खंड।
१०६. पड़ियाळग = खड्ग; प्रवँग = घोड़ा; जाळिवा = जलाने को; भाहि = अग्नि।
१०७. बाळे = जला कर।

विढतै क्रियौ विसेख जिम पीथल जैतै जिहीँ ।
पड़तै ऊदिल पाड़िया आठ असुर गज अेक ।।१०८।।
वडा वडा गज वाज किलँबाँ दळ तंडळ करे ।
खाना खिणि खानाँ खिळै जुड़ि पड़ियौ जगराज ।।१०९।।
चुँगलाळाँ करि चौड़ गिरधारी गाहे गजाँ ।
चढियौ खग धाराँ चढे रंभ रथाँ राठौड़ ।।११०।।
खळाँ करे बि बि खंड कमधज चँदनामौ करे ।
मरण मनोरथ पूरि मनि पीथल पड़ै प्रचंड ।।१११।।
[मारे मुग्गल मीर सुभटाँ सिर दीन्ही सभा ।
वली मेडतियाँ सकज्ज वरै अपछरा वीर ।। (१)
भाँजतो अणबीह मोहन जगतावत मछर ।
वाघ कळोधर वाजियौ समहर जाँणे सीह ।। (२)]
तोड़े खगि तुरकाण रिण पड़ि ऊपड़ियौ रुघौ ।
भाटी भला भमाड़िया जेसळगिर जोधाण ।।११२।।
"[पाड़ंतौ पँडवेस अचलावत अवसाण सिध ।
जुड़ियौ जणजण जूजुवौ मुड़ियौ नहीँ महेस ।। (१)
चालि गयौ चटकेह किलँबाँ ऊपरि कोप करि ।
पड़ियौ रिण पूँचाळ जिम केहरियौ कटकेह ।। (२)
धाँधस्त वंस धियागि जसवँत नै सहसौ जरू ।
फौजाँ साँम्हाँ फहळिया ऊन्हाळै जिम आगि ।। (३)

१०८. जे [जिम] (ग); जैता (क); पाड़ी असुर सुर (क), असुर सुर (छ) ।
१०९. द····(क); खानी (क); खानो खलि खानी खलै (च) ।
११०. चोट (छ) ।
१११. वे खंड (ग) (च) (ज) ।
(१) और (२) क्रमशः केवल (U) और (R) (S) में ।
(२) अर भांजतो अबीह (R) (S); जाणक (R) ।
११२. पडियो पडियो (क); भवाडिया (ग) (च) (छ) ।
(१-६) तक केवल (ग) (F) (J) (P) में; (B) में ये (७५) के बाद हैं ।
(१) पाडंतै (F) ।
(२) चटक (B) ।
(३) फहफिया (P) ।

पीथल और ऊदल जैतावत ने विशेष युद्ध किया और गिरते-गिरते आठ यवनों और एक हाथी को मार गिराया ॥१०८॥

बड़े-बड़े गजों, घोड़ों और यवनों के दलों को खण्ड-खण्ड करता हुआ, खानों को मार कर खानजादों से लड़ता हुआ जगराज गिर पड़ा ॥१०९॥

गिरधारी राठौड़ यवनों को नष्ट करके और गजों को कुचल कर के खड्ग-धारा पर चढ़ा और मर कर वह राठौड़ रम्भा के रथ में जा चढ़ा (अर्थात् उसे स्वर्ग में रम्भा प्राप्त हुई) ॥११०॥

प्रचंड राठौड़ पीथल शत्रुओं के दो-दो खंड करके चन्दनामा लिखा कर अपने मरने का मनोरथ पूर्ण कर के गिर पड़ा ॥१११॥

[मारे हुए मुग़ल वीरों के शिरों पर उस वीर मेड़तिया सरदार ने अपनी शय्या बनायी और अप्सराओं ने साभिलाप उसको वरा । (१)

वाघ का वंशज अजेय जगतावत मोहन शत्रुओं का भंजन करता हुआ युद्ध-भूमि में सिंह के समान झपटा । (२)]

रुघा भाटी तुर्कों पर तलवारें तोड़ता हुआ गिर और उठ रहा था । उस जयसलमेरी ने जोधों को चकित कर दिया ॥११२॥

[पांडवेश के समान अवसानसिद्ध महेशदास अचलावत शत्रुओं को गिराता हुआ और शत्रुदल के जन-जन से भिड़ता हुआ जूझ गया पर मुड़ा नहीं । (१)

केहरी क्रुद्ध होकर झट से युद्ध में यवन-सेना पर झपटा मानो सिंह हाथियों की सेना पर झपटा हो । (२)

जसवंत और सहसा अग्नि के समान फौजों के सम्मुख ऐसे चले मानो ग्रीष्मकालीन अग्नि बाँसों को ध्वस्त करने चली हो । (३)

१०९. तंडळ = शरीर के कटे अंग; खिग्गि = मार कर; खिळै = खंड-खंड करता हुआ ।
११०. चुंगलाळा = यवन; चौड़ = विनाश ।
१११. बि वि = दो दो ।
(१) सकज्ज = साभिलाप ।
(२) अणबीह = अजेय ।
(१) जूजुवी = जूझ गया ।
(३) धांधस्त = ध्वंस; वंस = बांस; धियागि = दाहक अग्नि; जरू = बल वाला; फहलियाँ = चले ।

दुसमण सिर दोटाह देता भला दिखाड़िया ।
पाल हरै कीधा प्रगट केरू जिम कोटाह ।। (४)
ढाहे जिण गज ढाल किलँबाँ दळ तंडळ करे ।
भारथ भला भमाड़िया मूळौ रायामाल ।। (५)
अरि माथै औनाड़ देतौ खग झाटाँ दुरित ।
दळ भाँगै मँडियौ दळौ प्रोहित जाँणि पहाड़ ।। (६)]
जुधि जाणे जमराण मतवाळा ज्यूँ मल्हपियौ ।
भगवानौ भालै भिड़ण चालै गौ चहुवाण ।।११३।।
घण घाअे घमचाळि चूनाळा थिय चालणी ।
आप तणा तण अरिहराँ छड़िया उवर छडाळि ।।११४।।
हुवा सकौ हैरान नर सुर कर देखे निबहि ।
रतनागिरि आगै रवद भिड़ि पाड़ै भगवान ।।११५।।
विचित्राँ दिया विछाय भालै हणि भगवानियै ।
जाणि कि वाग विधूँसिया राँण तणा कपिराय ।।११६।।
हाथाँ पूरे हाँम पाड़ि खळाँ सगतीपुरौ ।
भगवानौ भारथ करे वैकुँठ गौ वरियाम ।।११७।।
आयौ अमली माँण असुराँ सूँ भारथि अमर ।
करतौ घाव कटारियाँ चटाँ लटाँ चहुवाण ।।११८।।
अणियाळौ अणबीह पंच हजारी पाड़तौ ।
अजुवाळै भारथि अमर सोभा वीकमसीह ।।११९।।

(४) देतै भलै दिखा पिया (B), दिखा लियौ (F); कीधी (F) (J); नव (F); सिर (J) (P); कैट्टसिर (ग) ।
(५) जिरि (F); किरणवा (P); सिर [दल] (J); भली (ग); भवाडिया (F) ।
(६) भागौ (F) ।
११३. गो वाले (क), गोचालै (ग) ।
११४. चूनालौ थाये (छ); भला [उवर] (क) (ग) (छ) ।
११५. निहसि (ग) ।
११६. विचि (क), विछाह (ग); हिणि (ङ); विधूसियौ (ग) ।
११७. हथिपुर विहाय (ग); गौ [गो] (ग), पगौ (च) ।
११८. अचली (च); कँवारियाँ (ग); लटी (च) ।
११९. उजिवालै (च), अणियाल (छ); पाडिया (क) (छ) ।

दुश्मनों के शिरों पर प्रहार करता हुआ गोपालदास का पौत्र (भीम) ऐसा दिखाई दिया मानो कौरवों के शिर पर प्रहार करता हुआ भीम हो। (४)

मूला रायमलोत ने गज-ढालों को नष्ट कर दिया और यवन सेना को खंड-खंड कर दिया। उसने युद्ध में शत्रुओं को खूब भ्रमित किया। (५)

दला पुरोहित शत्रुओं के मस्तकों पर खड्ग के तीव्र प्रहार कर शत्रु-दल का भंजन करता हुआ पहाड़ जैसा सुशोभित हुआ। (६)]

भगवान चौहान युद्ध में मत्त यमराज के सदृश झपटा और भाला लेकर लड़ने चला ॥११३॥

उसने अपने शत्रुओं के समूहों को भालों से छेद कर अनेक घाव कर डाले जिससे वे वीर सैनिक चलनी हो गये ॥११४॥

रतन के आगे जब भगवान यवनों को मार कर गिराने लगा तो उसके इस कृत्य को देख कर सब हैरान हो गये ॥११५॥

उस भगवान ने भाले से मार कर शत्रु यवनों को ऐसे बिछा दिया मानो हनुमान ने रावण के बाग का विध्वंस किया हो ॥११६॥

शक्तिपुर (शाकंभरी) के चौहान भगवान ने पूरे साहस-पूर्वक अपने हाथों से दुष्टों को मार गिराया और युद्ध करके वह देव-प्रिय वीर वैकुण्ठ गया ॥११७॥

मत्त चौहान अमरदास आमने-सामने युद्ध करता हुआ आ रहा था और असुरों पर कटारियों के घाव कर रहा था ॥११८॥

उस निर्भीक अमरदास ने कटार की धार से पंच हजारी सूबे-दारों को गिराते हुए शोभा (हेमालोत) वीकमसीह के वंश को उज्ज्वल किया ॥११९॥

(४) दोटाह = प्रहार; कोटाह = भीम।
(६) औनाड़ = तीव्र; दुरित = पाप।
११४. घाअें = घाव; घमचाळि = समावंध प्रहार; चूनाला = सैनिक; छड़िया = छोड़े।
११६. विचित्राँ = शत्रु (यवन); रांण = रावण।
११७. हांम = साहस।
११८. अमली = नशा करने वाला, मत्त; चटाँ लटाँ = बाथोंबाथ लड़ता हुआ।

जुध करि परियाँ जेम सादावत अवसाण सिध ।
कर वाहे गाहे किलँब अमर गयौ स्रगि अेम ॥१२०॥
[सर साबळा सकाज विचत घड़ा विच वीरवर।
वध वध नाँखै वीठलौ वीज तणी पर वाज ॥ (१)
जोध करै रिण जंग वीठड़ गज भाजै विचत ।
पाड़ै पाँचा हर पिसुण आखाड़ै अणभंग ॥ (२)]
अेकणि हणे अनेक किसनावत मातै कळहि ।
मरण तणै दिन मार कै वीठल कियौ विसेक ॥१२१॥
अरिहर अवियाटाँह खग झाटाँ भाँजण खत्री ।
गौ भारथि गाँगा हरौ गिरधर गज थाटाँह ॥१२२॥
अणियाँ चडि अरडिंग रतनावत भाँजे रवद ।
पाटौधर पड़ि ऊपड़े समहरि रायासिंग ॥१२३॥
[जोध जोधाँ छळ जाग साँवळ कौ अवसाँण सिध ।
लागौ तिण वेळा लड़ण गिरधारी गैणाग ॥ (१)]
मल्हपि गयौ कुळ मौड़ जाडै दळ लाडा जिहीं ।
सार तणै भर साहिबौ रौद्राँ सिर राठौड़ ॥१२४॥
पाखर सहित पवंग सिंधुर नर ढालाँ सहित ।
भिड़तै साहिब भाँजिया जैत हरै करि जंग ॥१२५॥
निय वँस चाढे नूर करे महाजुध कूँभ उत ।
वगड़ी धणी विराजियौ सूर सभा विचि सूर ॥१२६॥

१२०. पडियौ (क) (छ); अेरिण (छ) ।
(१) केवल (R) (S) में; (D) में उसके स्थान पर—
सरि साबळाँ सकाज पांचायत अरण भागे पड़े ।
विध विध ओराँ वाज विचत दलाँ विच वीठलौ ॥
(२) केवल (D) में ।
१२१. मारणतणै (ग); कियै (छ) ।
१२२. अडिया (क) (छ) ।
(१) केवल (R) (S) में ।
१२४. लाड़ौ (ग); सीरा (च) ।
१२५. सहति (च); भिडतां साहिव (क), भिडत साहि (ग) ।
१२६. नीर [नूर] (क); सूरां (क) (ग) ।

जिस प्रकार उसके अवसानसिद्ध पूर्वज सदा युद्ध कर के मरे थे वैसे ही यवनों पर खड्ग चलाता हुआ और उन्हें कुचलता हुआ अमरदास भी स्वर्गवासी हुआ ॥१२०॥

[वीरवर वीठल ने आगे बढ़-बढ़ कर शत्रु-दल में शर और भाले चलाते हुए अपना बिजली-जैसा घोड़ा डाल दिया। (१)

वह पांचाहर वीठल युद्धभूमि में लड़ता हुआ यवनों के हाथियों का भंजन कर रहा था और शत्रुओं को अखाड़े में गिरा रहा था। (२)]

युद्ध में मत्त (साँचौरा) किसनावत वीठल ने अकेले ही अनेकों को मार कर मरने के दिन विशेष शौर्य प्रदर्शन किया ॥१२१॥

गाँगावत क्षत्रिय गिरधर शत्रुओं के समूह पर और गज-यूथ पर खड्ग प्रहार कर उन्हें युद्धस्थल में मारने गया ॥१२२॥

शत्रुहन्ता रतनावत राजकुमार रायसिंह भाले की नोक पर चढ़ने वाले यवनों का विनाश करता हुआ युद्ध-क्षेत्र में गिरने और उठने लगा ॥१२३॥

[अवसानसिद्ध सांवल का गिरधारी जोधों के लिए युद्ध करता हुआ लड़ने के समय उल्का के समान लग रहा था। (१)]

कुल का मुकुट राठौड़ वीर साहिब खाँ यवनों के घने समूह के स्वामियों के शिर पर तलवार का प्रहार करने झपटा ॥१२४॥

उस जैतावत साहिब खाँ ने युद्ध में पाखर सहित घोड़ों को, ढालों सहित नरों को और हाथियों को भिड़ते ही मार डाला ॥१२५॥

वह बगड़ी का स्वामी कुम्भा का पुत्र (साहिब खाँ) महायुद्ध कर के अपने वंश को प्रकाशित करने लगा और शूरों की सभा में सूर्य के समान तेजस्वी हो कर विराजमान हुआ ॥१२६॥

१२०. परियाँ = गिरे।
(१) नाखै = डालता है; वाज = घोड़ा।
(२) विचत = शत्रु; पिसुण = शत्रु।
१२१. कलहि = युद्ध में; विसेक = विशेष।
१२२. अवियाटाँह = समूह।
(१) गैणाग = उल्का, गगनाग्नि।
१२४. जाडै = गहरे; लाडा = स्वामी; भर = भट; साहिबो = स्वामी।
१२६. निय = निज; नूर = ज्योति।

चारण ग्रहि चौधार सत्र मारण ग्रवसाण सिध ।
वागौ डारुण वैण उत सिरदारे सिरदार ।।१२७।।
हणि साबळि करि हाँसि जवनाँ उप्पाड़ै जसौ ।
चढिया भारथ चौहटै वादी जाणि कि वाँसि ।।१२८।।
चवधारै करि चूर विचित उपाड़ै वैण उत ।
गळ पळ भरि हँसवर ग़यण हुवा त्रिपत ग्रिध हूर ।।१२९।।
वाहि वडा गज वाज रोहड़ छळि राजा रतऩ ।
जीवत म्रित वाजी जूड़े जीपि गयौ जसराज ।।१३०।।
दळ डोहे दरियाव हैवै वहि हदमाल रौ ।
जोड़े रिणमालाँ जगौ रहियौ खिड़ियाँ राव ।।१३१।।
भाँजंतौ गज भार सारै ग्राफळतौ समरि ।
पड़ियौ रिणि खिड़ियौ प्रचँड पाड़े प्रिसुण ग्रपार ।।१३२।।
[उज्जेणी ग्रस हास ग्ररि पड़ मादे ऊपड़ै ।
वणियौ चाचर विहँडियौ विखमी चामर वास ।। (१)]
कळहै सुत कलियाण भीमाजळ पाड़े भड़ाँ ।
पड़ि भुइँ कमँधाँ पाखती रहियौ मिस्रण राण ।।१३३।।
[सत खग धाराँ सेव परम तणी पर पूजियौ ।
संकर को रामेसवर देह हुवौ लड़ देव ।। (१)]
खिति बि बि खंड खळाँह कमँधराज करतौ किळ`ब ।
विजड़ा हथ बळिराव रौ द्वारौ गयौ दळाँह ।।१३४।।

१२७. वागा (ग); सिरदारां (क) (छ) ।
१२८. हरासी (क); जसै (छ) ।
१२९. गलिल [गळ पळ] (छ) ।
१३०. वहे (च); जड़ा [वडा] (क); बलि [छळि] (क) (छ) ।
१३१. खिडिवौ (क); रावां (ग) ।
१३२. चडियो [पड़ियो] (क) ।
(१) केवल (D) में ।
१३३. (च) में लुप्त ।
(१) केवल (D) में ।
१३४. कमंधज (क); दुइडा [विजड़ा] (क) ।

मेछाळाँ सिर मार देतौ पौंह आगळि दळाँ ।
केलपुरौ भारथि किसन जाडै गौ जिणियार ॥१३५॥
हणतौ मैंगळ हाथि करतौ मुखि हाकाँ कहर ।
कुंभकरण सिर केवियाँ भाटी गौ भाराथि ॥१३६॥
[भाँजंतौ गज भार असुराँ हेडवतौ अभँग ।
वीकौ समहर वाजियौ नरहरदास निडार ॥ (१)
सीसोदिया सुजाँण भागौ नह भाखर हरौ ।
लड़ियौ आडे लोहड़े रण रावत रढ राँण । (२)
खाँगो मंडल सूर रतनौ कमधज रूपसी ।
विढताँ मुर बंधव वणे खाँडरताँ खल खूर ॥ (३)
ईसर कुंभौ अेम साँचौरा बंधव सगा ।
भारथ जूटा भाँज उत जोड़ै नाहर जेम ॥ (४)]
अरि भाँजण असि हास राजा छळि राजड़ तणौ ।
जुधि जूटौ जैसा हरौ दुजड़ाँ वेणीदास ॥१३७॥
[अरि हण हैमर अेम धज नेजाँ खग ढाहतौ ।
वीर तणी रिण वाजियौ नाहर नाहर जेम ॥ (१)
कमँध करण चित काँम हैवै वह ऊदा हरो ।
रतन तणै छळ टूक हथ हद वागौ हर राँम ॥ (२)
सोनगरौ सिस माथ आसौ नै सुन्दर अभँग ।
विढ़ता सूर वखाँणिया संग्रहता सत सीस ॥ (३)
धड़ धड़ वाहे धार खेत उजेणी खग्ग हथ ।
वेणौ दूदावत वढै पड़ उप्पड़ै पँवार ॥ (४)

१३५. म्लेच्छांला (क); पह (क) (च); आगै (ज); (ग) में इसके बाद (१३८) ।
१३६. (ग) में लुप्त; गौ भाटी (च) ।
(१-४) तक केवल (R) और (S) में ।
१३७. हरौ [तणौ] (क) (छ); जेता हरौ (च); दुजडै (ग) (च) ।
(१-४) केवल (S) (D) में ।

सुप्रसिद्ध केलपुरा किशन आगे की सेना के म्लेच्छों के शिर पर प्रहार करता हुआ घने सैन्य-समूह में घुस गया ॥१३५॥

मद-मत्त हाथियों को मारता हुआ और मुख से भयंकर हाक करता हुआ भाटी कुम्भकर्ण युद्ध में शत्रुओं के शिर पर टूट पड़ा॥१३६॥

[गज-सैन्य का भंजन करता हुआ और यवनों को नष्ट करता हुआ निडर नरहरदास वीका लड़ाई में लोहा बजा रहा था। (१)

भास्कर (सूर्य)-वंशी सुजान सीसोदिया भागा नहीं। वह रावण जैसा वीर योद्धा रण-भूमि में लोहा बजाता हुआ लड़ता रहा। (२)

राठौड़ मंडला के शूरवीर पुत्र सांगा, रतनसी और रूपसी—तीनों भाई—दुष्टों का दलन करते हुए लड़ रहे थे। (३)

ईश्वरदासोत कुम्भा तथा भांभावत सांचोरा सगे भाई—दयालदास और नरसिंहदास—युद्ध में ऐसे भिड़े मानो सिंहों की जोड़ी भिड़ गयी हो। (४)]

जेसा (चांपावत) का वंशज राजाओं का राजा वेणीदास सोत्साह शत्रु-नाशक तलवारें लेकर अनेक तलवारों से युद्ध में भिड़ गया ॥१३७॥

[शत्रुहन्ता वीर-पुत्र नाहर शत्रुओं के घोड़ों, ध्वजों, नेजों और खड्गों को ढहाता हुआ सिंह के समान युद्ध में लड़ा। (१)

ऊदावत हरराम राठौड़ रतन के लिए विचित्र युद्ध करता हुआ हाथों के खण्ड-खण्ड होने पर खेत रहा। (२)

सोनगरा-शिरोमणि आशा और सुन्दर युद्ध में लड़ते हुए ऐसे प्रतीत होते थे मानो सैकड़ों शीशों का संग्रह कर रहे हों। (३)

दूदावत वेणीदास पँवार हाथ में खड्ग लेकर धड़ाधड़ चला रहा था और उज्जैन क्षेत्र में लड़ते हुए गिर और उठ रहा था। (४)

१३५. मेच्छाळां = म्लेच्छों के; पीह = प्रभु; जिणियार = प्रसिद्ध।
(१) निडार = निर्भय।
(३) त्रुर = तीन; क्रूर = क्रूर।
(२) हैवै = हयपति; वागो = बजा।

कूरम माँन कठीर समहर सामलदास उत ।
वड़वड़ते वड़वड्डियौ सूराँ सूर सधीर ॥ (५)]
रूपावत रिम राह मुँहतौ साँवळ मार कौ ।
विढतौ देखै वीरवर सुपह अनै पतिसाह ॥१३८॥
[विध करतौ हथ वाह हेमावत सिर हाथियाँ ।
सोह तणी पर राजसी सह लागौ गोसाह ॥ (१)]
पंचायण दळ पूर पैठौ ईसर कौ प्रगट ।
हैवै थट हाकोटियाँ अणी चढावै ऊर ॥१३९॥
धाराँ मारि धड़ाँह देतौ गौ पैलाँ दळाँ ।
चौरँग वेळा चाँद उत भाऊ कमँध भड़ाँह ॥१४०॥
घाव करतौ घमसाणि सामि सुछळि अवसाण सिध ।
रामौ भिड़ि पाड़ै रवद नेजाळाँ निरवाणि ॥१४१॥
लोहि वधारण लाज चुँगलाळाँ दळ चूरता ।
भाटी रिण जूटा भला सुन्दर अजौ सुकाज ॥१४२॥
सह बीजाँ सिरदार साथे पह पौंहता सरगि ।
वेणी दूदावत विढणि पड़ि उप्पड़ै पँवार ॥१४३॥
माँगळिया मनमोट दळपति नै खाँनौ दुवै ।
विहँडै खग धाराँ विचित कळहि दुबाहाँ कोट ॥१४४॥

(१) केवल (D) में ।
१३९. पघट (क), प्रघट (च); हिव थागहां (क), हिवैघटाँ (ग); वढावै (ग) ।
१४०. धारे (क); चारेग वेला (छ); उव (क) ।
१४१. मुँहि [करतौ] (च); नेजाळां निखाण (क), नैजानाल निवांण (ग) ।
१४२. तूटा (च) ।
१४३. पहता (क) (छ); विढे [विढणि] (क); पह [पड़ि] (क) (छ) ।
१४४. दुवौ (ग) (च) ।

सामलदासोत कछवाहा मानसिंह शूरों से शूरता और धैर्य के साथ भिड़ रहा था। (५)]

शत्रुओं के लिए राहु के समान मुँहता साँवल रूपावत मार कर रहा था। उसे लड़ते हुए उसका स्वामी (रतन) तथा शाहजादे देख रहे थे ॥१३८॥

[हेमावत राजसी हाथियों के मस्तकों पर तलवार से प्रहार कर रहा था। वह औरंगसाह रूपी सिंह की सेना पर शहगोश जैसा लग रहा था। (१)]

यवनों के समूह के हृदय पर तेज अणी का प्रहार करता हुआ और हाक मारता हुआ ईसर का पुत्र पंचायण पूरी सेना में प्रविष्ट हो गया ॥१३९॥

कमधज भाऊ चाँदावत वीरों के धड़ों को असि-धारा से मारता हुआ युद्ध के समय शत्रु-सेना को काटने लगा ॥१४०॥

अवसानसिद्ध रामा निरवाण (चौहान) स्वामी के लिए घमासान युद्ध करता हुआ नेजे वाले यवनों से भिड़ कर उन्हें प्रहार कर के गिराने लगा ॥१४१॥

रक्त की लज्जा रखने के लिए दो भाटी वीर—सुन्दर और अज्जा—यवनों के दल को चूर्ण करते हुए रण में जुट गये ॥१४२॥

दूसरे सब सरदार तो प्रभु के साथ ही स्वर्ग पहुँच गये पर दूदावत वीर वेणा पँवार लड़ता ही रहा और गिर-गिर कर उठता रहा ॥१४३॥

महान् दलपति और खान नामक दो माँगलिया वीर युद्ध में खड्ग की धारा से योद्धाओं के दुर्ग-जैसे शत्रुओं को काट रहे थे ॥१४४॥

(५) वड़वड़ियो = वड़वड़ाया।
१३८. सुपह = प्रभु; अनै = और।
१३९. हाकोटियाँ = हाक; ऊर = हृदय।
१४०. पैलां = शत्रु; चौरंग = युद्ध।
१४४. नै = और; विहँडै = काटते।

वीहँडतौ गज वाज सामि तणै छलि साहणी ।
देखि कहै पैलाँ दळाँ धन हाथाँ धनराज ॥१४५॥
रूक दियंतौ रीठ बंगाळाँ माथे बहसि ।
पड़ियौ भड़ पाड़े प्रचँड गाहड़ नवल गरीठ ॥१४६॥
वीरति असिमर वाहि दूदावत भाँजे दुयण ॥
रतनौ छळि राजा रतन मुहरि रहै रिण माहि ॥१४७॥
माथै मुगलाळाँह वधि वधि खाँडा वाहतौ ।
चारण जूटौ चापड़ै धरमौ धाराळाँह ॥१४८॥
झाड़ंतौ झटकाँह घट बटकाँ करतौ घणाँ ।
मथुरौ भारथि मल्हपियौ कावौ विचि कटकाँह ॥१४९॥
विढतौ रिण वरियाम सामि तणै छळि सोहियौ ।
खग झाटाँ देतौ खित्री तूँवर जीवौ ताम ॥१५०॥
नाई समरि निडार नागाँ खागाँ निहसियौ ।
सार तणै भरि सोहियौ जीवौ ही जिण वार ॥१५१॥
झिलताँ खग झाटाँह देताँ गा पैलाँ दळाँ ।
भगवानौ नै भूरियौ थोरी गज थाटाँह ॥१५२॥
मुँह आगै वरियाम राजा रैणायर तणै ।
गुणियौ गज थाटाँ गयौ देतौ दळाँ दमाम ॥१५३॥
इतरा भड़ औनाड़ पड़िया राजा पाखती ।
राजा ऊभौ रतनसी पाखै तराँ पहाड़ ॥१५४॥

१४६. भम (छ) ।
१४७. वारत (क); दूजावत (छ); भांजण (क) ।
१४८. विधि विधि (क), वपिवधि (ग); धारालीह (च) ।
१४९. कूँवो [कावौ] (क); मल्हियौ (छ) ।
१५०. झाडां (ग) ।
१५१. नावी (क), नाव (ग); नागे खागे (ग) ।
१५२. झटकाँह (ग); थाटीह (च) ।
१५३. भारां [थाटाँ] (ग) ।
१५४. जाणि [तराँ] (क) (छ), तरै (ग); (च) में दूसरा चरण पहले, पहला बाद में ।

स्वामी के लिए युद्ध करता हुआ धनराज जब शाहजादों की सेना के हाथियों और घोड़ों को मार रहा था तो इसके भुज-बल को देख कर शत्रु-सेनाएँ धन्य-धन्य कह रही थीं ॥१४५॥

क्रुद्ध हो कर प्रचण्ड अभिमानी नवल यवनों के मस्तक पर युद्ध में तलवार मारता हुआ और भटों को गिराता हुआ स्वयं गिर पड़ा ॥१४६॥

राजा रतन के सम्मुख दूदावत रतन अत्यन्त वीरता से तलवारें चला कर शत्रुओं का भंजन करता हुआ रण में ही खेत रहा ॥१४७॥

चारण धर्मा मुगलों के मस्तकों पर बढ़-बढ़ कर खाँडा चलाता हुआ युद्ध-क्षेत्र में तलवारों से जुट गया ॥१४८॥

मथुरा कावा तलवार के झटकों से शरीरों के अनेक टुकड़े करता हुआ युद्ध में सेनाओं के बीच कूद पड़ा ॥१४९॥

देव-प्रिय क्षत्रिय जीवा तँवर स्वामी के हेतु युद्ध में लड़ता हुआ और तलवार चलाता हुआ शोभित हुआ ॥१५०॥

प्रसिद्ध और निडर जीवा नामक नाई नंगी तलवारों से सोत्साह लड़ता हुआ शस्त्रों से भरे शरीर वाला शोभित हुआ ॥१५१॥

भगवाना और भूरिया थोरी ने खड्ग प्रहार सहते हुए शत्रु सेनाओं और गज-समूहों पर शस्त्र प्रहार किया ॥१५२॥

देव-प्रिय दमामी गुणिया गज सैन्य को मारता हुआ राजा रतनसिंह के सम्मुख ही खेत रहा ॥१५३॥

जब इतने शक्तिवान् भट राजा के पास ही खेत रहे तो भी वह राजा रतनसिंह ऐसे खड़ा रहा जैसे बिना वृक्षों के पर्वत खड़ा हो ॥१५४॥

१४६. रीठ=युद्ध; बंगाळां=बंगाल जाति के यवन; गाहड़=अभिमानी।
१४७. दुयण=दुर्जन, शत्रु।
१४८. त्रापड़ै=युद्ध में; धाराळांह=धार वाली (तलवार)।
१४९. बटकां=टुकड़े; मल्हपियो=कूद पड़ा।
१५०. झाटां=झटके, प्रहार।
१५१. नागां=नंगी।
१५२. झिलतां=झेलते हुए; सहते हुए।
१५३. रैणायर=रतनसिंह।
१५४. पाखतीं=पार्श्व में; पाखै=विहीन; तरां=वृक्ष।

छंद मोतीदाम—खगाँ चढि धार हुवै बि बि खंड ।
पड़ै धर हिंदु मळेच्छ प्रचंड ।। [१]
रळत्तळ नीर जिहीँ रुहिराळ ।
खळाहळ जाँणि कि भाद्रव खाळ ।। [२]
उजेणि अकाळ भड़ाळ अछेह ।
मँडै घण जाँणि कि बारह मेह ।। [३]
उभै पतिसाह अणी करि अेक ।
आया सिर रत्तन सूर अनेक ।। [४]
रजै रतनागिर देखि रवद्द ।
निसाण रुड़ै सहि वाजित्र नद्द ।। [५]
हुवै मन आणँद पोरिस हाँम ।
जगै अगि देखि खँडीवन जाम ।। [६]
अड़ै सिर व्योम कमंधज ईम ।
भमाड़ण रोद गजाँ जिम भीम ।। [७]
धुबै दळ राजेन्द वाजेन्द धोम ।
गजै गुण बाण अनै रिण गोम ।। [८]
उडै घण बाण खतंग अँगार ।
पड़ै झड़ि नाखित जाँणि अपार ।। [९]
राजा करि हाक क्षत्री भ्रम राहि ।
मधावत खैंग धरै रिण माँहि ।। [१०]
हिलोळै फौज चढावै हीक ।
झँडा गज वाजि हुवा भड़ झीक ।। [११]

१५५. [१] व बै (ग); हिंदुय (च); म्लेच्छ (छ) ।
[२] रलहल नीरक (ग) ।
[३] यकाल झलाड़ (ग) ।
[४] रतंन (ग) ।
[६] (छ) (ज) में लुप्त; वरस [पोरिस] (ग) ।
[७] भवाण (ग), भमावण दोद (छ) ।
[८] वाजिद वाजिद (छ) ।
[१०] राखि [राहि] (ग) ।
[११] हिलोलेय (च), हिलेल (छ); चढावेय (च) ।

प्रचण्ड हिन्दू और म्लेच्छ खड्ग की धार पर चढ़ कर दो-दो खंड होते हैं और भूमि पर गिरते हैं।

वहाँ रुधिर-रूपी जल ऐसी तीव्र गति से वह रहा है मानो भाद्रपद में जल का नाला तेजी से वह रहा हो।

उज्जैन में अनन्त अकाल वृष्टि की झड़ी लग गयी है मानो बारह प्रालेय मेघ उमड़ आये हों।

दोनों शाहजादे अनेक शूरों की एक सेना बना कर रतन के सिर पर आ गये हैं।

मुसलमानों के झण्डे को देख कर रतनसिंह संतुष्ट हो रहा है और सभी वाद्य-यन्त्र वजने लगे हैं।

उसके (रतनसिंह के) मन में आनन्द हो रहा है और उसमें पौरुष की इच्छा जाग्रत हुई है मानो खाण्डव वन को देख कर अग्नि जल उठी हो।

कमधजों के उस स्वामी का शीश आकाश को छूने लगा है मानो गजों को घुमा देने वाला रौद्र-रूप भीम हो।

युद्ध में सेनाएँ, राजा लोग तथा वाजिराज प्रचण्ड हो रहे हैं और रणभूमि तथा आकाश में बाणों और उनकी डोरियों की गर्जना हो रही है।

अनेक बाण, खतंग और अंगारे उड़ रहे हैं और पड़ रहे हैं मानो अपार नक्षत्र झड़ रहे हों।

मधकर-पुत्र राजा रतन ने हाक मार कर क्षत्रिय धर्म के मार्ग को अपनाया है और वह रण में खड्ग धारण कर उतरा है।

वह सेना के मध्य भाग को अस्त-व्यस्त करने लगा है और हिंकार करते हुए गज, अश्व और वीरों के समूह को छिन्न-भिन्न कर रहा है।

१५५. रळतळ = बहता है; रुहिराळ = रुधिर वाला; खळाहळ = तेजी से बहना; खाळ = नाले। झड़ाळ = झड़ी वाले; अछेह = अनन्त। रुड़ै = बजते हैं। जाम = जब। धुवै = लड़ते हैं; गुण = प्रत्यंचा; गोम = आकाश। हिलोळै = आन्दोलित करता है; हीक = हिंकार; झीक = प्रहार।

जुटा रतनागर औरँग जाम।
वडा जम रूप विन्हे वरियाम ।। [१२]
धमद्धम सेल वहै खगधार।
पड़ै झसड़क्क पटाँ अण पार ।। [१३]
अवज्झड़ तिज्झड़ घाव असंध।
कटै कर कोपर काळिज कंध [१४]
भड़ाँ धड़ भंजि हुवै बि बि भग्ग।
खड़क्खड़ ढल्ल झड़ज्झड़ खग्ग ।। [१५]
कड़क्कड़ वाजि धड़ाँ किरमाळ।
बड़ब्बड़ भाजि पड़ंत बँगाळ ।। [१६]
दडब्बड़ मुण्ड रड़ब्बड़ दीस।
अड़ब्बड़ लेत चड़च्चड़ ईस ।। [१७]
अँत्राँ खग झाट निराट अळग्ग।
पड़े बि बि जंघ पड़ै झड़ि पग्ग ।। [१८]
पड़े रिण उच्छळि अेम प्रवंग।
कुडाँ चढि जाणि विनाणि कुरंग ।। [१९]
खावै रिण मद्धि गड़ूथल खान।
जिहीं नट खेल कुलट्ट जुआन ।। [२०]
रौद्राँ रिण भूमि करंत रतंन।
कपी दळ जाँणि कि कुंभकरंन ।। [२१]
हुवै रिण हक्क किळक्क हमस्स।
उडै रत छौळिय दिस्स अरस्स ।। [२२]

१५५. [१३] पटांल (ग), पटे (च), पटाण (छ)।
[१४] अवझभाड (छ); भडा [घाव] (ग)।
[१५] विभाग।
[१६] कड़कर (छ)।
[१७] सूँडि (छ); लैतड़ (ग)।
[१८] पीड़ा (छ)।
[१८] का उत्तरार्ध और [१९] का पूर्वार्ध (ग) में लुप्त है, पर हाशिये में बाद में लिखा गया है।
[२२] (छ) में दूसरी पंक्ति :—'आखै धन धन रतन्न अरस्स'; दिसत्त (ग)।

जब ग्रोरंगजेब ग्रौर रतन भिड़ते हैं तो ऐसे लगते मानो क्रमशः यम-रूप ग्रौर देवों के प्रिय हों।

सेलें ग्रौर खड्गें धमाधम चल रही हैं ग्रौर सड़सड़ाती हुई लग कर ग्रार-पार निकल रही हैं।

भट लोग तलवार के टेढ़े वार कर रहे हैं ग्रौर उनके हाथ, मस्तक, कलेजे ग्रौर कन्धे कट रहे हैं।

उन भटों के धड़ कट-कट कर दो-दो खंड हो रहे हैं। ढालें खड़ाखड़ ग्रावाज कर रही हैं ग्रौर तलवारें झड़ाझड़ बज रही हैं।

तलवारें घोड़ों के धड़ों पर कड़ाकड़ बज रही हैं। यवन ताबड़तोड़ भागते हुए गिर रहे हैं।

उछलते हुए मुण्ड दिशाग्रों में बिखर रहे हैं ग्रौर इधर-उधर भागते हुए रुद्र उन्हें चुन-चुन कर झटपट उठा रहे हैं।

खड्ग प्रहार से ग्राँतें पूर्णतः कट कर ग्रलग-ग्रलग हो रही हैं। जंघाएँ ग्रौर पांव दो-दो टुकड़े हो कर झड़ कर गिर रहे हैं।

घोड़े उछल-उछल कर युद्ध में गिर रहे हैं मानो पर्वत-शिखर पर चढ़ कर हिरण कूद रहे हों।

खान लोग गिरह खा कर रणक्षेत्र में ऐसे गिर रहे हैं मानो युवक नट गिरह खा रहा हो।

रतन यवनों को रण में कुचल रहा है मानो कुम्भकर्ण कपि-दल को कुचल रहा हो।

युद्ध में हाक, किलकार ग्रौर हमस (खुरों की ग्रावाज) हो रही है ग्रौर सब दिशाग्रों में ग्रनूपम रक्त की लहरें उड़ रही हैं।

१५५. झसड़क्क = सड़ासड़ ध्वनि; पटां = तलवारें (पट्टा खेलने की)। ग्रवज्झड़ = टेढ़े प्रहार; तिज्झड़ = खड्ग; ग्रसंध = न सँधने वाले; कोपर = खोपड़ी। ढल्ल = ढाल। किरमाळ = तलवार। दड़ब्बड़ = दड़ादड़, शीघ्रता से भागते; रड़ब्बड़ = छिन्न-भिन्न होना; ग्रड़व्वड़ = इधर-उधर भागना; चड़च्चड़ = झटपट उठना। ग्रँत्रां = ग्राँतें; निराट = पूर्णतः। कुडां = पहाड़ी। गड़ूथल = कलाबाजी; कुलट्ट = कलाबाजी। छौळिय = लहर; ग्ररस्स = सदृश।

आखै धन धंन रतंन अरक्क ।
चढावै मेछ घड़ा खग चक्क ॥ [२३]
ग्रहे खग नागेन्द कोप गिरंद ।
मथै सुर असुर जाणि समंद ॥ [२४]
मधावत कज्जि रतन्न मुगत्ति ।
प्रिथी कजि आफळिया असपत्ति ॥ [२५]
कियै मुख चोळ धसै रिण काळ ।
रुळै पग्य अंत्र गळे वरमाळ ॥ [२६]
वरै पगतिसाह घड़ा वर वीर ।
महा गज वाज पछाड़ै मीर ॥ [२७]
वड़प्फर टूक हुवै गज वाज ।
तड़प्फड़ मच्छ जिहीं सिरताज ॥ [२८]
मरद्द जरद्द पड़ै अनमंध ।
कहक्कह वीरह नाचि कमंध ॥ [२९]
हड़ाहड़ रिक्खि हुवै हर हार ।
जयज्जय जोगणि किद्ध जियार ॥ [३०]
महा रिण पीढै सूर मसत्त ।
दिगम्बर जाणि अखाड़ै दत्त ॥ [३१]
पळच्चर साकणि डाकणि प्रेत ।
खुधावँत भक्ख लियै रण खेत ॥ [३२]
[रमज्झम झाँझर घूघर रोळ ।
झले वर सूर वरै रँभ झोळ ॥] [३३]

१२५. [२३] चढावी मेछ खडखड (च); (छ) में इसके स्थान पर—
'चढावीय म्लेच्छ घड़ा खल चक्क । उड़ी रज माँहि नदी ठअरक्क ।'
[२७] वडा (छ) ।
[२८] वडोव्वड (ग); लही [जिहीं] (ग) ।
[३०] हडहड (ग) (च) (छ) ।
[३१] महाजुध (च); डिगम्बर (ग) ।
[३२] बुधा वंध मूख (च) ।
[३३] रुणंझुण नेवर घुंघर रुल (च); झूल (च) ।

सूर्य कहता है कि "रतन धन्य है जो म्लेच्छ सेना को तलवार के चक्कर में चढ़ा रहा है।"

रतन और शाहजादे नागराज रूपी तलवार से गिरीन्द्र तुल्य गजराजों पर ऐसे प्रहार करने लगे हैं मानो देव और असुर समुद्र-मन्थन कर रहे हों।

मुक्ति के लिए मधुकर-सुत रतन और भूमि के लिए शाहजादे आपस में भिड़ गये हैं।

काला रतनसिंह मुख लाल करके युद्ध में धँसा है जहाँ अँतड़ियों और कण्ठों की वरमालायें पैरों में बिखरी पड़ी हैं।

वह चुन-चुन कर बादशाह की सेना के अच्छे-अच्छे वीरों और मीरों को और बड़े हाथियों और घोड़ों को पछाड़ रहा है।

हाथियों और घोड़ों के बड़फ्फर (ढाल) टूक-टूक हो गये हैं। शिर के ताज मछलियों की तरह तड़फड़ाने लगे हैं।

मर्द पीले पड़ कर लगातार गिरने लगे हैं और कबन्ध कहकहा लगा कर नाचने लगे हैं।

हड्डियों के समूह शंकर के हार बन गये हैं और योगिनियाँ जयजयकार करने लगी हैं।

मस्त शूरवीर महा रण में लेट गये हैं मानो दिगम्बर भगवान शंकर अखाड़े में सो गये हों।

भूखे मांस-भक्षी जीव, शाकिनी, डाकिनी और प्रेत आदि अपने भक्ष्य रणभूमि से ले रहे हैं।

[झाँझर तथा घुँघरू को रमझम बजाती हुई रम्भादि अप्सराओं का समूह शूर-वीरों का वर रूप में वरण कर रहा है।]

१५५. आखै = कहते हैं; अरक्क = सूर्य; चक्क = चक्कर। कज्जि = हेतु; आफळिया = भिड़े। चोळ = लाल। वड़फ्फर = ढाल। जरद्द = पीले; अनमंध = सतत। किद्ध = किया। पोढ़ै = लेटे हैं। पळच्चर = मांसाहारी; खुधावँत = भूखे; भक्ख = भक्ष्य। झले = पकड़ कर; झोळ = समूह।

बणै त्रिण सै सर सेल्ह छबीस ।
सोहै किर वंस गिरव्वर सीस ।। [३४]
असी खग घाव लगा जब अंग ।
जोधा हर ताम पड़े जुड़ि जंग ।। [३५] ।।१५५।।

दूहौ — रतन पड़े रण नीवड़े औरँग अड़े अरस्सि ।
सूर खड़े चढि रत्थ सझि नौबत तूरि निहस्सि ।।१५६।।

कवित्त—पड़े वाज गजराज राव रावत्त नरेसुर । [१]
पड़े खान उमराव मुगल भूरा मीरम्बर ।। [२]
पड़े सज्भ धड़ गजाँ इसा दीसै उणिहारै । [३]
उत्तारी रिणि आणि जाणि बाळद विणिजारै ।।[४]
गढपति पड़े छत्रपति गरा चंद जस्स नामौ चड़े ।[५]
लाज रो कोट उज्जेणि लड़ि पड़ि रतंन राजा पड़े ।।[६]।।१५७।।

वचनिका—तिणि वेळा राजा रैणसाह रा तंडळ चुणि विणि लिया । [१] सराँ छड़ाँ सूँ दाग दिया । [२] नर देह जळाई । [३] अमर देह पाई । [४] ब्रहमा विसन महेस इन्द्र सुर साथ आया । [५] इन्द्राणी धमळ मंगळ गाया । [६] पौहप वरखा करि बधाया । [७] विमाणे पाव धारौ । [८] वैकुंठा पाधारौ । [९] तिणि वेळा राजा रतन वैकुंठनाथ महाराज सूँ कर जोड़ि अरज करि कहियौ। [१०] महाराज, आज री वेढ रा धणी राठौड़ । [११] राठौड़ा माँहे हुँईज । [१२]

१५५. [३४] छत्रीस (छ) ।
१५६. सभे (छ); रुडे [तूर] (च) ।
१५७. [१] रतनेसुर (च) ।
[३] सुंडिधर गजाँ (छ); अनुहारै (ग) ।
[५] गिरा (ग) ।
[६] लाजलौ (ग) ।
१५८. [१] चुणे (छ) । [२] सार [सराँ] (ग); सर वडालाँ (छ) । (७) (छ) प्रति में इस वाक्य से पूर्व :—'देवताये' । [१०] त्यै [तिणि] (छ) । [११] ज महाराज (ग) ।

उसके (रतनसिंह के) शरीर पर तीन सौ वाण तथा छव्वीस भाले ऐसे लगे हैं मानो पर्वत पर वाँस उगे हुए शोभित हों।

यों जोधावत रतन युद्ध-भूमि में गिरा तब उसके शरीर पर खड्ग के अस्सी घाव लग चुके थे।१५५॥

तव रतनसिंह मर कर गिर पड़ा और युद्ध समाप्त हो गया। औरंगजेब मैदान में अड़ा रहा। उस समय नौवत और तुरहियाँ वजीं और यह दृश्य देखने को सूर्य अपने सजे हुए रथ में खड़ा रह गया ॥१५६॥

युद्ध-भूमि में राव, रावत, नरेश्वर, घोड़े और गज-राज मर कर गिर पड़े। खान, उमराव, भूरे मुगल और मीर गिर पड़े। सजे हुए हाथियों के धड़ गिर पड़े। ये सब ऐसे लगे मानो किसी बंजारे (वणिक) ने अपना सार्थ रोका हो। गढ़पति और छत्रपति भी गिर पड़े और उन्होंने अपने यश का चन्दनामा लिखाया। लज्जा का दुर्ग राजा रतन भी उसी युद्ध-भूमि में लड़ कर गिर पड़ा ॥१५७॥

उस समय राजा रतनसिंह के अंग-प्रत्यंग चुन कर एकत्र किये गये। वाणों और भालों के डण्डों से उनका दाह-संस्कार किया गया। उसका नर-देह जल गया। तव उसे अमर देह प्राप्त हुई। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र और देवताओं के समूह आये। इन्द्राणी ने धवल मंगल पुष्पों को वर्षा करके वधावा किया। (उन्होंने कहा) "विमान पर पैर रखिये, वैकुण्ठ पधारिये।" उस समय राजा रतन ने महाराज वैकुण्ठ-नाथ (विष्णु भगवान) से प्रार्थना कर के कहा, "महाराज, आज के युद्ध के स्वामी राठौड़ थे, और उन राठौड़ों में मैं भी था।

१५५. सेल्ह=भाले; गिरव्वर=गिरिवर।

१५६. नीवड़ै=समाप्त हुआ।

१५७. उणिहारै=अनुहार, स्वरूप; वाळद=साथ; विणिजारै=वंजारा, व्यापारी; गरा=समूह; पड़ि=युद्ध में।

१५८. छड़ाँ=लकड़ियों; दाग=दाह। साथ=समूह। वेढ=युद्ध।

मुदै मोनूँ कहियोई ज चाहीजै । [१३] मो साथे वडा वडा गढपति छत्रपति कामि आया । [१४] हाडा मुकुंदसिंघ सरीखा । [१५] गौड़ अरजन (साल) सरीखा । [१६] सीसोदिया सुजाणसिंघ सरीखा [१७] झाला दळथंभ सरीखा । [१८] अवर ही छत्तीस वंस हिंदू रिणखेत माहे खंड विहंड हुय पड़िया छै । [१९] त्यानूँ सरजीत कीजै । [२०] वैकुंठवास दीजै । [२१] [इण जाइगा बारह दिनाँ री मुकाम कीजै [२२] ज्यूँ इतरा माहै अगनि सिनान करि सती ही आवै । [२३] महाराज मानी । [२४] हाँ जी दूलह क्यूँ चलै विगर जानी । [२५] वैकुंठनाथ विसक्रमा कूँ हुकम किया ज वैकुंठ री रौस आतलोक माहे सोव्रनमै महलायत पैदास करौ । [२६] सहर रौ नाम रतनपुर धरौ । [२७] इतराँ माहै वात कहताँ वार लागै । [२८] वैकुंठ री रौस । [२९] गैब री इच्छा । [३०] सरूप गढ कोट बाजार सतखणा सोव्रनमै आवास । [३१] गौख जौख चित्राम चित्रसाळा देवछभा रचाई । [३२] दीठाँ ही ज वणि आवै । [३३] हो हो भाई भाई । [३४] तिण सहर री पाखती सळिता सरोवर कमोद जळ कमळ संजुगत विराजमान दीसै छै । [३५] हंस मोती चुगि चुगि क्रीड़ा करै छै । [३६] वडा वडा आराम बाग उत्तम द्रुम लता मेवा परिमल संजुगत नाना प्रकार रंग सुरंग गुलाब विराजमान दीसै छै । [३७] अनेक खग विहंगम क्रीळा करै छै । [३८] इणि भाँति सूँ राजा रतन नूँ वैकुंठनाथ समीप वेसाणि दीवाणि किया । [३९] अवर ही छत्तीस वंस हिंदू सरजीत करि महोला लिया]

१५८. [१३] मुनों (छ) । [१४] छत्रधारी (च) । [१६] गौड इन्द्र साल (छ) । [१९-२०] (ग) (छ) (ज) प्रतियों में 'हिन्दू....सरजीत कीजै ।' के बीच का पाठ लुप्त । [२४] आ वात श्री महाराज मानी (छ) । [२५] दूल्हण (छ) । [२६] विश्वकर्मा (ग) (छ); [ज] केवल (च) में; सेनाणी [रौस] (ग); [सौव्रनमै] (छ) में लुप्त; पैदा करो (ग) (छ) । [२७] सहरर (ग) । [२८] लागी (च) । [२९-३०] सीकोट जिही गैव रा इच्छया सरूपी (च) । [३०-३१] गैव सरूपी गढ़ (च) । [३२] जोख झरोख (च), चात्रिम चत्रसाला (छ); [देवछभा] (च) (छ) में लुप्त । [३४] हो भाई (च) । [३५] तियै (ग); विराजै छै (छ) । [३६] चुणि चुणि (च) (छ); कीला (ग) । [३७] धुम (च); वेल [मेवा] (ग) । [३९] दीया [किया] (छ) ।

अतः मुझे यह कहना ही चाहिए। मेरे साथ बड़े-बड़े गढ़पति, छत्रपति काम आये। मुकुन्दसिंह हाड़ा जैसे। अर्जुन गौड़ जैसे। सुजानसिंह सीसोदिया जैसे। दयालदास झाला जैसे। और भी छत्तीस वंशों के हिंदू रण-भूमि में खंड-खंड होकर गिर पड़े हैं। उन सब को पुनर्जीवित कीजिए। वैकुण्ठ में निवास दीजिए। बारह दिन यहीं पड़ाव रखिए। जिससे इस बीच में सतियाँ भी अग्नि-स्नान कर के (सती हो कर) आ जायें।" महाराज (विष्णु) ने यह बात मान ली। बोले, "हाँ जी, बरातियों के बिना दूल्हा क्यों चले।" फिर वैकुण्ठनाथ ने विश्वकर्मा को आज्ञा दी, "वैकुण्ठ ही के समान मृत्युलोक में सुवर्णमय महल उत्पन्न करो और उस शहर का नाम रतनपुर रखो।" इतने में ही बात करते जितना समय लगा उससे भी पूर्व वैकुण्ठ के ही समान भगवान की इच्छा के अनुसार सुन्दर गढ़, कोट, बाजार, सात मंजिलों के सुवर्णमय आवास, गवाक्ष और स्त्रियों के चित्रों से चित्रित चित्रशालाएँ रची गयीं। बस देखने से ही उसकी सुन्दरता समझ में आ सकती है। अरे भाई, उस शहर के निकट ही सरिताओं और सरोवरों में कुमुद जलकमलों सहित विराजमान दीख रहे हैं। हंस मोती चुग-चुगकर क्रीड़ा कर रहे हैं। बड़े-बड़े उद्यान, उत्तम लता, द्रुम, मेवे, परिमल संयुक्त नाना प्रकार के रंग-बिरंगे गुलाब विराजमान हैं। अनेक विहंगम पक्षी क्रीड़ा कर रहे हैं। इस प्रकार वैकुण्ठनाथ ने राजा रतन को अपने पास बिठा कर दरबार किया। दूसरे छत्तीस वंश के हिंदुओं को भी जीवित करके सम्मिलित किया।

१५८. सरजीत = पुनर्जीवित। जाइगा = जगह। अगनि सिनान = सती होकर। विगर = विना, वग़ैर। रीस = रीति। गैब = ईश्वर। सतखणा = सात मंजिल के। गोख = गवाक्ष; जीख = स्त्री, योषित्; चित्राम = चित्रित। सळिता = सरिता; संजुगत = संयुक्त। क्रीळा = क्रीड़ा। वेसाणि = वैठा कर; महोला = सम्मिलित।

[४०] किणि भाँति सूँ । [४१] छत्रीस वाजित्र वाजै छै। [४२] गजराज गाजै छै। [४३] लाख लाख रा लाखीक घुरस खाय खाय झपट्टा ले छै। [४४] ब्रहमा विसन महेश इन्द्र सुर साथै विराजमान हुवा छै। [४५] नव नाथ चौरासी सिद्ध विराजमान हुवा छै। [४६] आप विसन चत्रभुज रूप धारि। [४७] वागा बणाव करि। [४८] संख चक्र गदा पदम धारि। [४६] वैजयन्ती माल। [५०] मोरमुकुट कुंडल विसाल। [५१] मदन मोहन। [५२] कमल लोचन। [५३] स्याम सुन्दर ठाकुर विराजमान हुवा छै। [५४] मणि माणिक जड़ित छत्रपाट सिंघासण विराजमान दीसै छै। [५५] झळलाट करि जगाजोति जागै छै। [५६] चंद सूरज बेहू खवासी करै छै। [५७] चौसरा चमर ढुळै छै। [५८] नव लाख नाखित्र माल चिराक झालि खड़ा रहिया छै। [५६] बारह घण मुँहड़ा आगै छिड़काव करै छै। [६०] तीन प्रकार रौ पवन वाजै छै। [६१] सीत मंद सुगंध अनेक परिमळ जुगति झोला खाय खाय लहरि ले छै। [६२] मुँहडा आगलि आखाड़ै रंभा पातर नट नाटिक संगीत धुनि करि करि दिखावै छै। [६३] ज्यारी मलूक हाथ पाँव कड़ि धड़। [६४] सोळह सिंगार रंग प्रेम का झड़। [६५] तेज पुंज। [६६] रूप की गंज। [६७] काम की कळी। [६८] चख नख चीज। [६६] सुख की सिळाव विरह की बीज। [७०] अैसी उरंबसी जैसी अपछरा। [७१] मुँहडा आगलि हाव भाव कटाछ थेइ थेइ ततकार निरत करै छै। [७२] छह राग छत्तीस रागणी सपत सुर भाँति भाँति करि दिखावै छै। [७३] रीझि रीझि राजी हुवै छै। [७४] ग्याँन के गुर। [७५] तिणं वेळा इसड़ी

१५८. [४०] हिन्दू छत्रीस वंस (च)। [४१] इणि [किणि] (छ)। [४२] छत्रीस वंस (छ)। [४५] [इन्द्र] (ग) (छ) में लुप्त; दीसै छै (ग)। [४६] (ग) (छ) (ज) में लुप्त। [४६] [धारि] (छ) में लुप्त। [५०] [माल] (च) में लुप्त। [५५] पीठ (च), पाट करि (छ)। [५६] जगती (छ)। [५८] (क) (ग) में लुप्त। [५६] (ग) में लुप्त। [६०] मुंह आगै (क) (छ)। [६२] सुरभि [सुगन्ध] (ग)। [६३] आगे (क) (ग) (ज)। [६५] रंग का (क) (छ); प्रेम की (ग)। [६७] का रूप (ग)। [६८] वीजली की कली (ग)। [७२] मुह आगलि करै छै (क) (छ)। [७३] भाँति करि (क)। [७५] करि (क) (छ)।

कैसे ? छत्तीस वाद्य बज रहे हैं। गज-राज गर्जना कर रहे हैं। लाख-लाख रुपये के लाखीक (बहुमूल्य) घोड़े टाप मारते हुए घूम रहे हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र और देवताओं के समूह विराजमान हैं। नव नाथ और चौरासी सिद्ध भी विराजमान हैं। स्वयं विष्णु भगवान चतुर्भुज रूप धारण कर वागा पहन कर सज्जित हैं। वे शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हैं। वैजयन्ती माला, मोर-मुकुट, विशाल कुण्डल आदि धारण कर मदन-मोहन, कमल-लोचन, श्याम-सुन्दर भगवान विराजमान हैं। मणि-माणिक्य से जटित, छत्र वाले सिंहासन पर विराजमान दीख रहे हैं। उनकी ज्योति उदग्रता से चमक रही है। चन्द्र और सूर्य दोनों खवास का काम कर रहे हैं। चारों ओर चमर ढुल रहे हैं। नव लाख नक्षत्रों की माला चिराग पकड़े हुए खड़ी है। बारह मेघ सम्मुख जल छिड़क रहे हैं। तीन प्रकार का—शीतल, मन्द, सुगन्ध—पवन चल रहा है। वह परिमल के गन्ध में घूम कर उसकी लहरें ले रहा है। सम्मुख अखाड़े में रंभादि नर्त्तकियाँ, नाट्य-संगीत की ध्वनि सुनाते हुए नाटक दिखा रही हैं। उनके हाथ, पैर, कटि और धड़ सब कमल के समान सुन्दर हैं। वे षोड़श शृङ्गार किये हैं। प्रेम के रंग की झड़ी लगी है। वे तेज की पुन्ज हैं। रूप की आगार हैं। काम की कलियाँ हैं। चक्षु से नख पर्यन्त सुन्दर हैं। सुख के शील वाली हैं। विरह की बिजली हैं। ऐसी उर्वसी जैसी अप्सराएँ मुँह के आगे हाव-भाव कटाक्ष करती हुई थेइ-थेइ नृत्य कर रही हैं। छह रागों, छत्तीस रागिनियों और सप्त स्वरों के भाँति-भाँति के प्रयोग दिखा रही हैं। ज्ञान के गुरु उसे सुन रीझ-रीझ कर प्रसन्न हो

१५८. घुरस=टाप (घोड़े की)। खवासी=सेवकाई। चौसरा=चारों ओर। झालि=पकड़ कर। पातर=नर्तकी। मलूक=कमल; कड़ि=कटि। सिळाव=शीलवती; बीच=बिजली। गुर=गुरु।

वेढ री डाकणि वात घोड़ा चढि चढि दसो दिसि चाली। [७६] उज्जेणि राजा रतन कामि आया। [७७] साहि छळि दिल्ली। [७८] इसड़ी आवाज महा सतियाँ रै कानि आई। [७९] महाराज रयण साह रा अंतेउर हरि हरि करि ऊठी वळण। [८०] सकति रूप बाई। [८१] कुँण कुँण। [८२] कछवाही राजावति पतिव्रता अतिरूपदे। [८३] पुरुसोत्तमसिंघ दुरजणसिंघौत री सारधू। [८४] देवड़ी रयणसुखदे। [८५] चाँदा प्रिथीराजौत री सारधू। [८६] कछवाही राजावति गुणरूपदे। [८७] मोहकमसिंघ प्रेमसिंघौत री सारधू। [८८] कछवाही सेखावति सुखरूपदे। [८९] पुरुसोत्तमसिंघ तोडरमलौत री सारधू। [९०] इणि भाँति सूँ च्यारि राणी त्रिण्हि खवासि। [९१] गंगाजळ सिनान करि। [९२] हीर चीर चामीर। [९३] सोळह सिंगार परिमल पहरि। [९४] पाँन कपूर खाइ। [९५] दान पुंन करण लागी। [९६] तिणि वेळा अवर ही राजलोक देखि देखि कहै छै। [९७] थे तौ आबू आँबेर ऊजळा करि वैकुंठ महाराज पासि चाली। [९८] हो बाई वड भागी। [९९] इतराँ माहै वात करताँ वार लागै। [१००] लहरि दरियाव हळोहळ महा सरवर री पाळि अगर चंदन रा घर वणाया। [१०१] इतरा माहै आकास सूँ सोव्रनमै विवाँण पिणि आया। [१०२] ॥१५८॥

छंद त्रोटक — तिण वार त्रिया रतनेस तणी।
विधि साहस सोळ सिँगार वणी॥ [१]
पग हाथ मलूक ज पंकजयं।
गुणि छत्तिय गत्ति विन्है गजयं॥ [२]

१५८. [७६] डाकणि [घोड़ा] (क); दिसि विदिसि कूँ (क) (छ)। [७८] साहिब दिल्ली (च)। [७९] सांभली [रै] (क) (छ)। [८०] [रा] (क) में लुप्त; अंतैवा (ग) (च) (छ)। [८३] पतिभ्राता (च); [राजावति] (क) में लुप्त; [अतिरूपदे] (क) (ग) (छ) में लुप्त। [८४] मुहकमसिंघ [पुरुसोत्तमसिंघ] (च)। [८५-८६] (क) में लुप्त। [८९] [कछवाही] (ग) में लुप्त। [९१] [इणि भाँति सूँ] (क) में लुप्त। [९३] [हीर] (च) में लुप्त; चीर चमार (च)। [९३-९५] हीर चीर चामीर सरीर (छ), पहाई परिमल सुधासुवास लगाय (क) (छ)। [१००] कहतां (क) (च)। [१०१] हलेहल (च)। [१०२] [पिणि] (क) (ग) (छ) (ज) में लुप्त।

१५९. [१] साहसवे (क) (छ)।

रहे हैं। उसी बीच इस युद्ध का समाचार ले जाने वाली डाक वाली स्त्रियाँ घोड़ों पर चढ़ कर दसों दिशाओं में चलीं। दिल्ली के शाह के लिए लड़ता हुआ राजा रतन उज्जैन में काम आया। यह आवाज महा सतियों के कानों में पड़ी। तो महाराजा रतन के अन्तःपुर की शक्ति-रूप स्त्रियाँ 'हरि हरि' कह कर जलने के लिए उठीं। कौन-कौन? पुरुषोत्तमसिंह दुर्जनसिंहोत की पुत्री पतिव्रता राजावति अतिरूपदे, चाँदा पृथ्वीराजोत की पुत्री देवड़ी रैणसुखदे, मोहकमसिंह प्रेमसिंहोत की पुत्री कछवाही राजावति गुणरूपदे और पुरुषोत्तमसिंह टोडरमलोत की पुत्री कछवाही शेखावति सुखरूपदे। इस प्रकार चार रानियाँ और तीन खवासिनें गंगा-जल से स्नान करके, हीरे, चीर और सोने के गहने आदि सोलह शृंगार से सुशोभित तथा सुवासित होकर पान-कपूर खा कर दान-पुण्य करने लगीं। उस समय अन्य राज-परिकर देख-देख कर कहने लगा—"हे बाई ! आप तो बहुत बड़भागिनी हैं जो आबू और आमेर का नाम उज्ज्वल कर वैकुण्ठ में महाराजा रतन के पास जा रही हैं।" इतने में—बात करने में—जितना समय लगे उससे भी कम समय में लहरों के हिलोरे लेते हुए महा सरोवर के किनारे अगर और चन्दन का घर (चिता) बनाया गया। इतने में आकाश से सुवर्ण-मय विमान आया ॥१५८॥

उस समय रतनेस की पत्नियाँ विधि-पूर्वक षोड़श शृङ्गार से विभूषित थीं।

उनके सुन्दर पैर और हाथ कमल-तुल्य थे। उनके गुणी उरोज दो गज-कुम्भों के तुल्य थे।

१५८. अंतेउर = अन्तःपुर। सारधू = पुत्री। खवासि = उपपत्नी। चामीर = स्वर्ण। हळोहळ = हिल्लोलमय। पिणि = भी।

१५९. सोळ = सोलह। गत्ति = तरह; विन्है = दो।

कटि सिंघ नितंब जंघा कदली ।
चित नित्त प्रवित्त मराल चली ॥ [३]
तन रंभह खंभ कनंक तिसी ।
ओपै सिरि नागेन्द्र वेणि इसी । [४]
वनिता मुख पुंनिम चंद वणी ।
भ्रिँग भ्रूंह चखाँ भ्रिग रूप भणी ॥ [५]
कँठ कोकिळ दंत अनार कळी ।
अग्र नक्क अळक्क कळा उजळी ॥ [६]
आभूसण अंग सुचंग इसा ।
जगमग्गय नक्ख नखत्र जिसा ॥ [७]
सिख नक्ख लगै सिणगार सजी ।
लज लोक तजे विधि रत्ति लजी ॥ [८]
कुळवंति पतीवरता किहड़ी ।
उधरै पख च्यारि जिसा इहड़ी ॥ [९]
घुरिया घण वाजित्र घाव घणूँ ।
तिण वार त्रियाँ वधि रूप तणूँ ॥ [१०]
चित भाम सुरामं सँभारि चली ।
भ्रिँग मोह सँसार तियार भली ॥ [११]
मिळिवा प्रिय त्रीय सभै मरणं ।
करुणा सहि लोक लगा करणं ॥ [१२]

१५९. [३] [नितम्ब जंघाकर] (ग) में लुप्त पर हाशिये में दिया है; कंतली (च); म्रिणाल (ग) (ज), मृदाल (छ); वली (क), वणी (छ) ।
[४] कलंक (च); विणि (च) ।
[५] भ्रमचखी (ग) (छ) ।
[६] कवलोकिल (ग); नक्ख अलक्ख (क) (छ) ।
[७] तंन [अंग] (छ); नग (क) (छ) ।
[८] जिसभी (क); जललोक (ग); सत्त भजी [रत्ति लजी] (क), सकु लजी (ग) ।
[९] कुलवंतिय (च); किसडी (च); इसड़ी (च) ।
[११] नाम [भाम] (क) (छ); नयार (क) ।
[१२] त्रिया (छ); करणी (छ) ।

उनकी कटि सिंह की सी थीं और नितंब तथा जँघायें केले के खम्भे सदृश। वे सदा पवित्र मन वाली रानियाँ हंस के समान चलीं।

उनका स्वर्णिम शरीर केले के खम्भे जैसा था। उनके शिर पर नाग जैसी वेणी सुशोभित थी।

उन वनिताओं का मुख पूर्णिमा के चन्द्र जैसा था। भौंहें मृग-जैसी और नेत्रों का रूप भी मृग-जैसा था।

कण्ठ कोकिल के से थे और दाँत अनार की कली के समान। नासाग्र पर उज्ज्वल कलाओं वाली अलकें थीं।

अंगों पर अति सुन्दर आभूषण थे और नख नक्षत्रों के समान चमक रहे थे।

वे नख से शिख तक शृङ्गार-सज्जित ऐसी लगती थीं मानो उन्होंने लोक की लाज छोड़ कर रति की विधि को अपना लिया हो।

वे ऐसी कुलवंती पतिव्रता थीं कि उन्होंने अपने चारों कुलों का उद्धार कर दिया।

उस समय उनके रूप की वृद्धि देख कर अनेक वाद्य-यन्त्र बजने लगे।

वे स्त्रियाँ चित्त में अपने पति का ध्यान कर के और संसार के मोह और भ्रम को त्याग कर और उन्हें भूल कर चलीं।

उन्होंने प्रिय से मिलने के लिए मरने की तैयारी की। तब तो समस्त लोक करुणार्द्र हो गया।

१५६. रंभह = केला। भणी = कही जाती है। नक्क = नाक; अलक्क = अलकें। किहड़ी = कैसी; इहड़ी = ऐसी। घुरिया = बजे। भाम = स्त्री; सुराम = सुरमणी; तियार = त्याग कर।

सुर सत्थ भणै कथ देखि सती ।
जस मींढ न को नर सूर जती ॥ [१३] ॥१५६॥

दूहा — सुर नर मिळिया जात सह पेखै गात प्रवीत ।
तिणि वेळा धनि धनि त्रिया ईख कहै आदीत ॥१६०॥
सती उमग्गे स्रग दिसा मोह तजे म्रित लोक ।
टगटग्गी लग्गी तई लग्गा देखण लोक ॥१६१॥
अजुवाळण पख आप रा नारि तजे ग्रिह नेह ।
चढि चंचळ सरवर चली मंगळ जाळण देह ॥१६२॥

वचनिका — इणि भाँति सूँ च्यारि राणी त्रिण्ह खवासि द्रव्य नाळेर उछाळि वळण चाली । [१] चंचळाँ चढि महा सरवर री पाळि आइ ऊभी रही । [२] किसड़ी ही क दीसै । [३] जिसड़ौ कीरतियाँ रौ झूँबकौ । [४] कै मोतियाँ री लड़ी । [५] पवंगाँ सूँ उतरि महा प्रवीत ठौडि ईसर गौरिज्या पूजी । [६] कर जोड़ि जोड़ि कहण लागी । [७] जुग जुग औ ही ज धणी देज्यौ । [८] न माँगाँ बात दूजी । [६] पछै जमी आकास । [१०] पवन पाणी । [११] चंद सूरज नूँ । [१२] प्रणाम करि । [१३] आरोगी दोळी परिक्रमा दीन्ही । [१४] पछै आप रै पूत परिवार नै छेहली सीख मति आसीस दीन्ही । [१५] ॥१६३॥

दूहा — म्रित मंदर पैठी मल्हपि बैठी अंदर आइ ।
हरि हरि हरि तिण वार हुइ लै सुरमुक्ख लगाइ ॥१६४॥

१५६. [१३] हत्थ (क) (छ); सती [जती] (क) ।
१६०. पवित्र (क) ।
१६१. महे (ग); तरे [तई] (ग); जोवण [देखण] (ज) ।
१६२. जंगलि वळि [सरवर चली] (च) ।
१६३. [१] राणी च्यार तीन (छ); करि [वळण] (ग) । [३] कैसी (च); [ही क] (ग) में लुप्त । [४] जैसी (च); कृत्तिका (क) (ग) (छ); झूबखो (क) (छ) । [५] [कै] (क) (छ) में लुप्त । [६] मोड [ठौडि] (छ) । [८] महाराज जुगजुग (क); धणी जही ज (क) (छ) । [६] मांगी का वात (ग) । [१४] दीधी (क) (च) (छ) । [१५] [आसीस] (च) में लुप्त; दीधी (क) (छ) ।
१६४. मंगलि [मंदर] (छ); इंदर (ग) (छ) ।

सतियों की इस कथा को देख कर सुर-समूह कहने लगा कि शूर अथवा यति भी इनके यश की बराबरी नहीं कर सकते ॥१५९॥

सुर, नर सभी एकत्र होकर सतियों के पवित्र शरीर को देखने लगे। उस समय उन स्त्रियों को देख-देख कर सूर्य धन्य-धन्य कहने लगा। ॥१६०॥

सती मृत्यु-लोक का मोह छोड़ कर स्वर्ग की ओर उमंग सहित देख रही थीं। उस समय लोग टकटकी बाँध कर उन्हें देखने लगे ॥१६१॥

नारियों ने अपने वंशों को उज्ज्वल करने के लिए घर का स्नेह छोड़ दिया और वे अपनी मंगल-देह जलाने के लिए घोड़े पर चढ़ कर सरोवर को चलीं ॥१६२॥

इस प्रकार चार रानियाँ और तीन खवासिनें द्रव्य और नारियल उछाल कर जलने चलीं। घोड़ों पर चढ़ कर महा सरोवर के किनारे आ कर खड़ी हुईं। वे कैसी दिखाई दे रही थीं। मानो कृत्तिका नक्षत्र का झूमका हो। अथवा मोतियों की लड़ी हो। घोड़ों से उतर कर महा पवित्र स्थान पर उन्होंने शिव-पार्वती का पूजन किया। हाथ जोड़ कर वे कहने लगीं, "युग युग में यही पति दीजिए। दूसरी कोई बात हम नहीं माँगतीं।" तत्पश्चात् पृथ्वी, आकाश, पवन, जल, सूर्य और चन्द्रमा को प्रणाम कर उन्होंने चिता के चारों ओर घूम कर परिक्रमा दी। फिर अपने लड़कों और परिवार वालों को अंतिम सीख और आशीश दी ॥१६३॥

तब वे उछल कर चिता में प्रविष्ट हुईं और उसके अन्दर जा कर बैठ गयीं। उन्होंने तीन बार 'हरि-हरि-हरि' कहा और आग लगा ली। ॥१६४॥

१५९. मीँढ=बराबरी।

१६०. पेखै=देखते हैं; ईख=देख कर।

१६२. पख=कुल।

१६३. चंचळाँ=घोड़े; पाळि=किनारा। झूँबकौ=गुच्छा। गौरिज्या=गौरी। आरोगी=चिता; दोळी=चारों ओर। छेहली=अन्तिम।

१६४. सुरमुक्ख=अग्नि।

हा हा कार पुकार हुइ राम राम भणि राम ।
घणूं कहर वीती घड़ी जहर लहर विधि जाम ॥१६५॥

गाहा चौसर — कँत म्रित वात सुणे कुळवंती ।
करि हरि हरि जोहरि कुळवंती ॥
कुंदन तन होमे कुळवंती ।
कीधा चँदनामा कुळवंती ॥१६६॥

गाहा दुमेळ — इम अँग होमि विमाणे आई
आगै सुर त्रिय साँम्ही आई ।
करि वौह कोड पौहप बरिखा करि
सामि मिळण चाली सझि सुंदरि ॥१६७॥

वचनिका —(तिणि वेळा गैब री आवाज आकासवाणी कहियौ । [१] महाराज रैणसाह वधाई वधाई । [२] अगनि सिनान करि सती पिणि आई । [३] ब्रह्मा विसन महेस इंद्र सुर साथे सुर-त्रियाँ नूँ कहियौ ज । [४] महा सतियाँ साँम्ही जावौ । [५] धमळ मंगळ पौहप वरिखा करि वधावौ । [६] ॥१६८॥)

दूहा — सावित्री उमया स्त्रिया आगै साम्ही आइ ।
सुंदर मंदर सोव्रनै अंदर लई वधाइ ॥१६९॥
हुवा धमळ मंगळ हरख वधिया नेह नवल्ल ।
सूर रतन सतियाँ सरस मिळिया जाइ महल्ल ॥१७०॥
औसर नरपुर उद्धरे वैकुंठ कीधा वास ।
राजा रैणाइर तणौ जगि अविचळ जस वास ॥१७१॥

१६५. है है कार (क) (छ); संसार [पुकार] (छ) ।
१६६. जोहरि जोहरि (क), जोहरि जमहरि (ग); (च) में दूसरे चरण के स्थान पर भी चौथा ही; (छ) में दूसरे के स्थान पर चौथा और चौथे के स्थान पर दूसरा ।
१६७. [इम] (क) में लुप्त ।
१६८. [२] वधाइ (क) (ग) (छ) । [३] [पिणि] (क) (च) में लुप्त । [४] [ज] (क) (ग) में लुप्त । [५] महा सतियाँ नूँ (छ) । [६] केवल (च) प्रति में ।
१६९. इंद्रै [अंदर] (क); इंदिरि (च) (ज) ।
१७१. ऊसर नर उवरे (क), ऊसर नावर उधरे (ग), वैसुरवर (च), औसुर (छ) ।

हाहाकार-पुकार हुई और दर्शकों ने राम राम कहा। घड़ी भर में भारी कहर वैसे ही शान्त हो गया जैसे विष की लहर शांत हो जाती है ॥१६५॥

कुलवन्ती जब अपने कंत के मरने की बात सुनती है तभी वह 'हरि-हरि' कह कर चिता (जौहर) बना लेती है और अपना स्वर्णिम शरीर होम कर चन्दनामा लिखाती है ॥१६६॥

यों अंगों को होम कर जब वे सतियाँ विमानों में आयीं तो देवांगनाएँ उनके सम्मुख आयीं और उन्होंने बहुत प्रेमपूर्वक पुष्प-वर्षा की। तब सुन्दरियाँ स्वामी से मिलने चलीं ॥१६७॥

उस समय भगवान की आवाज (आकाशवाणी) ने कहा, "महाराजा रतनसिंह, बधाई बधाई! अग्नि में स्नान कर सतियाँ भी आ गयी हैं।" ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र और सुर-समूह ने देवांगनाओं से कहा, "महासतियों के सम्मुख जाओ और धवल-मंगल तथा पुष्प-वर्षा करके उनका स्वागत करो।" ॥१६८॥

सावित्री, उमा और रमा सम्मुख आयीं और सुन्दरियों का स्वागत कर के उन्हें सुवर्ण के मन्दिरों में ले गयीं ॥१६९॥

धवल-मंगल और हर्ष हुआ। नया स्नेह बढ़ा। महल में जा कर शूरवीर रतन सरस सतियों से मिला ॥१७०॥

राजा रतन ने उपयुक्त अवसर पर नरपुर का उद्धार कर के वैकुण्ठ में वास किया। उसका यश युगों तक अविचल रहेगा ॥१७१॥

१६५. भणि = कहा।

१६६. जोहरि = जौहर, सती होना; कुंदन = स्वर्ण; कीधा = किये।

१६७. होमि = हवन करके; कोड = कामना।

१६८. गैब = ईश्वर; सांम्ही = सम्मुख।

१६९. सोव्रनै = सुवर्णमय।

१७०. वधिया = बढ़े।

१७१. अविचळ = स्थिर।

पख वैसाखह तिथि नवमि पनरोतरै वरस्सि ।
वारि सुकर लड़िया विहद हिन्दू तुरक बहस्सि ॥१७२॥
जोड़ि भणै खिड़ियौ जगौ रासौ रतन रसाळ ।
सूराँ पूराँ साँभळौ भड़ मोटाँ भूपाळ ॥१७३॥

वारता — दिलो रा वाका । [१] उज्जेणि रा साका । [२] च्यारि जुग रहसी । [३] कवि वात कहसी । [४] ॥१७४॥

१७२. मास [पख] (क) (छ); नमि (च); लकिया (च) ।
१७४. [१] का [रा] (क) । [४] परम [वात] (क), कथा (ग) ।

सं० १७१५ (वि०) में वैशाख के (कृष्ण) पक्ष की नवमी तिथि को शुक्रवार के दिन हिन्दू और यवन बहुत ललकार कर लड़े ॥१७२॥

खिड़िया जगा ने रतन का यह रस वाला रासौ काव्य बना कर कह दिया है। इसे अपूर्व शूर-वीर, बड़े भट और राजा लोग सुनें ॥१७३॥

यह दिल्ली की घटना है। उज्जैन का युद्ध है। चार युग तक इसकी प्रसिद्धि रहेगी और कवि लोग इसकी कथा कहेंगे ॥१७४॥

१७२. बहस्सि=ललकार कर।

१७३. रसाळ=रसमय; साँभळौ=सुनो।

१७४. वाका=घटना। साका=युद्ध।

परिशिष्ट (१)

गीत रतन महेसदासौत रा जगा खिड़िया रा कह्या[1]

गुण गजेन्द्र मैमंत चले कळिजुग्ग सरोवरि।
असत ग्राह तैं वीचि तेरिण वद्धो पग चौखरि।
लालचि जलि लीजतौ एक वकि जीव उमग्गे।
करि वखांण वहस्सियौ ताम को प्राण न लग्गे।
कवि भगति चाड माहेस का नर सुरिंद आवै न को।
आंचार सूंडि बूडत अगो हरि रतंन उव्वारि हो ॥१॥
सुणि पुकार केवार समथ व्रिदाज सँभारे।
अस्सि गुरडि आ रहे वेख नह काइ विचारे।
कवि भगत कारणे अभंग भुज चित्त उपाडे।
सत्त वृत्त राखियौ असत तांतू विव्भाडे।
चक्र मोज वाहि चूड़ा हरै व्रवण माल फँद वाढियौ।
महाराजि रतन जुग समँद्र मझि गुण गजेन्द्र इम काढियौ ॥२॥
मिले राति कळिजुग्ग असत अंधार निवाहर।
मोह लोह निंद्र मैं सुको सुत्ता राजेसर।
जस पौहरे घरण जांण जोध जोधा छळ जग्गे।
दिये दंन सोव्रंन ऊँघ उपजस्सन लग्गे।
संभ्रम महेस नव खंड सिरि प्रसिध जोति जग पस्सरी।
क्षत्र ध्रंम रहे रतनौ क्षत्री किरि चिराक कीरत्ति री ॥३॥

❀ ❀ ❀

जवन आगि भटके घरौ साहिजहाँ जीवतै
चढै चमंके मेदनी वागि चाली।

[1] अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, में संगृहीत हस्तलिखित राजस्थानी ग्रंथ "फुटकर गीत" (राजस्थानी०, पृ० ६०, विषयांक १३७) से।

दळ तणा मुदाइत घणा पौह डोलतां
काम रौ मुदाइत हुओ कालो ॥१॥
साहिजादाँ चिहुँ आप कलि साल ले
बागि सायाँ मिलण हुवै बाथै।
नीसरै उमेर दिली रे नाखियो
मेधावत झालियौ भार माथै ॥२॥
उजेणी खागि पहले किले आवधे
घणाँ हिंदू तुरक छात घाया।
रतन रिणि रहै राजधरम राखियाँ
अवर राजा प्रजा होइ आया ॥३॥

❀ ❀ ❀

प्रबल गाजि घण बाँण घमसाँण पैला
मंडि भाण रथ ताण असमाण भालै :
नित्रीठो रीठ देवे रतनाखियो
काल झालाँ विचै बेग कालै ॥१॥
रयण हिँदवाँण सुरताँण बळ राखि
वाहाक करि सेल उप्पाड़ि हाथे।
अभिनमै गंगरिण जंग असि उव्वारियो
मदझराँ हैमराँ नराँ माथे ॥२॥
हर ब्रह्म हरि अरिक अचरजि हुवा
टळटळे धरा किर आभ टूटो।
वाहतो रूक गज टूक करतो वडा
जोध हरि जोध जमरूक जूटो ॥३॥
साह छळ साहराँ दळाँ नव साहसै
विहँड वँड किया बग झाट वाही।
रूप जोधाँ छळ राखि राजा रतन
माधावत मिले हरि ज्योति माँही ॥४॥

परिशिष्ट (२)

गीत रतन महेसदासौत रौ कवियै स्याम रौ कहियौ[1]

आयौ जदि काम जु तू अतुली
वळ घट भीतर सूं मछर घणां।
माथो लियौ वहोड़े माथे
ताहरो ईस महेस तणां ॥१॥
भू ऊजरै वळां मारे अंग
मभि सूं सूरतन अति।
उत वंगलियो चढाए उत
वंगचाअे थारो ईस चित ॥२॥
रहियौ ज खेत मारे रिम छाटो
विढे घणां सूं छोह।
मसतक लियौ चढाए मसतक
संकर काज कंठ री सोह ॥३॥
पड़ियौ जदे प्रिसण रिण पाड़े
तण काई करि घणी तन।
सिर कंठ बांधि कहे इम संकर
रुंडमाल सुधरी रतन ॥४॥
आखिसु मैं वात ए इम हि ज
भाहे सोचो सुरामन।
वणती केम कंठ म्हारे वप
रुंडमाल पाखी रतन ॥५॥

१. अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, में संगृहीत हस्तलिखित राजस्थानी ग्रंथ "फुटकर गीत" (राजस्थानी०, पृ० ५६, विषयांक १३४) से।

परिशिष्ट (३)

गीत रतन महेसदासौत रौ लिखमीदास गाडण रौ कहियौ

दाँतूसळ वजर धजर जमदाढाँ
वाढाँ ऊ गाढाँ विहर।
असपति नजर भली आफळियौ
कुंजर नैनाहर कुँवर ॥१॥

पावाँ रहण वदी पतसाहाँ
सिर दावाँ घावाँ सहँण।
दारँण रूप वाजिया दारँण
वारँण नै वारँण वहँण ॥२॥

दमँगळ मंगळ उडिया चुहँ दिस
जूटौ जिम ठाकुर जंगळ।
खारीवार गयंद सुखहतौ
भारी भुज खेली भग्गळ ॥३॥

मधकर तँणौ घँणै वळ मिलियौ
जिम दमँगळ न किया जतंन।
असपति तखत सार ऊधमियौ
रमियौ हाथाँ सूँ रतंन ॥४॥

१. सैनाली (बीकानेर) के उदीयमान साहित्य-सेवी श्री मुकुन्दसिंह के गीत-संग्रह से।

टिप्पणियाँ

टिप्पणियाँ

(डॉ० रघुबीरसिंह लिखित)

पृ० २, छं० सं० २—[६] रिणमल्ल—मारवाड़ के शासक राव चूँडा का ज्येष्ठ पुत्र। अपने छोटे भाई राव कान्हा की मृत्यु पर उसने मण्डोर पर अधिकार कर लिया और लगभग ११ वर्ष तक (१४२७-१४३८ ई०) मारवाड़ पर राज्य किया। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी राव जोधा ने जोधपुर के गढ़ और नगर की स्थापना की थी।

पृ० २, छं० सं० ३—इस छन्द में रतनसिंह के प्रायः सारे ही पूर्व-पुरुषों की नामावली उत्क्रम से दी गई है।

[१] दलपति—मारवाड़ के शासक मोटा राजा उदयसिंह का चौथा पुत्र एवं महेशदास का पिता। उसकी विस्तृत जीवनी के लिए देखो—रतलाम०, पृ० ५-१३।

उदयसिंह—मारवाड़ के प्रतापी शासक राव मालदेव का दूसरा पुत्र जिसे राव चन्द्रसेन की मृत्यु के कोई तीन वर्ष बाद अकबर ने मारवाड़ का राज्य दिया। वह मोटा राजा के नाम से सुज्ञात था। उसका शासन-काल १५८३-१५९४ ई०।

माल—मालदेव, राव गांगा का पुत्र एवं उत्तराधिकारी, मारवाड़ का प्रतापी शासक (१५३२-१५६२ ई०)।

गंग—राव मालदेव का पिता और मारवाड़ का शासक, राव गांगा (१५१५-१५३२ ई०)।

[२] वाघा—राव गांगा का पिता और राव सूजा का ज्येष्ठ पुत्र जो अपने पिता के शासन-काल में ही मर गया था।

सूजा—राव जोधा का पुत्र जो अपने भाई सातल की निःसन्तान मृत्यु पर मारवाड़ की गद्दी पर बैठा।

जोध—राव जोधा, राव रणमल्ल का पुत्र एवं मारवाड़ का शासक जिसने जोधपुर के गढ़ और नगर की स्थापना की।

रिणमाल—राव रणमल्ल। ऊपर छं० सं० २ [६] के अन्तर्गत देखो।

[३] चूँडा—राव रणमल्ल का पिता। उसने राठौड़ों का संगठन कर अपने राज्य को दूर-दूर तक फैलाया।

वीरम—राव चूण्डा का पिता और राव सलखा का तीसरा पुत्र। उसका सारा जीवन संघर्ष और युद्धों में बीता।

सलख—सलखा, राव तीडा का तीसरा पुत्र। मारवाड़ की गद्दी पर बैठने पर उसे मुसलमान आक्रमणकारियों का निरन्तर सामना करना पड़ा था।

[४] छाडा—राव जालणसी का ज्येष्ठ पुत्र और उसका उत्तराधिकारी।

तीडा—राव छाडा का ज्येष्ठ पुत्र और उसका उत्तराधिकारी।

[५] धूहड़—राव जालणसी का प्रपितामह एवं आस्थान का ज्येष्ठ पुत्र। कहा जाता है कि उसके समय में ही राठौड़ों की कुलदेवी चक्रेश्वरी को मारवाड़ में लाकर नागणा में स्थापित किया गया था।

आसो—राव सीहा का ज्येष्ठ पुत्र आस्थान।

सीह—सीहा, राजस्थान, मालवा आदि के वर्तमान राठौड़ों का मूल पुरुष।

[६] महिराण—महेशदास, रतनसिंह का पिता और दलपत का पुत्र। उसकी विस्तृत जीवनी के लिए देखो—रतलाम०, पृ० १५-६७।

पृ० ४, छं० सं० ४—[४] सिणगार तेरह सक्ख—तेरह शाखाओं का शृङ्गार अर्थात् राठौड़ वंश की शोभा। राठौड़ वंश की तेरह शाखाएँ मानी जाती थीं। तेरह शाखाएँ हैं—दानेश्वरा, अभैपुरा, कपालिया, कुरहा, जलखेड़, बुगताणी, अहर, यारकेश, चन्देल, वीर, वरियावर, खैरवदा, जयवंत। नैणसी०, २, पृ० ४३; ख्यात०, १, पृ० ८; सूरजप्रकाश, पृ० १६ अ-३६ ब।

पृ० ४, छं० सं० ५—[२] महेस नरेस....गढ विड्ढि लियौ जिणि देवगिरं—शाहजहाँ की आज्ञानुसार उसके सुप्रसिद्ध सेनानायक महाबत खाँ ने जब मार्च, १६३३ ई० में देवगिरि (दौलताबाद) के किले को जा घेरा और अन्त में जून, १६३३ ई० में उस पर अधिकार कर लिया, उस समय महेशदास महाबत खाँ की सेना में नौकर था और इस घेरे एवं उस दुर्ग की विजय में उसने प्रमुख रूपेण भाग लिया था। उस समय की महेशदास की वीरता और सफलता का यहाँ उल्लेख किया गया है। विशेष विवरण के लिए देखो—रतलाम०, पृ० १९-२९।

[३] लीध बलक्क धरा—सन् १६४६ में शाहज़ादे मुराद के सेनापतित्व में मुगल सेना ने बल्ख पर चढ़ाई की थी, तब महेशदास भी मुगल सेना के साथ वहाँ गया था और उसने वहाँ उल्लेखनीय वीरता दिखायी थी। रतलाम०, पृ० ५९-६४।

[४] सुरताण—मुगल सम्राट् शाहजहाँ।

जालोर पटै गढ़ दीध जई—महेशदास को जालोर परगना वतन (निवास-स्थान) के तौर पर अगस्त ३१, १६४२ ई० के दिन दिया गया था। पाद०, २, पृ० ३०९। कवि का यह कथन कि बल्ख की चढ़ाई में दिखायी गयी वीरता और वहाँ प्राप्त सफलता के फलस्वरूप जालोर का परगना महेशदास को दिया गया था, भ्रमपूर्ण है। बल्ख की यह उल्लेखनीय चढ़ाई जालोर परगना प्राप्त होने के तीन वर्ष बाद ही हुई थी। बल्ख और बदकशां की राजनीतिक परिस्थिति से परिचित होने और उसे अधिक पास से देखने-सुनने के लिए शाहजहाँ सन् १६३९ ई० में अवश्य ही काबुल तक गया था और बंगष होता हुआ लौट आया था, किन्तु उस बार न तो बल्ख पर कोई चढ़ाई ही हुई और न कोई युद्ध ही। काबुल-बंगष की इस यात्रा के समय महेशदास भी शाहजहाँ के साथ था एवं सम्भवतः कवि को स्मृति-भ्रम हो गया होगा। रतलाम०, पृ० ४१-४२।

[६] कणगिरि—स्वर्णगिरि अथवा सोनगिरि, जो साधारणतया जालोरगढ़ के नाम से सुज्ञात है।

पृ० ६, छं० सं० ९—सुज्जो—शाहजहाँ का दूसरा पुत्र शाह शुजा।

पृ० ६, छं० सं० १०—सिंघ जसो— जोधपुर का महाराजा जसवन्तसिंह।

जैसिंघ—आम्बेर का महाराजा मिर्जा राजा जयसिंह।

पृ० ६, छं० सं० १२—माँन....पोतो—शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र, शाहजादे दारा शिकोह का बड़ा लड़का सुलेमान शिकोह।

पृ० ८, छं० सं० १५—[२] कूरिमाँ—कछवाहे राजपूत। धरमत के युद्ध के समय तो कोई प्रमुख कछवाहा सरदार जसवन्तसिंह की सेना में नहीं नियुक्त किया गया था।

सीसोदियाँ—इस युद्ध के समय सीसोदिया सेनानायक भी ससैन्य जसवन्तसिंह की सेना में नियुक्त किए गए थे, जिनमें शाहपुरा का सुजानसिंह सीसोदिया एवं महाराणा अमरसिंह के पुत्र महाराज भीम का पुत्र राजा रायसिंह सीसोदिया प्रमुख थे। सुजानसिंह तो इस युद्ध में खेत रहा, किन्तु इस युद्ध को बिगड़ते देख कर रायसिंह सीसोदिया युद्ध-क्षेत्र से भाग निकला।

[३] हाडा—कोटा का शासक राव मुकुन्दसिंह हाड़ा भी जसवन्तसिंह की सेना में ससैन्य नियुक्त किया गया था। अपने छोटे भाई मोहनसिंह, जुझारसिंह और कन्ही-राम के साथ मुकुन्दसिंह इस युद्ध में खेत रहा।

गौड़—गौड़ राजपूतों की सेना का प्रमुख था राजा विट्ठलदास गौड़ का दूसरा पुत्र अर्जुनसिंह गौड़, जो धरमत के युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ खेत रहा।

जादव्व—यादव अथवा भाटी कुल के किसी प्रमुख सेनानायक की इस सेना के साथ नियुक्ति का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

झाला—गंगधार का रावत दयालदास झाला भी ससैन्य जसवन्तसिंह की सेना में नियुक्त किया गया था। रावत दयालदास और उसका छोटा भाई राघोदास धरमत के युद्ध में खेत रहे थे। ख्यात०, १, पृ० २०७।

पृ० १०, छं० सं० १९—हसतिमार—गजों का हन्ता, रतनसिंह। कौमार्य-काल में रतनसिंह ने कहरकोह नामक शाही हाथी को आहत कर उसका दमन किया था। उस घटना की ओर यहाँ संकेत है। रतलाम०, पृ० ५०-२।

पृ० १६, छं० सं० ४०-४२—धरमत के युद्ध से पहले औरंगजेब और मुराद का सन्देश लेकर ब्राह्मण दूत कविराय जसवन्तसिंह के पास उज्जैन पहुँचा था, एवं यों जसवन्तसिंह को समझा-बुझा कर उसके विरोध का अन्त करने का जो विफल प्रयत्न किया गया था, उसी घटना का यहाँ उल्लेख किया गया है। औरंग०, १-२, पृ० ३४९; रतलाम०, पृ० ११४।

पृ० १६, छं० सं० ४३—[२] बलू—बलराम दयालदास कल्याणदास ऊदावत राठौड़। इस समय बदनौर (मेवाड़) का परगना उसके पट्टे में था। शाहजहाँ ने यह परगना मेवाड़ से जब्त कर महाराजा जसवन्तसिंह (जोधपुर) को दे दिया। बलराम के साथ ही उसके दो पुत्र, कुम्भा और आसकरण, भी इस युद्ध में सम्मिलित हुए थे, और

तीनों इस युद्ध में खेत रहे। ख्यात०, १, पृ० २१०-१; वीर०, २, पृ० ४१३-४; रेऊ०, १, पृ० २१६ टि०।

गोवरधन—राठौड़ गोरधन चांपावत कूंपावत, चण्डावल का ठाकुर। वह शाही मनसबदार भी था। धरमत के युद्ध के समय उसका मनसब एक हजारी जात—५०० सवार का था। वह धरमत के युद्ध में खेत रहा। ख्यात०, १, पृ० २०८; कम्बू०, ३, पृ० ४६७।

पृ० १८, छं० सं० ४३—[३] माहेस—महेशदास दलपतोत राठौड़ का पुत्र एवं इस वचेनिका का चरित्रनायक रतनसिंह, जो रतलाम का शासक था। इस ग्रन्थ में यह शब्द इसी अर्थ में अन्य स्थलों पर भी प्रयुक्त हुआ है, जैसे छं० सं० ४४, ४५ [२५]।

[४] पीथल—राठौड़ पृथ्वीराज दलपत हरदासोत करमसोत, पीपाड़ का ठाकुर; वह भी धरमत के युद्ध में खेत रहा। ख्यात०, १, पृ० २११।

क्रन्न—राठौड़ करण सुजानसिंह भगवानदासोत जेतावत, बगड़ी का ठाकुर; वह भी धरमत के युद्ध में खेत रहा। ख्यात०, १, पृ० २११।

उदिल्ल—राठौड़ उदैसिंह रामसिंह बलुओत भारमलोत। वह भी इसी युद्ध में मारा गया। ख्यात०, १, पृ० २०८।

मधुकर—राठौड़ महेसदास सूरजमलोत चांपावत। वह कुछ वर्ष तक महाराजा जसवन्तसिंह का प्रधान मन्त्री भी रहा था। वह शाही मनसबदार भी था धरमत के युद्ध के समय उसका मनसब एक हजारी जात—५०० सवार का था। धरमत के युद्ध में से जब महाराजा जसवन्तसिंह को रवाना किया गया तब उसके साथ जोधपुर लौटने वाले प्रमुख व्यक्तियों में यह महेशदास भी था। ख्यात०, १, पृ० २५३; कम्बू०, ३, पृ० ४६७।

[५] जगराज—राठौड़ जुगराज कुम्भकरण बाघोत जेतावत। वह भी इस युद्ध में खेत रहा। ख्यात०, १, पृ० २११।

रूघा—रघुनाथ भाटी, गोयन्द पंचायणोत कैलणोत भाटी का पौत्र। वह धरमत के युद्ध में घायल हुआ था। नैणसी०, २, पृ० ३६६; ख्यात०, १, पृ० २१४, २२२।

गिरधर—राठौड़ गिरधरदास मनोहरदास भाणोत चांपावत। आउवा उसके पट्टे था। वह भी इस युद्ध में खेत रहा था। ख्यात०, १, पृ० २०६।

पृ० १८, छं० सं० ४५—इस छन्द में मारवाड़ के कुछ नरेशों और राठौड़ों की उन शाखाओं के मूल पुरुषों की नामावली दी गई है जिनके वंशज धरमत के युद्ध में सम्मिलित हुए थे।

[३] सूरिजमल (सूजा), गंग, बाघ, सलक्ख और रिणमल्ल के लिए पहले छं० सं० ३ के अन्तर्गत देखो।

[४] चांपा—राव रणमल्ल का पुत्र और राव जोधा का भाई। उसके वंशज चांपावत कहलाये। पोकरण, आउवा, और रोहट के ठाकुर चांपावत शाखा के राठौड़ हैं।

कूंपा—राव रणमल्ल के पुत्र और राव जोधा के भाई अखेराज के बड़े लड़के

विवरण होता था।

[३०] वेगड़ै सांड धवल रा दूहा—धवल सांड सम्बन्धी वीर रस-पूर्ण काव्य। तेस्सितोरी०, पृ० ८१ पर इन दूहों का उल्लेख है। बीकानेर के खजांची संग्रहालय की एक संग्रह-पुस्तक में तद्विषयक २६ दूहे प्राप्य हैं।

[३१] एकलगिड़ वाराह रा दूहा—प्राप्य राजस्थानी काव्य-संग्रहों में इस शीर्षक या विषय के दोहे देखने को नहीं मिले। तेस्सितोरी० प्रोज़० (२, पृ० ५२) में 'एकल-गिड़ वराह डाढाळा री वात' का विवरण दिया है, जिसमें सिरोही के बीसलदेव बाघेला के वीरतापूर्ण शूकर-आखेट की कथा वर्णित है। स्पष्टतया उसी आखेट को लेकर उन वीर-रसोत्पादक दोहों की रचना की गयी होगी, जिनका उल्लेख यहाँ वचनिका में किया गया है।

[३२] मुंज-मारवणी रा दूहा—अपभ्रंश के लेखक मेरुतुंग की 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' में मुंज-मुणालवइ (मृणालवती)-विषयक कुछ प्राचीन अपभ्रंश दोहे उद्धृत हैं। सम्भवत: यहाँ उन्हीं का निर्देश है।

[३३] राव रिणमल रा दूहा—मारवाड़ के राव रणमल्ल के लिए ऊपर छं० सं० २ [६] के अन्तर्गत देखो। उसके विषय में बीस दोहे बीकानेर के खजांची संग्रहालय की एक पुस्तक में प्राप्य हैं। तेस्सितोरी० में राव रणमल्ल विषयक गाडण पसाइच कृत कवित्त (पृ० ४-५), सिढायच चोभुजा कृत गीत (पृ० ४५) और कोई १४ दोहों का (पृ० ५८) उल्लेख है।

[३४] राव अमर रा दूहा—मारवाड़ के राजा गजसिंह का ज्येष्ठ पुत्र। अपने छोटे भाई जसवन्तसिंह के युवराज मनोनीत होने पर राव अमर मुगल सम्राट् शाहजहाँ की सेवा में पहुँचा और वहाँ शाही मनसबदार बन गया। शाही दरबार में उसे कुछ कड़े शब्द कह देने पर राव अमर ने शाही बख्शी सलाबत खाँ को तत्काल मार डाला। तदनन्तर शाही मनसबदारों, गुर्जबरदारों से लड़ता हुआ वहीं मारा गया। चारण कवि गाडण केशवदास और भक्त बारहठ रोहडिया नरहरिदास ने राव अमर सिंह सम्बन्धी अनेकानेक दोहों की रचना की थी। मेनारिया०, पृ० ११९-१२०, १५६। तेस्सितोरी० में पृ० ५५ पर 'अमरसिंघ गजसिंघोत रा दूहा कुण्डलिया,' पृ० ५ पर अमरसिंह विषयक कई कवियों द्वारा रचित गीतों, और पृ० ६२ पर हरिदास भाट कृत रूपक सवैयों का भी उल्लेख है।

[३५] कल्याणमल रायमलोत रा दूहा—राठोड़ कल्याणमल (कल्ला) रायमलोत, मारवाड़ के राव मालदेव का पौत्र। अकबर ने रायमल को सिवाणा दिया था, जो उसकी मृत्यु पर उसके पुत्र कल्याणमल को मिला। सन् १५८७ ई० में अकबर कल्याणमल से अप्रसन्न हो गया एवं उसने सिवाणा मोटा राजा उदयसिंह को प्रदान कर उसे आदेश दिया कि कल्याणमल को सिवाणा से निकाल बाहर करे। तब सिवाणा की रक्षा करते हुए कल्याणमल वीरतापूर्वक लड़ा और अन्त में खेत रहा। ख्यात०, १, पृ० ९९; ओझा०, १, पृ० ३६०-१; रेऊ०, १, पृ० १७५-६। तेस्सितोरी० में राठोड़ कल्याणमल (कल्ला) की प्रशंसा में आशिया दूदा रचित कुण्डलियाँ

(पृ० ६७) तथा गीत (पृ० १२), और अन्य कवियों के भी गीत एवं दोहों (पृ० ५५) का उल्लेख है।

[३६] करण रामौत रा दूहा—दुरसा आढ़ा रचित कोई २६ 'करण रामौत रा दूहा' अनूप लायब्रेरी, बीकानेर, के एक काव्य-संग्रह में प्राप्य हैं। राजस्थानी०, पृ० ४० (वि०) ६।

[३७] तेजसी डूंगरसीयौत रा दूहा—तेजसी डूंगरसीहौत मेवाड़ के राणा उदयसिंह का सरदार था, जो हाजी खाँ के साथ हुए हरमाड़ा के युद्ध में खेत रहा (जनवरी २४, १५५७ ई०)। नैणसी०, १, पृ० ५९-६०; वीर०, २, पृ० ७१; उदय०, १, पृ० ४०८। इस विषयक नौ दोहे खजांची संग्रहालय के एक संग्रह-ग्रन्थ में प्राप्य हैं। चारण नैतसी सीलांगा ने उसकी प्रशंसा में कवित्त भी बनाए थे, जो अनूप लायब्रेरी, बीकानेर, में प्राप्य एक संग्रह में मिलते हैं (राजस्थानी०, पृ० ४१, वि० १७)।

[३८] जैमल पता रा दूहा—चित्तौड़ के तीसरे साके (१५६७-८ ई०) के समय किले की सुरक्षा करने वाले वीर सेनानायक मेड़तिया राठौड़ जयमल वीरमदेवोत और चूण्डावत पत्ता जग्गावत। प्राप्य राजस्थानी काव्य में जयमल और पत्ता विषयक तत्कालीन दोहे देखने को नहीं मिले।

[३९] जैता कूंपा रा दूहा—राव जोधा के भाई अखेराज के पौत्र जैता और कूंपा के लिए पहिले छं० सं० ४५ [४] के अन्तर्गत देखो। ये दोनों चचेरे भाई राव मालदेव के प्रमुख सेनानायक थे। अन्त में शेरशाह के साथ जनवरी ५, १५४४ ई० के दिन हुए सुमेल के युद्ध में दोनों वीर सेनानायक लड़ते हुए खेत रहे। ख्यात०, १, पृ० ६८-७१; ओझा०, १, पृ० ३०४-३०७। बीठू मेहो ने कूंपा की प्रशंसा में गीत और दोहे बनाए थे। पंचाइण अखेराज के पुत्र जेता की प्रशंसा में भी कवित्त बनाए गए थे। ये सब अनूप लायब्रेरी के संग्रहों में प्राप्य हैं। राजस्थानी०, पृ० ३७ (२०), ४३ (वि०) ४६ और ५२।

[४०] प्रिथीराज जैतावत रा दूहा—उपर्युक्त राठौड़ जेता पंचाइण अखेराजोत का पुत्र पृथ्वीराज, जो अपने पिता की मृत्यु पर मालदेव का प्रधान और प्रमुख सेनापति बना। वीरमदेव की मृत्यु के बाद जब उसके पुत्र जयमल के अधिकार से मेड़ता छीन लेने के लिए सन् १५५४ ई० में मालदेव ने विफल प्रयत्न किया तब पृथ्वीराज जेतावत मालदेव की सेना का सेनानायक था। उस युद्ध में वह मारा गया। ख्यात०, १, पृ० ७४; ओझा०, १, पृ० ३१४-१६; रेऊ०, १, पृ० १३३-१३५; नैणसी०, १, पृ० ५८; २, पृ० १६१-१६५; उदय०, १, पृ० ४०७। पृथ्वीराज जेतावत सम्बन्धी बारह दोहे खजांची संग्रहालय के एक संग्रह-ग्रन्थ में प्राप्य हैं।

[४१] गांगा डूंगरौत रा दूहा—गांगा डूंगरसिहोत सहाणी, जो धौलहरे (सोजत) में राव गांगा के थाने की रक्षा करता हुआ मारा गया था। नैणसी०, २, पृ० १४६-७; ओझा०, १, पृ० २७५-६। तेस्सितोरी०, पृ० ५६ पर 'गांगे डूंगरसीओत रा दूहा' (कुल सं० १५) का उल्लेख है। खजांची संग्रहालय के एक संग्रह-ग्रन्थ में भी सात दूहे प्राप्य हैं।

पृ० ६८, छं० सं० ६३ के बाद—[(५) नरहर—नरहरदास सांवलदासोत झाला। शाही मनसवदार था। शाहजहां के शासनकाल में खांजहां लोदी के साथ हुई लड़ाई में वह काम आया। तब उसका मनसव ५ सदी ज़ात—२०० सवार का था। नैणसी०, २, पृ० ४७३-४; पाद०, १-ब, पृ० ३२५।

दला झाला—रावत दयालदास नरहरदासोत झाला। उसे गंगधार (मालवा)का परगना जागीर में मिला था। वह भी धरमत के युद्ध में खेत रहा। इस युद्ध के समय उसका मनसब ६ सदी ज़ात—५०० सवार का था। ख्यात०, १, पृ० २०७; रतलाम०, १०१; वारिस०, २, पृ० १२६-ब।

(६) वीठल—राजा विट्ठलदास गोपालदासोत गौड़। शाहजहां का विश्वस्त सेनानायक था। सन् १६५१ ई० में जब उसकी मृत्यु हुई तब उसका मनसब ५ हज़ारी ज़ात—५००० सवार का था। मा० उ० (हिन्दी), १. पृ० २३८-२४१।

अजण गौड़—राजा विट्ठलदास गौड़ का दूसरा पुत्र अर्जुन गौड़। धरमत के युद्ध में वह खेत रहा। इस युद्ध के समय उसका मनसब दो हजारी ज़ात—१५०० सवार का था। ख्यात०, १, पृ० २०७; मा० उ० (हिन्दी), १, पृ० २४१-२४२; कम्बू०, ३, पृ० ४५८।]

पृ० ६८, छं० सं० ६४—करनाजल जैत—करण जेतावत; पहिले छं० सं० ४३ [४] के अन्तर्गत देखो।

सूज उत—बलराम (बल्लू) दयालदास ऊदावत राठौड़। पहिले छं० सं० ४३[२] के अन्तर्गत देखो। इस ऊदावत शाखा के राठौड़ों का आदि पुरुष ऊदा जोधपुर के संस्थापक राव जोधा के पुत्र राव सूजा का पुत्र था, एवं यहाँ बलराम को सूजावत कहा गया है।

पृ० ६८, छं० सं० ६५—गोवरधन—गोरधन चांपावत कूंपावत। पहिले छं० सं० ४३ [२] के अन्तर्गत देखो।

पृ० ६८, छं० सं० ६६—गोदो—गोरधन चांपावत कूंपावत।

पृ० ६८, छं० सं० ६७—बलू—बलराम दयालदास कल्याणदास ऊदावत राठौड़; पहिले छं० सं० ४३ [२] के अन्तर्गत देखो।

बेटां बिहुं—बलराम के दोनों पुत्र, कुंभा और आसकरण।

पृ० ६८, छं० सं० ६८—पाटोधर रायांसाल—कुंवर रायसिंह, रतनसिंह का दूसरा पुत्र।

पृ० ६८, छं० सं० ६६—वीठल—राठौड़ विट्ठलदास गोपालदास माण्डणोत चांपावत; पहिले छं० सं० ४५ [५] के अन्तर्गत देखो।

पृ० ७०, छं० सं० १०२—पाल तणो—गोपालदास मांडणोत चांपावत का पुत्र राठौड़ विट्ठलदास।

पृ० ७०, छं० सं० १०३—भीम—राठौड़ विट्ठलदास गोपालदास मांडणोत चांपावत का षोडशवर्षीय पुत्र भीम। महाराजा जसवंतसिंह की सेना में नियुक्त होने के लिए वह उम्मीदवार था; वह भी इस युद्ध में काम आया। ख्यात०, १, पृ० २०६।

पृ० ७०, छं० सं० १०४—गोकल—सोनगरा गोकलदास भाखरसीहोत। यह भाखरसी

अखेराज रणधीरोत सोनगरा के बड़े लड़के मानसिंह का छोटा पौत्र था। वह भी धरमत के युद्ध में खेत रहा था। ख्यात०, १, पृ० २१२; नैणसी०, १, पृ० १६५।

जगो—जगतसिंह राजसिंहोत सोनगरा। यह राजसिंह भाखरसी का छोटा भाई था। धरमत के युद्ध में जगतसिंह भी घायल हुआ था। ख्यात०, १, पृ० २१२; नैणसी०, १, पृ० १६५।

केस सुत—केसोदासोत माधोसिंह सोनगरा। माधोदास सोनगरा के लिए पहले छं० सं० ४५ [१३] के अन्तर्गत देखो।

मान—मानदेव। यह मानदेव जालोर के रावल सामन्तसिंह सोनगरा का छोटा लड़का और रावल कान्हड़ देव सोनगरा का छोटा भाई था जो 'मूंछाला मानदेव' के नाम से मशहूर था। माधोसिंह केसोदासोत सोनगरा का प्रपितामह अखेराज रण-धीरोत सोनगरा इसी मूंछाले मानदेव का वंशज था। इसी कारण इस छन्द में माधो-सिंह को 'मान हरे' अर्थात् 'मानदेव का वंशज' कहा गया है। नैणसी०, १, पृ० १५३, १६५-१६७।

पृ० ७०, छं० सं० १०५—मधो—माधोदास सोनगरा चौहान। पहिले छं० सं० ४५ [१३] के अन्तर्गत देखो।

वीर हरो—रणधीर सोनगरा चौहान का वंशज। इस रणधीर का पुत्र अखेराज ही माधोदास सोनगरा चौहान का प्रपितामह था। नैणसी०, १, पृ० १६५, १६७। अखेराज के लिए पहिले छं० सं० ४५[१४] और वचनिका सं० ५३ [४२] के अन्तर्गत देखो।

पृ० ७०, छं० सं० १०७—मधुकर कणियागरी—माधोदास सोनगरा चौहान।

पृ० ७२, छं० सं० १०८—रीमल—राठौड़ पृथ्वीराज करमसोत। पहले छं० सं० ४५ [८] के अन्तर्गत देखो।

वैर कविल—उदयभान भगवानदास बालोत जैतावत राठौड़। पहिले छं० सं० ४५ [६] के अन्तर्गत देखो।

पृ० ७२, छं० सं० १०६—जगरान—राठौड़ जगराज कुम्भकरण बालोत जैतावत। पहिले छं० सं० ४३ [५] के अन्तर्गत देखो।

पृ० ७२, छं० सं० ११०—गिरधारी राठौड़—गिरधरदास मनोहरदास चांपावत राठौड़। पहिले छं० सं० ४३ [५] के अन्तर्गत देखो।

पृ० ७२, छं० सं० १११—कमधज पीथल—राठौड़ पृथ्वीराज करमसोत। पहिले छं० सं० ४५ [८] के अन्तर्गत देखो।

पृ० ७२, छं० सं० १११ के बाद—[(१) वर्ती मेड़तियों—धरमत के युद्ध में अनेक मेड़तिया वीर खेत रहे थे, जिनमें से कुछ-खास सेनानायक वीरों के नाम ख्यातों में दिये गए हैं। इन सबमें राठौड़ गोपीनाथ गोकुलदास विठ्ठलदासोत प्रमुख था। यह गोपीनाथ इतिहास-प्रसिद्ध वीरवर जयमल मेड़तिया के ज्येष्ठ पौत्र विठ्ठलदास कल्याणदासोत का पौत्र था। बोल्दा आदि पाँच गांव इसके पट्टे थे। ख्यात०, १, पृ० २१२; मुरारी०, २, पृ० १८०, २१७-८।

(२) मोहन जगतावत......बाघ कलोधर—बाघ का यह वंशज मोहन जगतावत कौन था, यह निश्चित रूपेण कहना सम्भव नहीं। प्राप्य सूचियों में मोहन नामक किसी प्रमुख योद्धा का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।]

पृ० ७२, छं० सं० ११२—रुघौ भाटी—रघुनाथ भाटी। पहिले छं० सं० ४३ [५] के अन्तर्गत देखो।

पृ० ७२, छं० सं० ११२ के बाद—[(१) अचेलावत महेस—भाटी महेसदास अचलदास सुरताणोत। वह भी धरमत के युद्ध में खेत रहा था। ख्यात०, १, पृ० २१२।

(२) केहरियो—सम्भवतः भाटी केसरीसिंह अचलदास सुरताणोत। वह भी धरमत के युद्ध में खेत रहा था। ख्यात०, १, पृ० २१२।

(३) जसवंत—बहुत करके जसवंत पड़िहार, जो धरमत के युद्ध में खेत रहा था (ख्यात०, १, पृ० २२१)। मुरारी० (१, पृ० १०५) में उसे 'धांधल जसवंत ईसरदास' लिखा है।

सहसो—बहुत करके सहसौ सांवलोत, जो धरमत के युद्ध में काम आया था। ख्यात०, १, पृ० २२२।]

पृ० ७४, छं० सं० ११२ के बाद—[(४) पाल हरै—गोपालदास मांडणोत का पौत्र, राठोड़ भीम विट्ठलदासोत, जो धरमत के युद्ध में खेत रहा था। ख्यात०, १, पृ० २०६।

(५) मूलो रायामाल—किस व्यक्ति विशेष का यहां उल्लेख किया है, यह निर्धारित नहीं किया जा सका है। ऐसा कोई नाम प्राप्य सूचियों में नहीं मिलता है।

(६) दलो प्रोहित—राजगुरु पुरोहित दलपत मनोहरदासोत। उसकी वय तब २२ वर्ष की ही थी। वह भी धरमत के युद्ध में खेत रहा। ख्यात०, १, पृ० २२०।]

पृ० ७४, छं० सं० ११३—भगवानो चहुवाण—भगवानदास शार्दूलसिंहोत सांचोरा चौहान। पहिले छं० सं० ४८ [४] के अन्तर्गत देखो।

पृ० ७४, छं० सं० ११८—अमर चहुवाण—अमरदास शार्दूलसिंहोत सांचोरा चौहान। पहिले छं० सं० ४८ [४] के अन्तर्गत देखो।

पृ० ७४, छं० सं० ११६—सोभा वीकमसीह—सोभा सांचोरा जो वीकमसी सांचोरा का वंशज था। पहिले वचनिका सं० ५३ [४५] के अन्तर्गत देखो। अमरदास सांचोरा का प्रपितामह मेहकरण सांचोरा इसी वीकमसी के पौत्र राव बरजांग के बड़े पुत्र जयसिंह का प्रपौत्र था। सोभा सांचोरा का पिता हीमाला राव बरजांग का तीसरा पुत्र था। नैणसी०, १, पृ०, १७३, १७६, १८१।

पृ० ७६, छं० सं० १२० के बाद—[(१) वीठलो—चाँपावत राठोड़ विट्ठलदास गोपालदास मांडणोत। विशेष विवरण के लिए छं० सं० ४५ [५] के अन्तर्गत देखो।

(२) वीठड़ पाँचा हर—चाँपा का वंशज (चांपावत) विट्ठलदास गोपालदास मांडणोत।]

पृ० ७६, छं० सं० १२१—किसनावत वीठल—विट्ठलदास किशनदासोत सांचोरा। पहिले छं० सं० ८२ के अन्तर्गत देखो।

पृ० ७६, छं० सं० १२२—गांगा हरो गिरधर—गिरधर गांगावत राठोड़। पहिले देखो

वचनिका सं० ४६ [१८] के अन्तर्गत ।

पृ० ७६, छं० सं० १२३—रतनावत रायसिग—कुँवर रायसिंह, रतनसिंह राठोड़ का दूसरा पुत्र ।

पृ० ७६, छं० सं० १२३ के बाद—[(१) सांवल को गिरधारी—सांवल का गिरधारी । किस व्यक्ति-विशेष का यहां उल्लेख किया है यह कहना सम्भव नहीं ।]

पृ० ७६, छं० सं० १२४-१२६—साहिबो राठोड़—साहिब खाँ कुम्भकरण वाघोत जेतावत राठोड़ । पहिले वचनिका सं० ४६ [१७] के अन्तर्गत देखो ।

पृ० ७८, छं० सं० १२७—चारण वैण उत—बारहठ जसराज वेणीदासोत । पहिले वचनिका सं० ४६ [१६] के अन्तर्गत देखो ।

पृ० ७८, छं० सं० १३१—हृदमाल रो जगो खिड़ियो—हृदमाल का पुत्र खिड़िया जगमाल चारण । वह महाराज जसवन्तसिंह का चाकर था और धरमत के युद्ध में लड़ता हुआ खेत रहा था । ख्यात०, १, पृ० २२० ।

पृ० ७८, छं० सं० १३२—सुत किलिआण भीमाजल मिस्रण—कल्याण का पुत्र मिश्रण भीम । मिश्रण जाति के इस चारण का नाम धरमत सम्बन्धी किसी सूची में नहीं दिखाई दिया ।

पृ० ७८, छं० सं० १३३ के बाद—[(१) संकर को रामेसवर—शंकर का (पुत्र) रामेश्वर नामक व्यक्ति कौन था, इसकी कोई भी जानकारी प्राप्य नहीं है । 'रतन रासो' में 'रामेसु व्यास' एवं 'रामेस ब्रह्म' नामक जिस व्यक्ति का उल्लेख मिलता है, वह सम्भवतः उक्त रामेश्वर ही था । परन्तु धरमत के युद्ध में काम आने वाले व्यक्तियों की किसी भी प्राप्य सूची में उसका नाम नहीं मिलता है ।]

पृ० ७८, छं० सं० १३४—बलिराव रो द्वारो—बल्लूराव चाँपावत का पुत्र द्वारकादास । वह भी धरमत के युद्ध में खेत रहा था । ख्यात०, १, पृ० २०६; रतलाम०, पृ० १६१ ।

पृ० ८०, छं० सं० १३५—केलपुरो किसन—सीसोदिया किशनसिंह नारायणदासोत शक्तावत । वह भी इस युद्ध में खेत रहा । वह शाही मनसबदार था और इस समय उसका मनसब ४ सदी—१५० सवार का था । ख्यात०, १, पृ० २०८ । नैणसी० (१, पृ० १३) के अनुसार कई दिन कैलपुरे में रहने से सीसोदिये कैलपुरे भी कहलाते हैं ।

पृ० ८०, छं० सं० १३६—कुम्भकरण भाटी—कुम्भकरण सुरताण रामोत केलण भाटी । पहिले छं० सं० के ४५ [१६] के अन्तर्गत देखो ।

पृ० ८०, छं० सं० १३६ के बाद—[(१) बीको नरहरदास—नरहरदास राठोड़ बीकानेर का, रतनसिंह राठोड़ का सेनानायक, जो धरमत के युद्ध में खेत रहा । ख्यात०, १, पृ० २२३ ।

(२) सीसोदिया सुजाण—सुजानसिंह सूरजमलोत सीसोदिया, शाहपुरा का । देखो छं० सं० ६३ के बाद [(१)] के अन्तर्गत ।

(३) खांगो—यह शब्द 'सांगो' होना चाहिए । मूल प्रति में भूल से 'स' के स्थान पर 'ष' लिखा गया होगा, जिससे यह गलत पाठ लिया गया ।

सांगा (सांगो), रतनसी (रतनो) और रूपसी, ये तीनों ही मंडला नाथा राठोड़

के पुत्र थे। वे सब रतनसिंह राठोड़ के सेनानायक थे और तीनों ही धरमत के युद्ध में खेत रहे। ख्यात०, १, पृ० २२३।

(४) ईसर कुम्भौ—कुम्भा ईश्वरदासोत साँचोरा चौहान। वह भी रतनसिंह राठोड़ का सेनानायक था और धरमत के युद्ध में खेत रहा था। नैणसी०, १, पृ० १७६; ख्यात०, १, पृ० २२३; रतलाम०, पृ० १६०।

साचोरा वन्धव सगा...भांज उत—यहाँ 'भांज उत' के स्थान पर 'झांज उत' होना चाहिए। भैरूं जयसिंहदेवोत के पुत्र झांझण के पौत्र (अतः झांझावत) लिखमीदास के पुत्र, दयालदास और नरसिंहदास। ये दोनों भाई धरमत के युद्ध में खेत रहे थे। नैणसी०, १, पृ० १७६; ख्यात०, १, पृ० २१४।]

पृ० ८०, छं० सं० १३७—जैसा—चाँपावत भैरूंदास का पुत्र जैसा। रेऊ०, १, पृ० १३३, १३४।

वेणीदास—वेणीदास राजसिंह सूरजमलोत जैसावत चाँपावत। मुरारी०, १, क्रमांक ६८२, पृ० १२०; ख्यात०, १, पृ० २०६; रतलाम०, पृ० १६१।

पृ० ८० छं० सं० १३७ के बाद—[(१) नाहर—धरमत के युद्ध में खेत रहने वालों की किसी भी प्राप्य सूची में यह नाम नहीं मिलता है।

(२) ऊदा हरौ हरराम—ऊदा का वंशज हरराम। बहुत करके रतनसिंह का सेनानायक हरराम लखमावत राठोड़, जो धरमत के युद्ध में खेत रहा था। ख्यात०, १, पृ० २२३।

(३) सोनगरौ आसौ नै सुन्दर—सोनगरा आसा और सुन्दर। धरमत के युद्ध में खेत रहने वालों की प्राप्य सूचियों में ये नाम नहीं पाए जाते हैं।

(४) वेणी दूदावत पंवार—वेणीदास दूदावत पंवार। बेणीदास का पितामह अड़वाल सहसमालोत पंवार अपनी मासी, राणी लक्ष्मी, के प्रसंग से मारवाड़ आया था (नैणसी०, १, पृ० २४६), एवं मारवाड़ से उसका भी सम्बन्ध बना रहा। वेणीदास इस युद्ध में घायल ही हुआ था, अतएव ख्यात० आदि में दी गई सूचियों में उसका नाम नहीं मिलता है।]

पृ० ८२, छं० सं० १३७ के बाद—[(५) कूरम मांन....सामलदास उत—यह मानसिंह सांवलदासोत कछवाहा सम्भवतः मुगल सम्राट् अकबर के कृपापात्र रायसल दरबारी के उत्तराधिकारी गिरधरदास के पौत्र सांवलदास का पुत्र होगा। इस सांवलदास के कितने पुत्र थे और उनके क्या नाम थे, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। नैणसी०, २, पृ० ३५। मानसिंह सांवलदासोत कछवाहा के धरमत के युद्ध में भाग लेने का कोई उल्लेख अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता है।]

पृ० ८२, छं० सं० १३८—रूपावत मुँहतो सांवल—मेहता सांवलदास रूपसी का। वह ओसवाल जैन था। रतनसिंह राठोड़ का सेनानायक और कर्मचारी था। वह भी धरमत के युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ खेत रहा। ख्यात०, १, पृ० २२३।

पृ० ८२—छं० सं० १३८ के बाद—[(१) हेमावत राजसी—यहाँ किस राजसिंह हेमावत का उल्लेख किया गया है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

धरमत के युद्ध में काम आये योद्धाओं की प्राप्य सूचियों में 'राजसिंह द्वारकादासोत मेड़तिया' का नाम अवश्य मिलता है। इतिहास-प्रसिद्ध जयमल मेड़तिया के भाई चांदा वीरमदेवोत के पौत्र द्वारकादास गोयन्ददासोत का वह पुत्र था। अपने काका मुरारदास गोयन्ददासोत के साथ ही वह भी इस युद्ध में काम आया था। ख्यात०, १, पृ० २१२; मुरारी०, २, पृ० २०२।]

पृ० ८२, छं० सं० १३९—पंचायण ईसर को—संभवतः पंचायण हरदासोत सेलोत, रतनसिंह राठोड़ का सेनानायक, जो धरमत के युद्ध में खेत रहा था। ख्यात०, १, पृ० २२३। नैणसी० (१, पृ० १०४) के अनुसार सेलोत चौहानों की एक शाखा का नाम है।

पृ० ८२, छं० सं० १४०—चांदा उत भाऊ कमंध—सम्भवतः राठोड़ भावसिंह अजमालोत (जयमलोत ?) मेड़तिया, रतनसिंह राठोड़ का सेनानायक, जो धरमत के युद्ध में खेत रहा था। ख्यात०, १, पृ० २२३; मुरारी०, १, क्रमांक ९८२, पृ० १२०।

पृ० ८२, छं० सं० १४१—राणो निरवाणि—सम्भवतः रामदास चांपाउत चौहान, महाराजा जसवंतसिंह का सेनानायक, जो धरमत के युद्ध में खेत रहा। ख्यात०, १, पृ० २१५। निरवाण चौहानों की एक शाखा है (नैणसी०, १, पृ० १०४, १२० टि०)।

पृ० ८२, छं० सं० १४२—भाटी मुन्दर—धरमत के युद्ध में खेत रहने वालों की किसी भी प्राप्य सूची में यह नाम नहीं मिलता है।

भाटी अज्जो—भाटी अज्जा केलण, रतनसिंह राठोड़ का सेनानायक, जो धरमत के युद्ध में खेत रहा था। ख्यात०, १, पृ० २२३।

पृ० ८२, छं० सं० १४३—वेणो दूदावत पँवार—वेणीदास दूदावत पँवार। पहिले देखो छं० सं० १३७ के बाद [(४)] के अन्तर्गत देखो।

पृ० ८२, छं० सं० १४४—मांगलिया दलपति—मांगलिया दयालदास माधोदासोत। गांव खारो लूणो उसके पटे था। वह भी धरमत के युद्ध में खेत रहा। ख्यात०, १, पृ० २१५-६। मांगलिया गुहिलोतों की ही एक शाखा है (नैणसी०, १, पृ० ७७)।

मांगलिया खानो—सम्भवतः मांगलिया दयालदास का ही कोई निकट सम्बन्धी होगा। उसका नाम इस युद्ध में खेत रहने वालों की किसी भी सूची में नहीं मिलता है।

पृ० ८४, छं० सं० १४५—धनराज—धन्ना (धनराज) पड़िहार, रतनसिंह राठोड़ का सेनानायक, जो धरमत के युद्ध में खेत रहा। ख्यात०, १, पृ० २२३; मुरारी०, १, क्रमांक ९८२, पृ० १२०।

पृ० ८४, छं० सं० १४६—नवल—धरमत के युद्ध में खेत रहने वालों की किसी भी प्राप्य सूची में यह नाम नहीं मिलता है।

पृ० ८४, छं० सं० १४७—दूदावत रतनो—सम्भवतः मंडला नाथा का पुत्र रतनसी, जो रतनसिंह राठोड़ का सेनानायक था और धरमत के युद्ध में खेत रहा। ख्यात०, १, पृ० २२३।

पृ० ८४, छं० सं० १४८—चारण धरमो—धरमा चारण का नाम भी धरमत के युद्ध में खेत रहने वालों का किसी सूची में नहीं मिलता है।

पृ० ८४, छं० सं० १४६—मथुरी कावौ—मथुरा काबा का नाम भी धरमत के युद्ध में खेत रहने वालों की किसी सूची में नहीं है। काबा परमारों की ही शाखा थी (नैणसी०, १, पृ० २३०)।

पृ० ८४, छं० सं० १५०—तूंवर जीवौ—जीवा तँवर का नाम भी धरमत के युद्ध में मारे गये वीरों की किसी सूची में नहीं है।

पृ० ८४, छं० सं० १५१—नाई जीवौ—जीवा नाई का नाम भी धरमत के युद्ध-सम्बन्धी किसी सूची में नहीं हैं।

पृ० ८४, छं० सं० १५२—भगवानौ थोरी—भगवाना थोरी का नाम भी धरमत के युद्ध सम्बन्धी किसी सूची में नहीं है।

भूरियो थोरी—भूरिया थोरी, रतनसिंह राठौड़ का सेवक, धरमत के युद्ध में खेत रहा था। मुरारी०, १, क्रमांक ६८२, पृ० १२०। भंगियों के समान एक नीची जाति का नाम थोरी है (नैणसी०, २, पृ० ६१८)।

पृ० ८४, छं० सं० १५३—गुणियौ दमाम—दमामी गुणा, रतनसिंह राठौड़ का सेवक, धरमत के युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ खेत रहा। मुरारी०, १, क्रमांक ६८२, पृ० १२०। दमामा (नक्कारा) बजाने वाले को दमामी कहा जाता है।

पृ० ६२, वचनिका सं० १५८—[१] राजा रैणसाहि—महाराजा रतनसिंह राठौड़।

पृ० ६४, वचनिका सं० १५८—[१५] हाड़ा मुकन्दसिंघ—मुकुन्दसिंह माधोसिंहोत हाड़ा, कोटा का शासक। विशेष विवरण के लिए पहिले छं० सं० ६३ के बाद [(३)] के अन्तर्गत देखो।

[१६] गौड़ अरजन—राजा विट्ठलदास गौड़ का दूसरा पुत्र अर्जुन। विशेष विवरण के लिए पहिले छं० सं० ६३ के बाद [(६)] के अन्तर्गत देखो।

[१७] सीसोदिया सुजाणसिंघ—शाहपुरा का शासक सुजानसिंह सीसोदिया। तदर्थ पहिले देखो छं० सं० ६३ के बाद [(१)] के अन्तर्गत।

[१८] झाला दलथम्भ—झाला दयालदास नरहरदास सांवलदासोत। तदर्थ पहिले देखो छं० सं० ६३ के बाद [(५)] के अन्तर्गत।

पृ० ६८, वचनिका सं० १५८—[८३-८४] कछवाही राजावति अतिरूपदे पुरुसोत्तमसिंघ दुरजणसिंघोत री सारधू—आम्बेर के सुप्रसिद्ध राजा मानसिंह कछवाहा के छोटे लड़के दुर्जनसिंह के बेटे पुरुषोत्तमसिंह कछवाहा की लड़की अतिरूपदे राजावती कछवाही। नैणसी०, २, पृ० १३, १५; रतलाम०, पृ० १३३।

[८५-८६] देवड़ी रयणसुखदे चाँदा प्रिथीराजोत री सारधू—सिरोही के राव लाखा के पौत्र रणधीर का पौत्र पृथ्वीराज देवड़ा था। इस पृथ्वीराज के पुत्र चांदा की पुत्री देवड़ी रैणसुखदे। नैणसी०, १, पृ० १४५-१४६; रतलाम०, पृ० ३४।

[८७-८८] कछवाही राजावति गुणरूपदे मोहकमसिंघ प्रेमसिंघोत री सारधू—आम्बेर के सुप्रसिद्ध राजा मानसिंह के छोटे भाई माधोसिंह के पौत्र प्रेमसिंह कछवाहा के छोटे लड़के मोहकमसिंह की बेटी गुणरूपदे राजावती कछवाही। नैणसी०, २, पृ० १३, १६; रतलाम०, पृ० १३३।

[८९-९०] कछवाही सेखावति सुखरूपदे पुरसोत्तमसिंघ तोडरमलोत री सारघू—शेखा कछवाहे के प्रपौत्र रायसल सूजावत का तीसरा बेटा भोजराज तोडरमल शेखावत का पिता था। इसी तोडरमल के छोटे लड़के पुरुषोत्तमसिंह की पुत्री सुखरूपदे शेखावती कछवाही थी। नैणसी०, २, पृ० ३२-३७; रतलाम०, पृ० १३३-४।

[९१] खवासि—उपपत्नियां।

पृ० १०२, वचनिका सं० १६३—[२] महा सरवर री पालि—नीनोर (कोठड़ी) नामक स्थान में जो तालाब है उसी की पाल पर रतनसिंह राठौड़ की रानियां आदि सती हुई थीं। यह स्थान रतलाम (मालवा) से २५ मील उत्तर-पश्चिम में और प्रतापगढ़ से २४ मील दक्षिण में स्थित है। रतलाम०, १३५-६।

पृ० १०६, छं० सं० १७२—युद्ध तिथि—शुक्रवार, वैशाख कृष्ण पक्ष ९, १७१५ वि०=अप्रैल १६, १६५८ ई०। धरमत युद्ध की ईसवी सन् की ठीक तारीख सम्बन्धी विस्तृत विवेचन भूमिका में दिया गया है।

पृ० १०६, छं० सं० १७३—खिड़ियो जगो—खिड़िया जगा, काव्य-रचयिता। उसकी जीवनी, आदि के लिए भूमिका देखो।

पृ० १०९, परिशिष्ट (१), पंक्ति ३—जगा खिड़िया—वचनिका० का रचयिता। रतनसिंह विषयक उसके प्राप्य फुटकर गीत यहां संग्रहीत किये गए है।

पृ० १११, परिशिष्ट (२), पंक्ति ३—कविया स्याम—कुछ फुटकर गीतों के अतिरिक्त इस चारण कवि की कोई अन्य रचना प्राप्य नहीं है। आवश्यक जानकारी के अभाव में उसके व्यक्तित्व अथवा रचना-काल के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

पृ० ११२, परिशिष्ट (३), पंक्ति ३—लिखमीदास गाडण—'राजा सूरसिंह री वेली' के रचयिता गाडण चोला का वंशज। डिंगल में लिखे हुए उसके कई गीत एवं नीसाणी छंद में एक-दो फुटकर रचनाओं के अतिरिक्त लिखमीदास गाडण का कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। वह बीकानेर के राजा करण का समकालीन था और उसका रचना-काल सन् १६६५ ई० के लगभग कहा जा सकता है।

संकेत-परिचय

उदय०—"उदयपुर राज्य का इतिहास", डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत, जिल्द १।

ओझा०—"जोधपुर राज्य का इतिहास", डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत, जिल्द १।

औरंग०—"हिस्ट्री आफ़ औरंगज़ेब", डा० यदुनाथ सरकार कृत, जिल्द १-२।

कम्बू०—"आमल-इ-सालेह", मुहम्मद सालेह कम्बू कृत, जिल्द ३, (बिब० इण्डिका)।

ख्यात०—"जोधपुर राज्य की ख्यात" (हस्तलिखित), ओझा संग्रह में प्राप्य प्रति की नकल, जिल्द १।

छं० सं०—छन्द संख्या।

टि०—पाद टिप्पणी।

तेस्सितोरी०—तेस्सितोरी कृत "ए डिस्क्रिप्टिव केटेलाग आफ़ बार्डिक एण्ड हिस्टारिकल मेनस्क्रिप्ट्ज़", सेक्शन २—बार्डिक पोएट्री, पार्ट १—बीकानेर स्टेट, (बिब० इण्डिका)।

तेस्सितोरी प्रोज़—तेस्सितोरी कृत "ए डिस्क्रिप्टिव केटेलाग आफ़ बार्डिक एण्ड हिस्टारिकल मेनस्क्रिप्ट्ज़", सेक्शन १—प्रोज़ क्रानिकल्ज़, पार्ट २—बीकानेर स्टेट; (बिब० इण्डिका)।

दयाल०—"दयालदास री ख्यात", सिंढ़ायच दयालदास कृत, भाग २, डॉ० दशरथ शर्मा आदि द्वारा सम्पादित, अनूप० संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, द्वारा प्रकाशित।

नेणसी०—"मुहणोत नेणसी की ख्यात", काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, खण्ड १-२।

पाद०—"पादशाह नामा", अब्दुल हमीद लाहौरी कृत, खण्ड १-२, (बिब० इण्डिका)।

मा० उ० (हिन्दी)—"मासिर-उल्-उमरा", समसामुद्दौला शाह नवाज खाँ कृत; ब्रजरत्नदास कृत हिन्दी अनुवाद, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, भाग १।

मुरारी०—कविराजा मुरारीदान से प्राप्त एक और ख्यात (हस्तलिखित), जोधपुर राज्य के संग्रह में प्राप्य प्रति की नकलें, जिल्दें १-२।

मेनारिया०—"राजस्थानी भाषा और साहित्य", डॉ० मोतीलाल मेनारिया कृत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००६ वि०।

रतलाम०—"रतलाम का प्रथम राज्य : उसकी स्थापना और अन्त", डा० रघुवीरसिंह कृत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

राजस्थानी०—"केटेलाग आफ़ दी राजस्थानी मेनस्क्रिप्ट्ज़ इन दी अनूप संस्कृत लायब्रेरी", अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, द्वारा प्रकाशित।

रेऊ०—"मारवाड़ राज्य का इतिहास", पं० विश्वेश्वरनाथ कृत, खण्ड १-२।

वारिस०—"पादशाह नामा", मुहम्मद वारिस कृत, सरकार संग्रह में प्राप्य प्रति की नकल, जिल्द २।

वीर०—"वीर विनोद", कविराजा श्यामलदास कृत, जिल्दें १-२।